भगवान महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष में प्रकाशित

आगमपथ

नैतिक विचार मासिक

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी विशेषांक

परामर्शक : **श्री भगतराम जैन**

●

सम्पादक : **विनोदकुमार जैन**

●

कलापक्ष : **सुधीर**

वर्ष : 2 अंक : 6

●

मई 1976

वार्षिक शुल्क : 10 रुपये

एक प्रति : 1 रुपया

प्रस्तुत अंक : 3 रुपये

समर्पण !
वीतराग पथ
के
वीर पथिकों
को ! ! !

आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व भगवान महावीर के गौतम गणधर के बाद तृतीय स्थान प्राप्त अनेक जैन शास्त्रों के रचनाकार आचार्य कुन्दकुन्ददेव हुए। आपने समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, रयणसार आदि अनेक आध्यात्मिक ग्रन्थों की रचना की एवं विश्व के समक्ष भगवान महावीर की वाणी को बेजोड़ साहित्य के रूप में प्रस्तुत किया। शास्त्रारम्भ के पूर्व मंगलाचरण में गणधर देव की तरह आपको स्मरण किया जाता है, जबकि कुन्दकुन्द न महावीर ही थे और न गणधर ही। ऐसा इसलिए कि जो कार्य गणधरों ने किया, वही कुन्दकुन्दाचार्य ने किया। अत: उन्हें कलिकाल सर्वज्ञ तक कहा जाता है।

वर्तमान युग में पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने वही क्रान्ति उत्पन्न की है जो कुन्दकुन्दाचार्य ने की थी।

गुरुदेव के विषय में मैं यहाँ कुछ भी कहना उचित नहीं समझता, क्योंकि समस्त जैन आपसे परिचित ही हैं।

चिर प्रतीक्षित विशेषांक आपके कर-कमलों में है। इस विशेषांक के मुख्य भाग का सम्पादान तत्त्ववेत्ता डॉ० हुकमचन्दजी भारिल्ल, जयपुर ने किया है। मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ कि आपने अपने बहुमूल्य समय में से थोड़ा समय इस विशेषांक के लिये मुझे प्रदान किया।

विशेषांक आपको कैसा लगा? इस विषय पर आपके मत-अभिमत, आलोचना-समालोचनाओं का सादर आमन्त्रण है। इस विशेषांक में जो भी त्रुटि रही हैं, वह केवल मेरी अपनी है, अन्य किसी की नहीं। कृपया ध्यान रखें।

मैं यहाँ अपने ममेरे भ्राता श्री अनिलकुमार जैन, रिसर्च स्कालर का आभार माने हुए नहीं रह सकता। सम्भवत: उसके सहयोग के बिना मैं समय पर प्रकाशित न कर पाता।

– विनोदकुमार जैन

श्रद्धा सुमन

●

शुभ सन्देश

●

ऐसा दुर्लभ अवसर पाकर के भी हे जीव! यदि तूने तेरे स्वज्ञेय को न जाना और स्वाश्रय से मोक्षमार्ग को न साधा तो तेरा जीवन व्यर्थ है। यह अवसर चला जायेगा तब तू पछतायेगा। इसीलिए जाग! ....और स्वहित में तत्पर बन!

— गुरुदेव के बोल

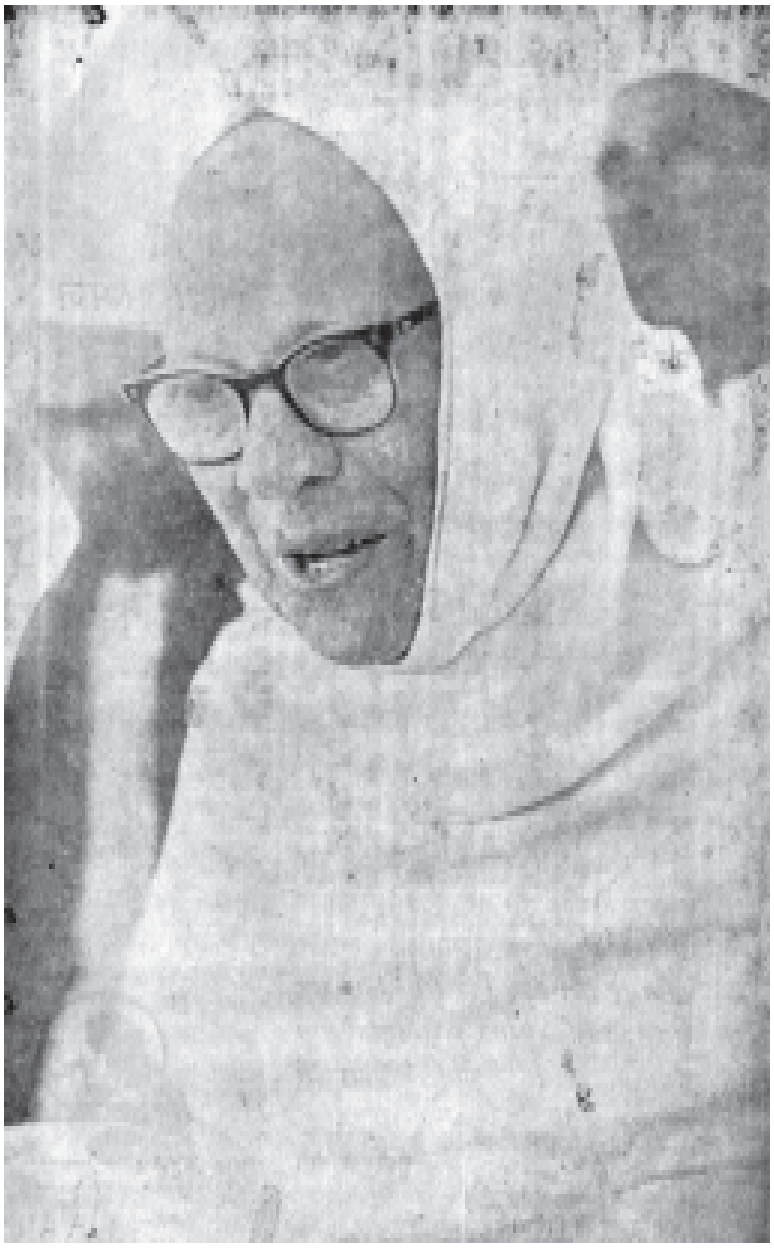

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि आगमपथ भगवान महावीर की 25वीं निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य में परम पूज्य, गुरुदेवश्री कानजीस्वामीजी के जीवन पर एक विशेषांक प्रकाशित कर रहा है।

स्वामीजी ने वीतराग धर्म का प्रचार-प्रसार करके जैनधर्म व समाज का बहुत बड़ा उपकार किया है। वास्तव में सम्यग्दर्शन, ज्ञान व चारित्र धर्म की पुनर्स्थापना में उनका बहुमूल्य स्थान रहा है। जिसका जैन समाज सदैव ऋणी रहेगा।

पूज्य गुरुदेव चिरायु हों व युगों-युगों तक हमें अपने वचनामृत से उपकृत करते रहें, यही मेरी उनके पावन चरणों में विनम्र श्रद्धांजलि है।

विशेषांक की सफलता की कामना करता हूँ।

— साहू शान्तिप्रसाद जैन

आगमपथ के विशेषांक— आध्यात्मिक सन्त कानजीस्वामी— का जो उपक्रम आपने प्रस्तुत किया है, इसके लिये आपको धन्यवाद। सन्त श्री कानजीस्वामीजी ने जैन समाज में नई जागृति और नव चैतन्य का निर्माण किया है। समाज में फैली हुई अनुचित रूढ़ियाँ और अन्य प्रकार विशेषत: मिथ्या तत्त्वज्ञान के बारे में आपका प्रचार बहुत ही प्रभावित हो रहा है। स्वामीजी जो समाज को मार्गदर्शन कर रहे हैं, उसके उसके लिये उनका अभिनन्दन। आशा है समाज को बहुत दिनों तक उनका नेतृत्व मिलेगा। **— सेठ लालचन्द हीराचन्द**

आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने जिस मोक्षमार्ग का उपदेश दिया व मुक्तिमार्ग का मर्म समझाया, उस मार्ग को वर्तमान युग में स्वधर्मी भूले हुए थे व अन्धकार में भटक रहे थे। अब दो हजार वर्ष पश्चात् पूज्य स्वामीजी ने उसी मोक्षमार्ग का अनुसरण कर हमें मुक्ति का मार्ग दर्शाया है, जिसके लिये समस्त दिगम्बर जैन समाज ऐसे महान सन्त का सदैव ऋणी रहेगा।

पहले जहाँ सौराष्ट्र में दिगम्बर जैन मन्दिर तो दूर दिगम्बर जैन धर्म पालक भी दृष्टिगोचर नहीं होता था, अब वहाँ लाखों दिगम्बर जैन बसते हैं तथा सैकड़ों मन्दिरों व जिनबिम्बों का निर्माण आपकी प्रेरणा से हुआ है। जो शास्त्र आज से 50-60 वर्ष पूर्व तक विद्वानों व पण्डितों के पठन व वाचन के योग्य समझे जाते थे, उन शास्त्रों को आज लाखों गृहस्थी अत्यन्त श्रद्धा से पढ़ते हैं। यह सब स्वामीजी की प्रेरणा व उपदेशों का फल है।

पूज्य स्वामीजी चिरायु हों व युगों तक उनके उपदेशों से लाभान्वित होते रहें-यही कामना है।

— साहू श्रेयांसप्रसाद जैन

गत त्रिदशी में स्वकुल क्रमागत परम्परा को छोड़कर वीतराग दिगम्बर धर्म में समागत श्री कानजीस्वामीजी की सम्यग्दर्शन प्रधान प्रवचन प्रणाली वर्तमान भोग प्रधान भौतिक युग में संतप्त प्राणियों के लिये आकर्षण का केन्द्र बनी है, यह प्रशंसनीय विषय है।

आप स्वामीजी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर आगमपथ का विशेषांक प्रकाशित कर रहे हैं। विशेषांक की सफलता के लिये मेरी शुभकामनायें हैं।

— सर सेठ भागचन्द सोनी, अजमेर

यह नि:सन्देह कहा जा सकता है कि सौराष्ट्र में दिगम्बर जैन मन्दिर आदि के निर्माण और सहस्त्रों की संख्या में दिगम्बर जैन धर्मानुयायियों की वृद्धि तथा सौराष्ट्र के बाहर देश में जगह-जगह आधुनिक वातावरण में भी आध्यात्मिक ग्रन्थों के स्वाध्याय के प्रति विशेष रुचि की वृद्धि का श्रेय श्री कानजीस्वामीजी और उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व को है।

सं० 2001, 2002 और 2003 में मेरे पूज्य पिताजी सर सेठ हुकमचन्दजी विद्वतमण्डली एवं कुटुम्ब सहित सोनगढ़ गये थे और वहाँ के वातावरण से प्रभावित होकर 7101 रुपये जैन स्वाध्याय मन्दिर एवं श्री कुन्दकुन्द प्रवचन मण्डप के निर्माण में अर्पित किये थे। उन दिनों इस ओर की समाज का परिचय व आवागमन नहीं हुआ था, अब तो सौराष्ट्र का सम्बन्ध सब ओर हो चुका है और ग्रन्थ प्रकाशन, शिक्षण प्रशिक्षण शिविर, परीक्षालय इत्यादि से वहाँ के साहित्य का प्रचार प्रसार हो रहा है। स्वामीजी भी यात्रा, प्रतिष्ठा व प्रवचन के उद्देश्य से अन्य प्रान्तों में भ्रमण कर चुके हैं। इस 86 वर्ष की वृद्धावस्था में भी सोत्साह आपका भ्रमण और प्रवचन हो रहे हैं।

आगमपथ मासिक पत्र द्वारा भगवान महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव वर्ष के पुनीत अवसर पर स्वामीजी के जीवन दर्शन सम्बन्धी प्रस्तुत विशेषांक योजना की सराहना करते हुए मेरी हार्दिक भावना है कि समाज में मनोमालिन्य और पृथक्त्व की भावना दूर होकर परस्पर वात्सल्य और सौहार्द की वृद्धि हो ताकि समाज में ऐक्य कायम रहे और जैन शासन एवं वीतरागवाणी की उत्तरोत्तर प्रभावना हो।

— सेठ राजकुमार सिंह कासलीवाल, इन्दौर

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि भगवान महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव के संदर्भ में आपने तीर्थंकर महावीर एवं वीतराग वाणी के समर्थ उद्घोषक व प्रबल प्रसारक आध्यात्मिक

संत श्री कानजी-स्वामीजी के जीवन-दर्शन पर, आगमपथ का विशेषांक प्रकाशित करने का विचार किया है।

श्री पूज्य कानजीस्वामीजी वर्तमान जगत के समर्थ आध्यात्मिक प्रवक्ता हैं। उनकी वाणी में ओज है! प्रवचनों में जैन तत्त्वों की निश्चयात्मक दृष्टि से विशेषतायें अन्तर्निहित होती है। यह उन्हीं की देन है कि महर्षि कुन्दकुन्द के आध्यात्मिक ग्रंथों का स्वाध्याय समाज में बहुतायत से होने लगा है एवं लोगों में आध्यात्मिक जागृति एवं रुचि उत्पन्न हुई है।

मैं विशेषांक की हार्दिक सफलता चाहता हूँ।

— रायबहादुर हरकचन्द पाण्ड्या, रांची

भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने समयसारजी की पाँचवीं गाथा में अपने निज वैभव के द्वारा एकत्व-विभक्त आत्मा को दिखलाया है, उस निज वैभव की प्राप्ति के साधनों में एक साधन जिनागम का सेवन भी कहा जाता है। प्रवचनसार की गाथा 42 में प्रतिपादन किया है कि बहिर्मोहदृष्टि आगम कौशल्य और आत्म-ज्ञान के द्वारा नष्ट हो जाती है। पंचास्तिकाय की गाथा 172 में लिखा है कि शास्त्र तात्पर्य वीतरागता है। आगम का ऐसा माहात्म्य जिनेन्द्र कथित शास्त्रों में अनेक जगह बतलाया है।

आगमपथ आध्यात्मिक सन्त पूज्य श्री कानजीस्वामी का विशेषांक प्रकाशित कर रहे हैं, जानकर अत्यन्त प्रसन्नता होती है। वह आगमपथ जीवों को एकत्व-विभक्त आत्मा का दर्शन करावें, बहिर्मोहदृष्टि नष्ट करने का उपाय ज्ञात करावें तथा शास्त्र तात्पर्यरूप वीतरागता प्राप्त कराने के लिये पथ प्रदर्शन करें, तभी उसके प्रकाशन की सफलता यथार्थ मानी जाएगी।

आगमपथ पूज्य स्वामीजी का भवतापनाशक उपदेशामृत का प्रचार और प्रसार सतत करें और जो जगपन्थ है, उससे जीवों को विमुख कर मोक्षपथ पर चलने की प्रबल प्रेरणा देते रहें, ऐसी हमारी शुभकामना है।

— नवनीत लाल सी० जवेरी,
प्रमुख, श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़

यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई कि आगमपथ कानजीस्वामी विशेषांक प्रकाशित कर रहा है। मुझे विश्वास है कि उसमें पूज्य स्वामीजी के व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर सर्वांगीण विवेचन होगा। इस पावन कार्य में मेरी शुभकामनायें आपके साथ हैं।

— सेठ पूरनचन्द गोदीका
अध्यक्ष, पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

मुझे यह जानकर अति प्रसन्नता हुई है कि नैतिक मासिक आगम –पथ सौराष्ट्र के सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक सन्त पूज्य श्री कानजीस्वामी जी के जीवन पर एक वृहद विशेषांक प्रकाशित करने जा रहा है।

पूज्य श्री कानजीस्वामी ने वीतरागता प्राप्त करने का दिगम्बर जैन समाज को जो मार्ग दिया, वह सैकड़ों वर्षों से ओझल हो रहा था। क्रियाकाण्ड में ही वीतरागता प्राप्ति को मुख्यरूप से धर्म का मार्ग माना जाने लगा था, ऐसे समय में इस सन्त ने धर्म का सच्चा मार्ग दिखाकर एक अद्‌भुत क्रान्ति पैदा कर दी। सौराष्ट्र में आपकी प्रेरणा से सैकड़ों दिगम्बर मन्दिरों व जिनबिम्बों का निर्माण हुआ है, व लाखों दिगम्बर जैन बसते हैं।

जो शास्त्र आज से 50–60 वर्ष पूर्व तक विद्वानों व पण्डितों के पठन व वाचन के योग्य समझे जाते थे, उन शास्त्रों को आज लाखों

लोग अत्यन्त सरसता व श्रद्धा से पढ़ते हैं, यह सब पूज्य स्वामीजी की प्रेरणा व उपदेशों का फल है।

पूज्य स्वामीजी चिरायु हों व युगों तक उनके उपदेशों से लाभान्वित होते रहें, यही कामना है।

— श्रीमती लेखवती जैन

उपाध्यक्ष, हरियाणा विधानसभा, चण्डीगढ़

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आगमपथ का 'सन्त कानजीस्वामी' पर विशेषांक प्रकाशित कर रहे हैं। ऐसे आध्यात्मिक सन्तों के जीवन पर विशेषांक प्रकाशित करना वास्तव में, समाज की बड़ी भारी सेवा है। आशा है उनके त्यागमय जीवन की समाज को भरपूर जानकारी मिलेगी। गुरुदेव ने वीतराग धर्म का शुद्ध स्वरूप बताकर समाज का बड़ा उपकार किया है। समाज उनका सदैव ऋणी रहेगा।

आपके प्रयत्न की पूर्ण सफलता की कामना करता हूँ।

— अक्षयकुमार जैन

सम्पादक, नवभारत टाइम्स, दिल्ली

यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि आप 'आगमपथ' का एक 'सद्गुरुदेव कानजीस्वामी' विशेषांक निकाल रहे हैं। कलियुग में परमागम के रहस्योद्घाटक एवं परम भक्त कानजीस्वामी के जीवन और सिद्धान्तों पर प्रकाश डालनेवाला विशेषांक निकालकर 'आगमपथ' अपने नाम को सार्थक सिद्ध कर रहा है। आगम का रहस्य जाने बिना उसके पथ पर कैसे चला जा सकता है? आगमपथ पर चलने के पूर्व उसका रहस्य जानना आवश्यक है। पूज्य गुरुदेव पर परमागम का परम उपकार है जिसका रहस्य पाकर उन्मार्ग छोड़ वे सन्मार्ग पर आये हैं और स्वामीजी का हम सब पर परम उपकार है क्योंकि

आगमपथ का रहस्य खोलकर हमें सन्मार्ग दिखाया है।

आपके इस महान कार्य की मैं हृदय से अनुमोदना करता हूँ और चाहता हूँ कि आगमपथ इस विशेषांक में ही नहीं सदा-सदा आगम का मर्म उद्घाटित करता रहे।

— नेमीचन्द पाटनी
मन्त्री, पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

मुझे यह जानकर अति प्रसन्नता हुई कि नैतिक मासिक आगमपथ सौराष्ट्र के सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक सन्त पूज्यश्री कानजीस्वामीजी के जीवन पर एक वृहद विशेषांक प्रकाशित कर रहा है।

आध्यात्मिक सन्त श्री कानजीस्वामी ने वीतरागता प्राप्त करने के हेतु दिगम्बर जैन समाज को जो मार्ग दिया वह स्तुत्य है। इस सन्त ने दिगम्बर समाज में एक अद्भुत क्रान्ति पैदा कर दी है। जिस वीतराग मार्ग को लोग भूले हुए थे, उन्हें सच्चा मार्ग बताकर एक नयी दिशा प्रदान की है।

सैकड़ों जिन मन्दिरों का निर्माण व सौराष्ट्र में जहाँ दिगम्बर जैन पालक देखने को भी नहीं मिलते थे, अब वहाँ लाखों दिगम्बर जैन रहते हैं, यह सब भी आपकी प्रेरणा व प्रभावना का फल है। अब लगभग प्रत्येक साधारण घर में भी वे दिगम्बर जैन शास्त्र आपको मिल जायेंगे, जो पहले पण्डित लोग ही पढ़ते थे। क्या यह समाज में क्रान्ति नहीं है?

पूज्य स्वामीजी चिरायु हों व आपका प्रयास सफल हो यही कामना है।

— सेठ देवकुमार सिंह
कार्याध्यक्ष, भगवान महावीर दिगम्बर निर्वाण
महोत्सव सोसायटी, मध्यप्रदेश

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि ऐसा महत्त्वपूर्ण कार्य करने का निर्णय आगमपथ ने लिया है।

वर्तमान समय में जब आध्यात्मिकता की ज्योति लोप हो गयी थी और क्रिया-काण्ड, बाहरी दिखावा एवं लौकिक व्यवहार में ही धर्म माना जाने लगा था। शास्त्रों को गूढ़ समझ साधारण जन अध्ययन नहीं करते थे और वे केवल विद्वानों तक ही सीमित थे, ऐसे समय में पूज्य गुरुदेव ने सच्चे वीतराग धर्म का प्रचार कर हमारा ध्यान वास्तविक धर्म की ओर आकर्षित किया और बताया कि—'जिन धर्म तो यह है। जब तक पालन न करोगे मुक्ति न मिलेगी।' हमने पाया कि वास्तविक अमृत तो यही है, अभी तक केवल अन्धेरे में ही भटक रहे थे।

पूज्य स्वामीजी ने भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की वाणी को फिर से उजागर किया है। सुप्त जैन समाज नयी चेतना का आह्वान किया है। समाज उनका सदैव ऋणी रहेगा।

मैं उनके दीर्घायु जीवन की कामना करता हूँ व आशा करता हूँ कि आगमपथ उनके विचारों के अनुरूप ही विशेषांक प्रकाशित करेगा।

— महावीरप्रसाद जैन, एडवोकेट
अध्यक्ष, अ० भा० दिगम्बर जैन परिषद् हिसार

पूज्य श्री कानजीस्वामीजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर आप एक विशेषांक प्रकाशित कर रहे हैं जानकर मन हर्षित हुआ।

मैंने पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों को कई बार सुना है और उनके अनेकों प्रवचनों पर मनन भी किया है। मैंने पाया कि मूल जैन धर्म तो वही है जिसका वाचन गुरुदेव अपने

प्रवचनों में करते हैं, चाहे हम उसे बाहरी क्रिया-कलापों अथवा स्थूल त्याग में ढूँढ़े अथवा मूढ़ आस्था में। मैं उनकी शान्त प्रवृत्ति, अद्‌भुत प्रवचन शैली एवं निज आनन्दमयी मुद्रा से अत्यन्त प्रभावित हुआ हूँ।

मैं कामना करता हूँ कि गुरुदेव चिरायु हों व युगों-युगों तक वीतरागमार्ग को बताते रहें यही मेरी विनम्र श्रद्धांजलि है।

— सुकुमारचन्द्र जैन
महामन्त्री—आ० इ० दिगम्बर भगवान महावीर
निर्वाण महोत्सव समिति (केन्द्रीय)

देवं गुरु श्रुतं वन्दे, धर्म शुद्धं च-विन्दते।
ति अर्थ अर्थ लोकंच-स्नानं च शुद्धं जलं॥

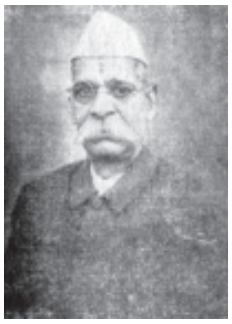

'आतम ही है देव निरंजन,
आतम ही सद्‌गुरु भाई।
आतम शास्त्र धर्म आतम ही,
तीर्थं आतम ही सुखदाई॥
आतम मनन ही है रत्नत्रय,
पुरित अवगाहन सुखधाम।
ऐसे देव, शास्त्र, सद्‌गुरुवर,
धर्म तीर्थ सतत प्रणाम॥'

तीर्थंकर महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव वर्ष के अन्तर्गत 'आगमपथ' द्वारा तीर्थंकर महावीर एवं वीतराग वाणी के समर्थ उद्‌घोषक, महान धर्म प्रचारक आध्यात्म वेत्ता, तत्त्वचिन्तक, मंगल ज्ञानमूर्ति, सन्त प्रवर, परम पूज्य सद्‌गुरुदेव श्रद्धेय श्री कानजीस्वामीजी के जीवन एवं दर्शन पर विशेषांक का प्रकाशन समाज के लिये महान गौरव की बात है।

'सन्तों का समग्र जीवन ही उनका दर्शन हुआ करता है और उनके कार्य जनहितकारी हुआ करते हैं।' ऐसे आत्म तत्त्वदर्शी स्व और पर के कल्याणकर्ता तारणतरण को हमारा शत-शत अभिनन्दन.... इन अमर आशाओं के साथ वह चिरायु हों और युग-युग तक अविरल ज्ञान की धारा प्रवाहित करते रहें। **— सेठ भगवानदास शोभालाल जैन**
सागर (म०प्र०)

तीर्थंकर महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर आत्मार्थी पूज्य श्री कानजीस्वामीजी के जीवन दर्शन पर आगमपथ विशेषांक प्रकाशित कर रहा है, यह अत्यन्त प्रसन्नता एवं गौरव का विषय है।

पूज्य श्री कानजीस्वामीजी ने दिगम्बर जैन धर्म को नवजीवन प्रदान किया और अपनी मृदु प्रेरणा से धर्म के समस्त संस्कारों को निहित करने में समाज को एक नयी दिशा प्रदान की।

मैं भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी की ओर से विशेषांक की सफलता एवं शुभकामनायें चाहता हूँ।

— जयन्तीलाल लल्लूभाई परिख
महामन्त्री—भा० दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई

आध्यात्मिक सन्त श्री कानजीस्वामीजी के द्वारा वीतरागता प्राप्त करने हेतु दिगम्बर जैन समाज को वर्तमान समय में जो मार्गदर्शन मिला वह सैकड़ों वर्षों से ओझल हो रहा था। केवल क्रियाकाण्ड में ही वीतरागता प्राप्ति को मुख्यरूप में धर्म का मार्ग माना

जाने लगा। ऐसे समय इस सन्त ने एक अद्‌भुत क्रान्ति को जन्म दिया और समाज की आँखों से भ्रम का पर्दा हटाया।

आज लाखों लोग अत्यन्त श्रद्धा से उन शास्त्रों का अध्ययन करते हैं जो किसी समय में विद्वानों के योग्य ही समझे जाते थे। सौराष्ट्र में सैकड़ों दिगम्बर जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ एवं हजारों दिगम्बर जैनधर्म में अंगीकृत हुए यह सब स्वामीजी की प्रेरणा एवं उपदेशों का फल है।

पूज्य स्वामीजी चिरायु हों व युगों तक हम वीतराग वाणी से लाभान्वित होते रहें, यही कामना है। **— पं० पद्मश्री सुमतिबाई शाह**

अध्यक्ष, महिला विद्यापीठ, सोलापुर

पूज्य गुरुदेव कानजीस्वामीजी ने जैन धर्मावालम्बियों में स्वाध्याय की रुचि जागृत की यह उनका इतना बड़ा उपकार है, जिसे शताब्दियों तक नहीं भुलाया जा सकता। पूज्य कानजीस्वामीजी ने सोनगढ़ ट्रस्ट द्वारा अनेकों ग्रन्थों का प्रकाशन तथा सस्ते मूल्य पर उनका वितरण, प्रत्येक कार्य में समय की मर्यादा, उच्च अध्ययन, स्व एवं पर का विवेक, व्यवहार एवं निश्चयनय का अभ्यास, शुद्ध, शुभ एवं अशुभ भावों की सूक्ष्म चर्चा द्वारा समाज में ज्ञान पिपासा को जागृत कर जिनवाणी को शास्त्र भण्डारों से निकालकर जन-जन तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया है।

मैं स्वामीजी के मंगलमय जीवन की अभिवृद्धि हेतु अपनी समस्त शुभकामनायें प्रस्तुत करता हूँ। **— बाबूलाल पाटौदी**

भू० पू० सदस्य—मध्यप्रदेश विधानसभा, इन्दौर

आगमपथ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीजी का विशेषांक प्रकाशित कर रहा है, यह महान स्तुत्य प्रयास है। ऐसे महापुरुष के पावन चरित्र का प्रकाशन आपके पत्र का गौरव ही नहीं बढ़ायेगा

वरन् लोक-मांगल्य की प्रतिष्ठा भी करेगा।

चरित्र रचना आज के लोक जीवन की सबसे बड़ी आवश्यकता है। आज उपदेशकों की आवश्यकता नहीं, आदर्शों की जरूरत है। आपका विशेषांक एक महामानव के चरित्र का आदर्श जन-जीवन को प्रदान कर निश्चित ही राष्ट्र के चरित्र का उन्नयन करेगा। इस अर्थ में आप राष्ट्र की भी एक बहुत बड़ी सेवा कर रहे हैं।

श्री कानजीस्वामी इस युग में एक शुद्ध आध्यात्मिक क्रान्ति के जन्मदाता महापुरुष हैं। आध्यात्मिक क्षेत्र में ऐसी क्रान्ति पहले शताब्दियों में नहीं हुई। वे वीतराग श्रमणों के जिस आध्यात्म का प्रतिपादन कर रहे हैं, वह आज के विह्वल लोक-जीवन के लिये स्थायी शान्ति का एकमात्र समाधान है।

गत वर्ष भगवान महावीर के 2500वें निर्वाणोत्सव के पावन उपलक्ष में कोटा की औद्योगिक नगरी में दिनांक 24 मई से 8 जून तक जो 16 दिवसीय विशाल जैन दर्शन-शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर समारोह सम्पन्न हुआ। उस अवसर पर जैन दर्शन तलस्पर्शी विद्वानों के साथ किसी महाभाग्य से पूज्य श्री कानजीस्वामीजी ने भी 1 जून से 8 जून तक कोटा में मंगल प्रवास करने का अनुग्रह किया। कोटा का वायुमण्डल अध्यात्म की ध्वनियों से मुखरित हो उठा। आठ दिवस तक बहुत नजदीक से मुझे पूज्य गुरुदेव की सेवा का स्वर्ण अवसर उपलब्ध हुआ। मैं धन्य हुआ और मैंने पाया कि गुरुदेव जैसे बाहर से उज्ज्वल हैं, भीतर से भी वैसे ही पवित्र हैं। अन्तर्बहिर्व जीवन की यह एकरूपता आज लक्ष-कोटि लोगों को दिशा-बोध दे रही है। पूज्य गुरुदेव का वह अष्ट दिवसीय समागम मेरे जीवन का चिर-स्मरणीय प्रसंग बन गया है।

मैं अपनी शत-सहस्र श्रद्धांजलियाँ उन महामानव के चरणों में समर्पित करता हूँ।

— **जम्बूकुमार बज,** कोटा (राज०)

पूज्य श्री कानजीस्वामीजी के जीवन एवं दर्शन पर एक विशेषांक प्रकाशित करने का निर्णय लेने के लिये कृपया मेरी शुभकामनायें स्वीकारें।

एक लम्बे अरसे से यह आवश्यकता महसूस की जा रही थी और यह जरूरी भी था कि जो मार्गदर्शन एवं कार्य पूज्य श्री स्वामीजी द्वारा किया गया, उसे समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया जाए। समस्त समाज को जैन दर्शन एवं उसकी उपयोगिता का ज्ञान हो। पूज्य स्वामीजी को भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के उपदेशों का प्रचार एवं प्रसार करने का सबसे अधिक श्रेय जाता है।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा रचित शास्त्रों का जन-जन में प्रचारित करने का प्रमुखतय श्रेय स्वामीजी को ही है। यह जैन समाज का कर्तव्य है कि जो महान कार्य स्वामीजी द्वारा हो रहा है। उसको अपने जीवन में उतारें। मैं आपको ऐसे महान कार्य की सफलता की शुभकामनायें भेजता हूँ।

— जयचन्द डी. लोहाड़े, हैदराबाद

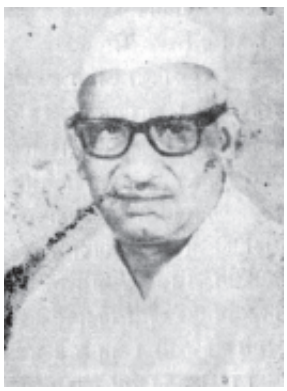

हमने बाल्यकाल से पुराणों की कथायें सुन एवं मन्दिरजी में अथवा स्थानीय विद्वानों से ग्रहण कर रटी हुई पूजा करके धर्म करने के समस्त उत्तरदायित्व को पूरा समझ, अपने को बहुत भाग्यशाली मान स्वर्ग प्राप्ति की अभिलाषा लिये अनेकों कार्य किये एवं समाज में भी सभी को अधिकतर ऐसा ही करते देखा तथा दशलक्षण पर्व के समय शास्त्र प्रवचनों में एवं अन्य गतिविधियों द्वारा भी इन्हीं क्रियाओं का प्रचार होते देखा। कभी भी जीव, पुद्गल के सम्बन्धों की जानकारी समझायी नहीं जाती थी।

उस विषय को या तो छोड़ दिया जाता था या केवल पढ़ दिया जाता था। आचार्य कुन्दकुन्द भगवान आदि के ग्रन्थ गृहस्थों के पढ़ने के लिये नहीं हैं, यहाँ तक भी कहते सुना गया।

पिछले 35 वर्षों से दिगम्बर जैन समाज में धर्म के नाम के समझने की चेतना जागृत हुई देखने में आ रही है तथा क्रियाकाण्ड में ही धर्म है ऐसी घोर मिथ्यात्व की भावना में अन्तर आया है, वह गुजरात के प्रख्यात सन्त पूज्य श्री कानजीस्वामीजी की अद्‌भुत देन है। आपने दिगम्बर जैन धर्म का जो उपकार किया है, उससे जैन समाज कभी भी उऋण नहीं हो सकता।

आपके श्री चरणों में मेरे श्रद्धा सुमन सादर अर्पित हैं।

— भगतराम जैन
मन्त्री, आल इण्डिया दिगम्बर भगवान महावीर
2500 वाँ निर्वाण महोत्सव सोसायटी, नई दिल्ली

विगत 50 वर्षों में कानजीस्वामीजी ने दिगम्बर जैन धर्म में जो आध्यात्मिक क्रान्ति का प्रादुर्भाव किया है और भगवान कुन्दकुन्द द्वारा वर्णित वीतराग विज्ञान की अपूर्व ज्योति द्वारा भव्य जीवों के हृदयों को आलोकित किया है, उससे जैन समाज में एक नई चेतना एवं वीतरागता की लहर आयी है। जन मानस के हृदयों में स्वाध्याय द्वारा ज्ञान पिपासा तृप्त करने की भावना जागृत हुई है।

आपके सद्‌प्रयासों द्वारा अनेकों वीतराग दिगम्बर मन्दिरों का निर्माण, प्रभावनायुक्त पंच कल्याणक प्रतिष्ठाओं का होना एवं लाखों व्यक्तियों द्वारा वीतराग वाणी ग्रहण कर सच्चा दिगम्बर मार्ग अपनाना, आपका ही आलोकिक प्रताप है।

सौराष्ट्र प्रदेश में जहाँ दिगम्बरमार्गी दृष्टिगोचर भी नहीं होता था, वहाँ गगनचुम्बी जैन मन्दिर व अद्‌भुत शान्ति प्रदायक वीतराग जिनबिम्ब नजर आते हैं और उस मार्ग पर लाखों जीव चलकर

आत्मिक शान्ति का सुखास्वादन कर रहे हैं। आपश्री मोक्षमार्ग के साधक वीतराग धर्म के प्रवक्ता हैं। आधुनिक युग में जहाँ चारों ओर पापाचार, अनाचार का बोलवाला है, अर्थयुग की प्रमुखता है वहाँ आपके सान्निध्य में शान्ति प्रिय सन्तोषी जैन भाई स्वाध्यायशील नजर आ रहे हैं, यह सब आप द्वारा प्रदत्त ज्ञानज्योति का चमत्कार है।

मैं श्रद्धेय स्वामीजी के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि उनके द्वारा भगवान अरहन्त प्रणीत सच्चे वीतराग मार्ग का जन मानस हितार्थ प्रचार एवं प्रसार निरन्तर होता रहे।

आगमपथ का यह प्रयास सराहनीय है। **— ला० प्रेमचन्द जैन**

कोषाध्यक्ष, अ० भा० दिगम्बर भ० महावीर
निर्वाण महोत्सव सोसायटी

करुणा सागर, ज्ञानधन, साक्षात् चैतन्य चमत्कार स्वरूप स्वामीजी की आगमवाणी दसों दिशाओं में गुंजायमान हो रही है, जिस ध्वनि तरंग में डूबकर असंख्य लोग आत्मरस का रसास्वादन कर रहे हैं, ऐसे महान सन्त को मेरा शत: शत: नमन। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यह विशेषांक आगम के अमूल्य ग्रन्थों में अपना विशेष स्थान प्राप्त कर स्वामीजी द्वारा प्रज्वलित ज्ञानज्योति का एक अपूर्व आदर्श होगा। **— कैलाशचन्द चौधरी**

महामन्त्री, मध्य प्रदेशीय दिगम्बर महावीर निर्वाण महोत्सव सोसायटी

आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य श्री कानजीस्वामी का जैन समाज पर महान उपकार है। स्वामीजी ने जिनवाणी के सतत् अध्ययन की जो महान प्रेरणा सर्व-साधारण को दी है, उससे भ्रान्तियों का निवारण व ज्ञानार्जन तो होता ही है, साथ ही वह इस भौतिक युग में अध्ययनशील व्यक्तियों की सुख और शान्ति का मार्ग भी प्रशस्त करती है।

जीव की दुखित अवस्था का कारण एकमात्र इसी का अज्ञानभाव है। अपने द्रव्य गुण पर्याय से अनभिज्ञ यह जीव पर पदार्थों को निमित्त बनाकर स्वयं अपने में सुख-दुःख को उत्पन्न करता है। वह चाहे तो स्वयं ही अपने स्वानुभव के आश्रय से अज्ञानजनित विभाव भावों का विनाश कर अक्षय अविनाशी सुख को प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार हमारे आत्मविश्वास को जागृत करनेवाले एवं स्वानुभूतिजन्य ज्ञानकिरणों में शाश्वत सुख के पथ को आलोकित करनेवाले इस महान सत्पुरुष के पावन चरणों में, मैं अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पण करते हुए कामना करता हूँ कि पूज्य श्री युग-युग तक इस भारतभूमि पर विद्यमान रहें एवं मुमुक्षुओं के हितार्थ मोक्षपथ को सदा आलोकित करते रहें। **— चम्पालाल म० गाँधी**

सैक्रेट्री, ध्रांगध्रा केमिकल वर्क्स लि० बम्बई

पूज्य कानजीस्वामीजी ने वीतरागता सिद्धि के सोपान दिगम्बर जैन आचार्य पूज्य कुन्दकुन्द, आचार्य पूज्यपादस्वामी तथा पूज्य अमृतचन्द्राचार्य आदि के ग्रन्थों का न केवल सूक्ष्म अध्ययन तथा मनन किया है वरन् उनको समाजोपयोगी प्रचार-प्रसार का अभूतपूर्व संस्थान स्थापित कर तत्त्व चिन्तन के सही रूप का पथ सरल किया है। क्रियाकाण्ड द्वारा ही वीतरागता प्राप्ति के भ्रम को दूर करने में इन्होंने समाज में अभूतपूर्व क्रान्ति पैदा कर दी है और जाति भेद से परे मनुष्यमात्र को आत्मोत्थान का पथ प्रशस्त किया है।

पूज्य स्वामीजी दीर्घायु हों और आपके श्रीमुख से वीतराग शासन की प्रभावना निरन्तर बढ़ती रहे, यही कामना है। **— नेमीचन्द जैन**

सचिव, साहू जैन ट्रस्ट, नई दिल्ली

जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि आप आगमपथ का विशेषांक आध्यात्मिक सन्त पूज्य श्री कानजीस्वामी पर प्रकाशित कर रहे हैं।

आशा है आपका प्रयत्न सार्थक होगा।

— लक्ष्मीचन्द्र जैन
मन्त्री भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली

आगमपथ का 'आध्यात्मिक सन्त पूज्य श्री कानजीस्वामी' विशेषांक प्रकाशित हो रहा है। यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

पूज्य श्री कानजीस्वामीजी की आध्यात्मिक प्रेरणा एवं विचारधारायें बहुत महत्वपूर्ण हैं एवं जैन धर्म के सिद्धान्तों को प्रगतिशील बनाने में पूर्ण सक्षम हैं तथा भविष्य में भी बराबर आपकी प्रेरणा मार्ग दिग्दर्शित करती रहेगी। ऐसे पूज्य सन्त के प्रति मैं श्रद्धा व्यक्त करते हुए आपके दीर्घायु जीवन की कामना करता हूँ।

— नथमल सेठी
उपसभापति, केन्द्रीय दिगम्बर महावीर निर्वाण सोसायटी

पिछले 50 वर्षों में स्वामीजी द्वारा एक आध्यात्मिक क्रान्ति का प्रादुर्भाव हुआ है, जिससे समस्त दिगम्बर जैन समाज में एक नई चेतना की लहर आयी है, उनके प्रभाववश दिगम्बर मन्दिरों का निम्रण हुआ, लाखों व्यक्तियों ने जैन धर्म अंगीकार किया, जहाँ सौराष्ट्र में दिगम्बर जैन नाम मात्र थे। अब लाखों दिगम्बर जैन वहाँ रहते हैं।

पूज्य कानजीस्वामीजी मोक्षमार्ग के साधक हैं। वीतराग धर्म के प्रवक्ता हैं। ऐसे युग में जब कि हम अपने परम्परागत मूल्यों को भुला बैठे थे, उन्होंने आध्यात्मिकता का गहन प्रकाश किया। महावीर भगवान के 2500वें निर्वाण महोत्सव को अति शुद्ध व धार्मिकरूप में मनाने का आपका बड़ा योगदान रहा है।

मैं स्वामीजी के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

— रमेशचन्द जैन

जनरल मैनेजर, टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आगमपथ जैन जगत के महान आध्यात्मिक सन्त परम पूज्य कानजीस्वामीजी के जीवन दर्शन पर एक विशेषांक प्रकाशित करने जा रहा है। वीतराग भगवान महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव वर्ष में जिनवाणी एवं उनके सिद्धान्तों के प्रचार व प्रसार के लिये यह अत्यन्त महत्वपूर्ण कदम है।

यह विशेषांक स्वामीजी के विचारानुरूप जैनागम की व्याख्या प्रस्तुत करके जन-जीवन का पथ प्रदर्शन करेगा, ऐसा विश्वास है।

विशेषांक की सफलता के लिये मेरी हार्दिक शुभकामनायें।

— धन्नामल जैन

कार्याध्यक्ष, भ० महावीर 2500वाँ निर्वाण महोत्सव समिति

हरियाणा प्रदेश

मुझे प्रसन्नता हुई कि आप परम पूज्य कानजीस्वामीजी के जीवन दर्शन पर एक वृहद विशेषांक प्रकाशित करने जा रहे हैं।

स्वामीजी ने दिगम्बर जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में जो योगदान दिया है, वह वीतराग धर्मपालकों के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आपका सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र पर विवेचन एवं समयसार का गहनतम अध्ययन सभी जीवों के लिये हितकारी है।

विशेषांक की सफलता के लिये मंगल कामनायें।

— दयाचन्द जैन
अध्यक्ष, आ० इ० दिगम्बर भ० महावीर
2500वाँ निर्वाण महोत्सव सोसायटी, पंजाब

श्री कानजीस्वामीजी ने दिगम्बर समाज में तत्त्वज्ञान की दिशा में निश्चय ही जागरण किया है। जैन धर्म मूलत: आध्यात्म प्रधान धर्म है और आध्यात्म का विवेचन दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द महाराज ने समयसार में किया है। समयसार एक ऐसा ग्रन्थरत्न है, जिसकी ओर आत्मगवेषी मुमुक्षु का ध्यान जाना स्वाभाविक है।

स्वामीजी इस समयसार से प्रभावित होकर दिगम्बर परम्परा में आये और उन्होंने समयसार के अध्ययन, मनन, चिन्तन और सतत् स्वाध्याय पर बल दिया। ऐसे तत्त्व जिज्ञासु और मुमुक्षु श्री स्वामीजी के सम्बन्ध में आगमपथ का विशेषांक इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम है। हम उसका स्वागत करते हैं। **— डा० दरबारी लाल कोठिया**
अध्यक्ष, अ० भा० दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्

श्री कानजीस्वामी सोनगढ़ (सौराष्ट्र) के एक आध्यात्म रसिक 'दिगम्बर जैन विद्वान' हैं। करीब 30 वर्ष से वे दिगम्बर जैन धर्म के आध्यात्म पक्ष से प्रभावित हुए हैं। लाखों व्यक्तियों को सधर्म का दर्शन कराया व श्रद्धानी बनाया है। सौराष्ट्र में जहाँ एक भी दिगम्बर जैन मन्दिर न था, बीसों मन्दिर बनवाये, पचासों प्रतिष्ठायें करायीं— तीर्थ वन्दना संघ निकाले और सर्वत्र विहार कर धर्म की प्रभावना में श्री वृद्धि की है। मैं उनके इन समस्त कार्यों प्रति श्रद्धानवत हूँ और उनके दीर्घ जीवन की भावना करता हूँ।

— पंडित जगमोहनलाल शास्त्री, कटनी

आध्यात्मिकता के प्रेरणास्त्रोत!

आज भौतिकवाद का बोलवाला है, तब विशुद्ध आत्मतत्त्व के चेतन ग्रन्थ समयसार का चिन्तवन, मनन, अनुशीलन एवं स्वाध्याय का वातावरण पैदा करके आध्यात्मिकता का जो अमृतपान पूज्य कानजीस्वामीजी ने करवाया है, वह इस युग में अनुपम है और यही उनकी अनुपम देन है।

— शान्तिलाल वनमाली सेठ
भू० पू० सम्पादक—जैनप्रकाश, नई दिल्ली

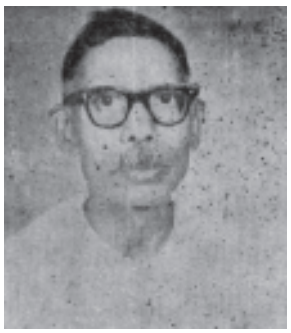

आप श्री कानजीस्वामीजी के नाम पर आगमपंथ का विशेषांक प्रकाशित कर रहे हैं, यह बहुत ही समयोचित सत्कार्य है। श्री कानजीस्वामीजी ने भूले भटकनेवालों के लिये उस सम्यग्दर्शन की दिव्य ज्योति की ओर संकेत किया है, जिसके बिना निखिल विश्व के सर्व जीव आज तक भव-भ्रमण कर रहे हैं और उसके पाये बिना पता नहीं कब तक परिभ्रमण करते रहेंगे। उन्होंने आज के भौतिक युग में निमग्न लोगों को आध्यात्मिक सन्देश देकर सन्मार्ग की ओर आकृष्ट किया है, इसके लिये वे प्रत्येक धर्मप्रेमी सन्मार्गी व्यक्ति के द्वारा प्रशंसनीय एवं समादरणीय है।

मैं आपके प्रयास की सफलता के लिये मंगल कामना करता हूँ और भावना करता हूँ कि वे शतायुष्क होने तक बराबर सन्मार्ग प्रचार एवं प्रसार में अग्रसर बने रहें।

— पंडित हीरालाल शास्त्री, ब्यावर

मैंने अन्य अनुयोग ग्रन्थों के साथ-साथ श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्य के समयसार आदि आध्यात्मिक ग्रन्थों का अनेक बार मनोयोगपूर्वक अध्ययन किया, किन्तु मुझे तो श्री कानजीस्वामीजी के प्रवचनों में

रंचमात्र भी अन्तर नहीं दिखा। उन्होंने कुन्दकुन्दाचार्य एवं टीकाकारों के हृदयों को खोला है जो कि जैन सिद्धान्त का मर्म है। अन्य अनुयोगों में व्यवहारनय की मुख्यता है किन्तु मोक्षमार्ग निश्चयनय के आश्रय है। समयसार, गाथा 272 फलितार्थ यह हुआ कि व्यवहारनय के आश्रय बन्ध मार्ग है। निचली भूमिका में (सविकल्प अवस्था में) व्यवहारनय आता अवश्य है किन्तु आश्रयणीय अर्थात् लक्ष्य बनानेयोग्य नहीं—निश्चयनय का वाच्य परम पारणामिक शुद्ध जीवत्व (कारणपरमात्मा) भाव ही के लक्ष्य से धर्म रत्नत्रय की उत्पत्ति वृद्धि एवं शुद्धि और पूर्णता होकर मोक्ष की प्राप्ति होती है। अनादि काल से अज्ञानी जीव जो व्यवहार का एकान्त से पक्ष हो गया, त्रिकाली निरावरण ध्रुव स्वभाव को न जाना, न माना और न अनुभव किया इसीलिए संसार बनता चला आ रहा है—यह जानने के लिये दोनों नयों का स्वरूप प्रयोजनीय है अन्यथा एकान्ती बन जायेगा। इसलिए श्रद्धा में मुमुक्षु के सदा ही ध्रुव परम ज्ञायकभाव की ही मुख्यता रहती है। कथन करने में कभी निश्चय को मुख्य किया जाता है, कभी व्यवहार को। स्वामीजी ने जैन सिद्धान्त का निखरा हुआ मर्म जो कि मूलभूत है प्रदर्शित किया है, मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

— ब्रह्मचारी छोटेलाल, उदासीन आश्रम, इन्दौर

सन्त श्री कानजीस्वामीजी का स्वाध्याय के क्षेत्र में बहुमूल्य प्रदेय है। उन्होंने लाखों-लाख लोगों को जो जैन दर्शन का 'क, ख, ग' भी नहीं जानते थे पण्डित बनाया है। उन्होंने सिर्फ किताबी ही नहीं वरन् जीवन्त मोक्षमार्गी बनाने में उनका बहुत बड़ा योग है। जहाँ तक मैं समझ पाया हूँ उनका ध्यान निर्मल चिन्तन पर है। कई श्वेताम्बर बन्धुओं को भी उनकी प्रशंसा करते हुए मैंने सुना है। मेरे हृदय में उनके ज्ञान के प्रति अपरम्पार श्रद्धा है। एक ज्ञानमूर्ति की

तरह वे अत्यन्त पूज्य हैं। ऐसे समय जब लोग ज्ञान, आस्था और चारित्र्य सभी से विचलित और स्खलित हैं, सन्त श्री कानजीस्वामीजी के प्रेरक—पवित्र जीवन पर विशेषांक प्रकाशित कर एक उल्लेखनीय कार्य कर रहे हैं।

मेरी राशि-राशि शुभाकांक्षायें स्वीकार कीजिये।

— डॉ० नेमीचन्द जैन
सम्पादक - तीर्थंकर

कई-कई बार किसी धर्म के विषय में ऐसी परिस्थितियों का सृजन हो जाता है, जब ऐसा महसूस होने लगता है कि योग्य-धर्म प्रणाली व विचार सरणि के ज्ञाताओं के अभाव में कहीं वह समाप्त तो नहीं हो जायेगी... ? जैन धर्म में दिगम्बर आम्नाय के लोगों की संख्या अल्प है, उसमें भी योग्य ज्ञाताओं, विचारकों, दार्शनिकों एवं समर्थकों की दिन-व-दिन कमी होते जाने के कारण उस संख्या में भी ह्रास होने की सम्भावना उत्पन्न हो गयी थी। गुजरात में वैसे देखा जाये तो जैन बहुत अधिक तादाद में बसे हुए हैं किन्तु उनमें दिगम्बरों की संख्या बहुत ही कम है। जैन धर्म के दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दो प्रमुख सम्प्रदाय हैं। दोनों के ही मूल तत्त्वों का ज्ञान एक है किन्तु पूज्य श्री कानजीस्वामी ने समयसार एवं उसके समकक्ष अन्य आगमों का दिगम्बर आम्नायातीत तत्त्वों की विशुद्धता को परख कर प्रचार, वांचन, निर्वाचन एवं विवेचन करना प्रारम्भ किया। उनका कथन लोगों को भी जँच गया इसलिए वे हजारों की संख्या में उनका स्वाध्याय, प्रवचन एवं मनन करने लगे हैं। कानजीस्वामीजी ने उन लोगों में मात्र स्वाध्याय की रुचि ही उत्पन्न नहीं की बल्कि हजारों की संख्या में प्रचारकों का निर्माण किया। दिगम्बर आम्नाय सदैव उनकी ऋणी रहेगी। उन्हें शतशः प्रणाम....। **— कुसुम बहन शाह,** बम्बई (सुप्रसिद्ध समाज नेत्री)

अनवद्यः स्याद्वादः

सन् 1940 में श्री कानजीस्वामीजी के साथ गिरनार की तलहटी में, तब प्रथम साक्षात्कार हुआ था, जब स्वामीजी ने अन्तरात्मा के संकेत पर 'जिनेश्वर न तो मतं पटकवस्त्र पात्र गुहों, विम्श्य सुख कारणं स्वमशक्तकैः कल्पितः' की सद्दृष्टि पाकर 'स्थाविर कल्प' की सुखशील चर्या को सत्पथ मानना छोड़ दिया था। और जिनकल्प की नग्नता को ही मोक्षमार्ग समझकर जिनधर्म (दिगम्बर) के साहित्य का पर्यातोड़न अपना लिया था। एक व्यक्ति की सद्-दृष्टि कैसे सहस्त्रों व्यक्तियों की सम्यक् दृष्टि को खोजने में निमित्त होती है; स्वामीजी की जीवनी इसका ज्वलन्त निदर्शन है। निर्ग्रन्थ धर्म की चर्चा मात्र करके मानव कितनी शान्ति, ख्याति और पूजा का लाभ पाता है, यही जिनकल्प की यथार्थता और क्षमता को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है। जन्मना-प्राप्त मान्यता और संस्कारों से निर्भान्त होकर अधिगमज मान्यता और संस्कारों के मार्ग पर अग्रसर होते समय कुछ हट-ग्राह स्वाभाविक है। क्योंकि ऐसी एक परकचर्चा और चर्या बनाय बिना, फिर चिरन्तन संस्कारों में लुढ़क जाने की आशंका रहती है। निश्चित ही स्वामीजी और उनके निमित्त से बने जिनकल्पी साधर्मी हजारों द्वारा अभिनन्दनीय हैं, क्योंकि उनका 'जिन घर आना' इस शती की अद्भुत एवं महत्वपूर्ण घटना है। वह दिन दूर नहीं जब स्वामीजी और उनके अनुयायी 'तन बिन वसन, असन बिन वन में नासा दृष्टि धरी' को चरित्रार्थ करेंगे। नमोऽस्तु समयसाराय।

— प्रो० खुशालचन्द्र गोरावाला
काशी विद्यापीठ, वाराणसी

वर्तमान आध्यात्मिक सन्तों में श्री कानजीस्वामी का अपना एक विशिष्ट स्थान है। सोनगढ़ के इस सन्त ने जैन धर्म की प्रभावना में

अमूल्य योगदान दिया है। गुजरात में दिगम्बर जैन धर्म की आज जो स्थिति है, वह आपके ही उपदेशों का फल है।

तप, त्याग और आराधना के तेज से प्रखर क्रान्तिकारी श्री कानजीस्वामी का सम्पूर्ण जीवन ही धर्मानुराग की एक गौरवमय गाथा है। मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि आगमपथ इस महान सन्त के जीवन पर एक विशेषांक प्रकाशित करने जा रहा है। विशेषांक की सफलता की कामना करता हूँ।

— पारसदास जैन

सह सम्पादक - नवभारत टाइम्स

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि आप पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामीजी के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर एक विशेषांक प्रकाशित करने जा रहे हैं।

गत 50 वर्षों में दिगम्बर जैन धर्म में जो आध्यात्मिक क्रान्ति का प्रादुर्भाव हुआ है, उसका श्रेय पूज्य श्री कानजीस्वामी को जाता है। आपने वीतरागधर्म की पुर्नस्थापना की जिससे समाज में एक नई चेतना की लहर प्रवाहित हुई। अनेकों दिगम्बर जैन स्वधर्मियों को निज धर्म पर दृढ़ श्रद्धान हुआ।

पूज्य स्वामीजी का जैन धर्म पर अत्यन्त उपकार है। उन्होंने समाज को एक नयी रोशनी की है। समयसार ग्रन्थ को प्रकाश में लाकर आपने हजारों लोगों के जीवन की दृष्टि ही बदल दी है।

मैं स्वामीजी के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

— **श्रीचन्द जैन,** नई दिल्ली

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीजी के व्यक्तित्व पर विशेषांक प्रकाशित करने का विचार अत्यन्त सराहनीय है।

श्री कानजीस्वामीजी के प्रभाव से गुजरात व अन्य राज्यों में वीतराग दिगम्बर धर्म का महान प्रचार हुआ। आपने मूल जैन धर्म की व्याख्या की एवं दिगम्बराचार्य भगवान कुन्दकुन्द उपदेशित मार्ग के मर्म को समझाया। फलस्वरूप एक आध्यात्मिक क्रान्ति का प्रादुर्भाव हुआ एवं सारे देश में लाखों बन्धुओं के जीवन मूल्य बदल गये। जो व्यवहार को धर्म ही समझते रहे, उन्हें एक नयी राह मिली। सारा समाज आपके इस उपकार के लिए सदैव ऋणी रहेगा।

गुरुदेव मोक्षमार्ग के साधक हैं, आध्यात्मिकता के पुंज हैं। लाखों व्यक्तियों ने आपके प्रभाव से दिगम्बर धर्म स्वीकार किया है।

गुरुदेव दीर्घायु हों। मंगल कामनायें। — **रंगूलाल जैन,** दिल्ली

तीर्थंकर महावीर की 25वीं निर्वाण शताब्दी पर आप श्री कानजीस्वामी पर एक विशेषांक प्रकाशित कर रहे हैं, यह अत्यन्त समयोचित एवं सराहनीय कार्य है।

पूज्य स्वामीजी गत 50 वर्षों से सारे भारत में दिगम्बर वीतराग धर्म की ज्योति प्रज्ज्वलित कर रहे हैं। आपके सदोपदेश

से लाखों बन्धु मुमुक्षु बने हैं। उनके जीवन को नये आयाम प्राप्त हुए हैं।

श्री कानजीस्वामी युगों-युगों तक जियें एवं समाज को उनके उपदेशों का लाभ मिलता रहे, यही शुभकामना है।— **सुभाषचन्द्र जैन**

शकुन प्रकाशन, दिल्ली

आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजी-स्वामीजी वीतराग वाणी का जो व्यापक सन्देश दे रहे हैं; वह ही मूल सिद्धान्त है, जिससे प्रत्येक आत्मा सम्यग्दर्शन प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त कर सकता है। स्वामीजी ने अनेकों विशाल दिगम्बर जैन मन्दिरों का निर्माण करा कर व लाखों की संख्या में अनेकों ग्रन्थों का प्रकाशन कराकर जन-जन तक वीतराग वाणी का प्रचार किया है, इसके लिये समस्त दिगम्बर समाज आपका ऋणी रहेगा।

विशेषांक की सफलता की कामना करता हूँ।

— रमेश जैन, प्रचार सचिव

अ० भा० दिगम्बर भगवान महावीर निर्वाण महोत्सव सोसायटी

महान विभूति!

सन्त कानजीस्वामी हमारे देश की महान विभूतियों में से हैं। उन्होंने जैन धर्म, जैन संस्कृति और जैन दर्शन की जो सेवा की है, वह सर्वविदित है। कानजीस्वामी की सब से बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने समाज के सुख-दु:ख के साथ तादात्म्य स्थापित किया है और वे अपनी वाणी और लेखनी के द्वारा समाज को ऊँचा उठाने के लिये सतत् प्रयत्नशील हैं।

कानजीस्वामीजी का हृदय अत्यन्त निर्मल स्पन्दनशील है। अत: उनकी अहर्निश कामना रहती है कि हमारा समाज सुखी हो, उसका मंगल हो, कल्याण हो। इसी कामना को लेकर उन्होंने समाज को सुखी बनाने के लिए बहुत कुछ किया है।

मेरी आंतरिक कामना है कि श्रद्धेय कानजीस्वामी शतजीवी हों, स्वस्थ रहें और उनका मार्गदर्शन समाज को चिकाल तक प्राप्त होता रहे।

— यशपाल जैन
सम्पादक - जीवन साहित्य

सत्पुरुष कानजीस्वामी वर्तमान युग के आध्यात्मिक जगत में एक क्रान्तिकारी महापुरुष हैं। उनके द्वारा दिगम्बर जैन समाज का बहुत बड़ा उपकार हुआ है और आध्यात्मिक साहित्य के पठन-पाठन का प्रचार और प्रसार हुआ है—आप उनके नाम पर व जीवन दर्शन पर आगमपथ का विशेषांक निकाल कर साहित्य जगत को नई भेंट दे रहे हैं, इसके लिये आपका व आपके पत्र का सादर अभिनन्दन है।

— सत्यंधरकुमार सेठी, उज्जैन

लो रोको..... तूफान चला रे!

● 'युगल' एम०ए०

अभियान.....

लो रोको तूफान चला रे,
पाखंडों के महल ढहाता
लो रोको तूफान चला रे

सह न सका जो मिथ्या-तम की
सीमा का जीवन में बंधन
रह न सका अवरुद्ध वहां जो
बढ़ने लगा हृदय का स्पंदन,
एक दिवस अन्तर रवि जागा
पुण्य जागरण वेला आई,
जिसकी ज्ञान-चेतना ने रे
चिरनिद्रा से ली अंगड़ाई,
जिसकी करवट से संशय का
चिर-सिंहासन डोल चला रे
पाखंडों के०

निखिल विश्व पथ पाये—
हिय में करुणा का संसार समेटे
अपनी एक श्वास में रे जो
संशय-तम का मरण लपेटे
जिसकी प्रज्ञा के प्रताप से
कर्त्तवाद को थी हैरानी
अरे! मृतक को मिली चेतना
सुन जिसकी कल्याणी वाणी

अरे! मुक्ति के सुन्दर पथ का
करता जो जय-घोष चला रे
पाखंडों के०

बोली दुनिया 'अरे अरे रे!
मात पिता का धर्म न छोड़ो
जिसमें तुमने जन्म लिया है
उस पथ से अब मुँह मत मोड़ो
हरी भरी सी कीर्ति-लता है
दिग् दिगंत में व्याप्त तुम्हारी
यह लो यह लो सिंहासन लो
लेकिन रक्खो लाज हमारी
अरे तुम्हारे इस निश्चय से
भूतल पर भूचाल मचा रे
पाखंडों के०

उत्तर मिला ''धर्म-शिशु जननी
के अंचल में नहिं पलता है
और पिता की परम्परा से
बंध कर धर्म नहीं चलता है
अरे लोक की सीमाओं को
छोड़ धर्म का स्पंदन चलता
ज्ञान-चेतना के अंचल में
प्यारा धर्म निरंतर पलता
सिंहासन क्या, धर्म देह की
ममता तक तो छोड़ चला रे''
पाखंडों के०

प्राणों का भीषण संकट भी
उसका पथ नहिं मोड़ सका रे
कोटि-कोटि आंसू का वर्षण
उसका व्रत नहिं तोड़ सका रे
रे उत्तुंग हिमाचल-सा
बेरोक बढ़ा वह अपने पथ पर
जिसने उसके पथ को रोका-
झुका उसी का मस्तक भू पर
पर्वत ने भी उसे राह दी
खंड-खंड हो वज्र गिरा रे
पाखंडों के०

जिसको राह मिली, उसको
अब चाह रही क्या शेष बताओ
जिसको थाह मिली उसको
पर्वाह रही क्या शेष बताओ
उसने युग की धारा पलटी,
वह अध्यात्म-क्रांति का सृष्टा
एक दिव्य संदेश विश्व का
चेतन केवल ज्ञाता-दृष्टा
रे अणु-अणु की आजादी का
शंख नाद वह फूंक चला रे
पाखंडों के०

अरे वीर के जन्म दिवस पर
भूतल का अभिशाप मिट गया
अरे वीर के जन्म दिवस से

एक नया इतिहास जुड़ गया
अंधकार में युग सोता था
घुटती थी जीवन की श्वासें
पानी में भी पड़े हुए थे
अरे मीन युग-युग के प्यासे
तेरा पावन पुनर्जन्म यह
बसुधा का वरदान बना रे
पाखंडों के०

● त्रिलोकचन्द्र जैन, दिल्ली

मात्र पश्चिम में ही नहीं, अपितु समस्त देश एवं विदेश में भी हजारों जैनों को घोर मिथ्यामार्ग से उबार कर सम्यक् रास्ता दिखाने तथा उस पर अग्रसर कराने का जिन्हें श्रेय है, उन परम श्रद्धेय आत्मज्ञ सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के चरणों में यह मस्तक सहज ही कृतज्ञता से झुक जाता है। पूज्य स्वामीजी की सत्प्रेरणा से ही सौराष्ट्र एवं महाराष्ट्र प्रान्तों में जहाँ दिगम्बर जैन मंदिर के दर्शन करना दुर्लभ सा था, वहाँ पचास से भी अधिक नयनाभिराम दिगम्बर जैन मंदिर बनकर तैयार हो गये हैं।

यह श्री स्वामीजी के सरल, सहज एवं शान्तिदायक आध्यात्मिक प्रवचनों का ही प्रभाव है, जिससे हमारे महान आध्यात्मिक शास्त्र, जो तिजोरियों और तहखानों में बन्द थे और जिनका पठन-पाठन निषिद्ध-सा था, बच्चे-बच्चे को अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं और यह दुर्लभ ज्ञान भण्डार जन-जन को सुलभ होकर आनन्दित कर रहा है।

मुझ पामर के जीवन में शान्ति एवं सुख के कुछ क्षण भर देने का सारा श्रेय इन्हीं युगपुरुष की अमृतवाणी को प्राप्त है। मैं इस महापुरुष के चरणों में अत्यन्त गद्‌गद् हृदय से अपने श्रद्धा सुमन अर्पित हूँ और श्री जिनेन्द्र देव से प्रार्थना करता हूँ कि भव्य जीवों के सद्‌भाव से यह सूर्य कालान्तर में भी भारतभूमि को आलोकित करता रहे।

आत्मार्थी
श्री कानजी स्वामी

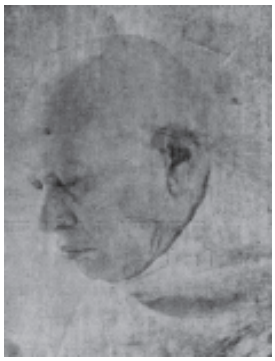

संक्षिप्त जीवन-परिचय

परम पूज्य आध्यात्मिक सन्त श्री कानजीस्वामीजी का जन्म रविवार, वैशाख सुदी दूज, संवत् 1946 को काठियावाड़ के उमराला ग्राम में श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय में हुआ। आपकी माता का नाम उजमबा और पिता श्री मोतीचन्द शाह थे।

एक समय था जब गुजरात में दिगम्बर धर्म का नाम भी कोई नहीं जानता था। सारे प्रान्त में श्वेताम्बर सम्प्रदाय की ही प्रसिद्धि थी, और दिगम्बर जैन अनुयायी दृष्टिगोचर ही नहीं होता था।

मात्र 24 वर्ष की वय में आपने श्वेताम्बर जैन साधु की दीक्षा ले ली। आपका मन वैराग्य में ही रमता था और विवाहदि सांसारकि कार्यों के विचार आप से बहुत दूर रहते थे। आपने श्वेताम्बर सम्प्रदाय में रहकर गहन अध्ययन व मनन किया। 'श्वेताम्बर धर्म' प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भगवती सूत्र' तो आपने 17 बार पढ़ा। आपकी विलक्षण बुद्धि व स्मरण शक्ति से बड़े-बड़े आचार्य आश्चर्य में डूब गये। इससे आपको प्रसिद्धि एवं प्रतिष्ठाजनक स्थान प्राप्त हुआ।

फिर भी मन में कहीं न कहीं कसक थी, पीड़ा थी... जिस वस्तु की प्राप्ति के लिए आपकी आत्मा तड़प रही थी, वह आपको न मिल पायी। आपने भी पुरुषार्थ का दामन न छोड़ा... सिंह पुरुषों की भाँति अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अन्तर्मंथन करते ही रहे।

आखिर वह शुभ घड़ी आ पहुँची। सं० 1978 के किसी धन्य पल में दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्ददेव का समयसार परमागम आपके हाथों में आया। उसका सूक्ष्म अभ्यास और मनन करते ही आपके आत्मिक संस्कार एकदम झनझना उठे और इन्हें प्रतीत हुआ कि जिसकी खोज बचपने से थी, वह निधि आज मिल गयी। जितनी सूक्ष्मता से वे समयसार का अध्ययन करते गये, उतना ही वे आत्मा के रहस्य को समझते गये। अब आपका रोम-रोम पुलकित हो उठा। आपको जैसे नयी रोशनी मिल गयी।

पंथ मोह छूटा

यद्यपि स्थानकवासी सम्प्रदाय में आप सर्वोत्कृष्ट प्रवचन-प्रवक्ता माने जाते थे एवं आपका स्थान बहुत ऊँचा था तथापि आपको भगवान कुन्दकुन्दाचार्य एवं सीमन्धर भगवार प्रणीत दिगम्बर वीतराग धर्म भा गया था। आपके चित्त में एक केवल समयसार की वाणी उद्घाटित हो रही थी। आपके मन में विचारों का तूफान सा मचा हुआ था। जन्मना श्वेताम्बर लेकिन मन में दिगम्बर आखिर किधर जायें।

आखिर एक दिन सोनगढ़ में संवत् 1991 की चैत्र शुक्ला त्रयोदशी, महावीर जयन्ती के शुभ दिन दिगम्बर परम्परा को अंगीकार कर लिया।

आपके इस परिवर्तन से सौराष्ट्र की श्वेताम्बर समाज में हाहाकार मच गया। विरोधियों ने हर प्रकार से अपना विरोध किया लेकिन आप अडिग एवं अचल रहे। आपने विरोध की ओर ध्यान भी न दिया और शान्तभाव से अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होते रहे। और अन्त में विजय सत्य की ही हुई। दिगम्बर धर्म प्रसिद्ध करके सोनगढ़ को धर्म प्रचार का मुख्य केन्द्र बनाया। अब तो सोनगढ़ सारे भारत क्या सभी आध्यात्मिक प्रेमियों के लिये तीर्थधाम बन गया है।

गहन अध्ययन

आप भगवान कुन्दकुन्दाचार्य रचित समयसार का अध्ययन करते ही गये। जितनी बार पढ़ते उतना ही आत्मिक आनन्द प्राप्त होता। जंगलों एवं गुफाओं में जाकर इस महान ग्रन्थराज के प्रत्येक भाव को अपने मन में उतारा।

वीतरागधर्म की प्रभावना

कानजीस्वामीजी के चित्त में सीमन्धर भगवान एवं कुन्दकुन्दाचार्य का दिगम्बर जैन धर्म बस गया। आपने वास्तविक धर्म का पक्ष उजागर किया। जिसके फलस्वरूप आपश्री के उपदेशों का रहस्य समझ हजारों जिज्ञासु आपके भक्त बने एवं दिगम्बर जैन धर्म में दीक्षित हुए।

आपके प्रभाव से सौराष्ट्र में जगह-जगह पर दिगम्बर जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ। जिनबिम्बों की स्थापना हुई एवं पंच कल्याणक महोत्सव सम्पन्न हुए। समस्त भारत में स्वाध्याय मंडलों एवं दिगम्बर जैन संघों की स्थापना हुई। जहाँ सौराष्ट्र में पहले एक भी दिगम्बर जैन मन्दिर नहीं था, अब वहाँ 50 से भी अधिक मनोहारी दिगम्बर जैन मन्दिर विद्यमान हैं एवं लाखों दिगम्बर जैन बसते हैं।

तीर्थधाम सोनगढ़

पूज्य स्वामीजी मुख्यत: सोनगढ़ में ही रहते हैं। भक्तजनों ने सोनगढ़ में 'श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट' की स्थापना की है। इसके अन्तर्गत 'श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर' की स्थापना हुई एवं सोनगढ़ की समस्त व्यवस्था इस संस्था द्वारा ही होती है। आपका प्रवचन इसी मन्दिर में होता है। बाद में 'श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, श्री समवसरण मन्दिर, श्री कुन्दकुन्द प्रवचन मण्डप आदि

और अभी 20 लाख रुपये की लागत से विशाल परमागम मन्दिर की स्थापना हुई है। जो कि विश्व में अपने ही प्रकार का एक है।

तीर्थों की यात्रा

कानजी महाराज ने धर्म प्रचार की दृष्टि से भारत के सभी प्रमुख शहरों का भ्रमण एवं तीर्थों का वन्दन किया। आपने श्री सम्मेदशिखर, श्री गिरनारजी बाहुबलीजी की यात्रा की। मद्रास का प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र पोन्नूर हिल भी आपके प्रयास से प्रकाश में आया?

साहित्य प्रकाशन

सोनगढ़ से पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों आदि का पुस्तकाकाररूप में पुस्तकें प्रकाशित होती है। सं० 2000 से 'आत्मधर्म' मासिक पत्र नियमितरूप से प्रकाशित हो रहा है। लाखों की संख्या में समयसार, मोक्षमार्गप्रकाशक, प्रवचनसार, आत्मसार आदि दिगम्बर जैन सिद्धान्त ग्रन्थों का प्रकाशन हो रहा है। बच्चों में धार्मिक रुचि जागृत हो इसके लिये एक विशेष पाठ्यक्रम बनाया गया है। जगह-जगह रात्रि पाठशालाएँ चालू की गयी हैं। सोनगढ़ में प्रतिवर्ष गर्मियों में एक माह का शिक्षण-शिविर चलता है। इसमें सैकड़ों विद्यार्थी प्रतिवर्ष भाग लेते हैं।

उपकारी सन्त!

दिगम्बर जैन समाज स्वामीजी का अत्यन्त ऋणी है। वर्तमान युग में व्यवहार को ही धर्म की संज्ञा दी जाने लगी थी। केवल व्रतादि कार्यों में ही धर्म का स्वरूप संकुचित हो गया था। ऐसे समय में स्वामीजी ने निश्चयनय से धर्म व्याख्या की ओर कहा कि धर्म तो यह है, व्यवहार आदि तो गौण हैं। अब आपके प्रभाव से सारे दिगम्बर समाज में चेतना जागृत हुई है एवं लोगों की दृष्टि बदली है।

श्रद्धा सुमन

लेखाजंलि

संस्मरण

आत्मा ज्ञानस्वरूप है, ज्ञान बाहर से नहीं आता, आत्मा से ही होता हैं। आत्मा ज्ञान ही करता है, ज्ञान से अतिरिक्त किसी का कुछ भी नहीं कर सकता हैं। जो आत्मा को परद्रव्य का कर्ता मानता है, यह मूढ़ जीवों का महान ? अज्ञान है।

— अमृतचन्द्राचार्य

कानजीस्वामी : एक युग सन्त

— पण्डित बाबूभाई चुन्नीलाल महेता,
फतेपुर मोटा (गुज०)

जैन धर्म एक वीतराग रूप है। वह निज धर्म है—आत्मधर्म है। प्राणी मात्र भी सत्समागम से सच्ची समझ द्वारा उसे धारण कर संसार दु:खों का अभाव कर सच्चा सुख प्राप्त कर सकता है। अत: विश्व धर्म है। शाश्वत धर्म है—अनादि निधन है। इस मार्ग को भगवान आदिनाथ ने भी नहीं बनाया था लेकिन बताया था। उसी प्रकार महावीर की आत्मा ने भी यही मार्ग ग्रहण किया और वे भगवान महावीर बने। आज से 2531 वर्ष पूर्व राजगृही नगर—विपुलाचल पर्वत के ऊपर समवसरण में श्रावण कृष्ण 1 को प्रथम दिव्य ध्वनि-दिव्य देशना द्वारा उन्होंने महावीर-धर्म-चक्र प्रवर्तन किया और 30 वर्ष तक लगातार चला। और आज भी यही वीतरागमार्ग रूप धर्म चक्र चला आ रहा है। पिछले करीब 40 वर्ष से भगवान महावीर के मार्ग को अपना कर अपना आत्महित साधन साधने आध्यात्म युग प्रवर्तक वीतराग मार्गोपदेष्टा संत पूज्य श्री कानजीस्वामी ने सारे भारतवर्ष में निरन्तर सतत चेतन धर्म चक्र का प्रवर्तन किया विश्व में महावीर वाणी को गुंजाया, लहराया उनका जीवन दर्शन और तत्त्वज्ञान सभी भेदज्ञान मूलक धर्मोपदेश से प्रभावित होकर सारे देश में तूफान आया और आध्यात्मिक क्रान्ति होकर लाखों जीवों ने साम्प्रदायिकता छोड़कर भगवान महावीर के सच्चे अनुयायी भाव दिगम्बर बने और वीतरागी प्रशस्त मार्ग पर चलने लगे। आज भी कई लोग मार्ग में लग रहे हैं और उनका महावीर धर्म चक्र प्रवर्तन उनके द्वारा चालू रहने से—होने से आगे भी लगेंगे। महावीर तत्त्वज्ञान वीतराग विद्वान स्वरूप तत्त्वज्ञान होने से उनका धर्मोपदेश के माध्यम से अनेक भव्य जीवों

ने भी अतीन्द्रिय अनुभव रस पिया अनेक यह रस पीने के लिये लालायित हैं। विशेषत: अनेक जगह अनेक नूतन दिगम्बर जिन मन्दिरों का नव-निर्माण स्वाध्याय मन्दिरों पाठशालाओं का नव-निर्माण हुआ। शिक्षण-वर्ग-प्रशिक्षण-वर्ग लगने लगे और स्वाध्याय पठन, पाठन, मनन-विचार अध्ययन और निज शुद्धात्मानुभव का युग चालू हुआ और पोपडम एवं पाखण्ड मिटने लगा। शिथिलाचारियों का मूल्य गिरने लगा। सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि कम मूल्य और जन भाषा में आकर्षक शैली से कई लाखों की संख्या में ग्रन्थों का, मूल ग्रन्थों का प्रवचनों, अनुवादों, सत्साहित्यों का प्रकाशन हुआ और जनता के घर-घर में यह साहित्य बसा। बालकों का धार्मिक साहित्य नीति और सदाचरणपूर्वक साहित्य निकलने से यह बालकों के हृदय का स्थान बना एवं इस वर्तमान युग में विक्रय बहुत हुआ।

उनके धर्मोपदेश का मुख्य केन्द्र बिन्दु **भगवान आत्मा है।** मोक्षार्थ जीव का एकमात्र आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता ही प्रथम कर्तव्य है। निज शुद्ध आत्मा के आश्रय से भव का अन्त आता है। भव का अन्त हो यही पुरुषार्थ है। उनकी वाणी में भव के अन्त की बात आती है। **जो भव से भव हो—बन्ध हो—वह धर्म है ही नहीं।** प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र है स्वयं सिद्ध है। अनादि निधन है गुण पर्यायवत् है। जड़ और चेतन पदार्थ का परिणमन स्वभाव के या विभावरूप हो वह अपने में अपने से स्वत: स्वकाल में ही स्वयं परिणमन होता है पर से नहीं क्योंकि प्रत्येक द्रव्य अपना स्वद्रव्य क्षेत्रकाल भावरूप स्वभानुरूप से अस्ति है, सत् है और परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नास्तिरूप है, असत है। ऐसा ही अस्ति-नास्ति अनेकान्त स्वभाव है। प्रत्येक द्रव्य के कार्य में उचित निमित्त की बहिरंग सन्धि होती है, लेकिन सब निमित्तगते: धर्मास्तिकायपन्: समझना।

सर्वज्ञता धर्म का मूल है। सर्वज्ञता की प्रतीत करने पर सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा की प्रतीत होती है और आत्मा की प्रतीत होने पर स्वात्मानुभूति होती है।

जैन धर्म एक वीतराग भावमय है। मोह, राग, द्वेष, पुण्य, पाप यह धर्म नहीं है और रागादिक से धर्म होगा भी नहीं। धर्म तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र ही है। यदि धर्म अथवा सुख प्राप्त करना हो तो सच्चे देव, गुरु, धर्म की पहचान कर उनके बताये मार्ग पर चलें, निज शुद्धात्मा को ध्येय बनाकर धुन लगाएँ।

भगवान आत्मा शाश्वत जीवन्त चेतन चक्र है और उसके ही आश्रय से आस्रव-बन्ध-पुण्य-पापरूप कषाय चक्र, संसार चक्र मिटता है अथवा दुख कर्म चक्र का अभाव होकर संवर निर्जरा मोक्ष दशारूप पर्याय में वीतरागभावरूप धर्म चक्र प्रगटता है।

प्रत्येक आत्मा भगवान स्वरूप है, भगवान बनने की शक्ति और समझ करें तो पर्याय में भी भगवान बन सकता है।

वर्तमान समय में इस युग की महान विभूति, वीतराग मार्ग रहस्योद्घाटक भगवान महावीर के लघुनन्दन, आचार्य कुन्दकुन्द के केंद्रायन महावीर कुन्दकुन्द वाणी के प्रबल प्रसारक प्रचारक प्रभावक पूज्य श्री कानजीस्वामी विशेषांक आप श्री इस भगवान महावीर 2500वें निर्वाण महोत्सव वर्ष में प्रकाशित कर रहे हैं, यह आगमपथ ने अच्छा साहसपूर्ण और कर्तव्यतापूर्वक काम किया है, मैं आपको हार्दिक बधाई देता हूँ। क्योंकि जो भगवान महावीर ने धर्म-चक्र-प्रवर्तन किया है—जो कुन्दकुन्दादि अनेक आचार्य और बनारसीदास से लेकर आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी, जयचन्दजी, दौलतरामजी ने प्रवर्तन किया। वही प्रशस्त मार्ग को वे प्रवर्तन कर रहे हैं, समर्थन कर रहे हैं। अत: वे श्रद्धेय हैं—अभिनन्दनीय हैं।

यह विशेषांक हजारों जीवों को महावीर का प्रशस्त मार्ग समझने में कार्यकारी हो और प्रत्येक प्राणी शुद्धात्मा का अनुभवशीली हो, यह मंगल कामना।

●

रे जीव! तीन लोक में सबसे उत्तम महिमावन्त अपना आत्मा है, उसको तू उपादेय जान। वही महासुन्दर व सुखरूप है। जगत में सर्वोत्कृष्ट ऐसे आत्मा को तू स्वानुभवगम्य कर। तेरा आत्मा ही तुझे आनन्दरूप है, अन्य कोई वस्तु तुझे आनन्दरूप नहीं है। आत्मा के आनन्द का अनुभव जिसने किया है, ऐसे धर्मात्मा का चित्त अन्य कहीं भी नहीं लगता, बार-बार आत्मा की ओर ही झुकता है। आत्मा का अस्तित्व जिसमें नहीं, आत्मा का जीवन जिसमें नहीं ऐसे परद्रव्यों में धर्मी का चित्त कैसे लगे? आनन्द का समुद्र जहाँ देखा है, वहाँ ही उनका चित्त लगा है।

●

अहो! आत्मा आनन्द-स्वभाव से भरा हुआ है। ऐसे आत्मा के समक्ष देखें तो दु:ख है ही कहाँ? आत्मा के आश्रय में धर्मात्मा नि:शंक सुखी हैं। देह का भले ही चाहे जो हो, अथवा सारे ब्रह्माण्ड में खलबली मच जावे, तो भी उससे मुझे दु:ख नहीं, मेरी शान्ति— मेरा आनन्द मेरे आत्मा के ही आश्रय से है, जहाँ मैं अपने आनन्द-समुद्र में डुबकी लगाकर लीन हुआ, वहाँ मेरी शान्ति में विघ्न करनेवाला जगत में कोई नहीं। इस प्रकार धर्मात्मा आत्मा के आश्रय से सुखी है। (समयसार शास्त्र के सुखशक्ति के प्रवचन में से)

श्री कानजीस्वामी : एक विभूति

पण्डित जगमोहनलाल शास्त्री

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) स्थित श्री कानजीस्वामी इस युग में चर्चा का विषय हो चुके हैं। उनके पक्ष तथा प्रतिपक्ष में दिगम्बर जैन समाज का बहुभाग विभक्त है।

विक्रम संवत् 2005 में अखिल भा० दि० जैन विद्वत्परिषद् का वहाँ अधिवेशन था। मुझे और सम्भवतः सभी विद्वानों को (2-3 छोड़कर) उनका प्रथम साक्षात्कार उसी समय हुआ। उनकी कीर्तिगाथा कुछ समय पूर्व से सुन रखी थी—यह आकर्षण था विद्वत्परिषद् को सोनगढ़ अधिवेशन करने का।

वहाँ जाकर देखा तो आश्चर्यचकित हो जाना पड़ा जिनमन्दिर—भव्य दो-दो स्वाध्यायभवन—यात्रियों के ठहरने व भोजन का प्रबन्ध—सब कुछ सहजभाव से था। अब तो मानस्तम्भ समवसरण मन्दिर परमागम मन्दिर तथा बीसों कोठियाँ बन चुकी हैं। एक खासा आध्यात्मिक नगर बस गया है।

अध्यात्म का विषय तद्विषयक रसिकों के लिये सरस हो सकता है। पर सर्व साधारण के लिये वह अत्यन्त सूक्ष्म विषय है। हम लोगों को शास्त्र प्रवचन हेतु तथा अनेक उत्सवों में धार्मिक भाषणों के हेतु समाज में यत्र-तत्र-सर्वत्र जाना पड़ता है। पर व्याख्यान में रोचकता लाने हेतु अनेक कल्पित कथा कहानियों का दृष्टान्त का आश्रय करना पड़ता है। यदि शास्त्रीय विषयों में से करणानुयोग और द्रव्यानुयोग का आश्रय लेकर भाषण करना प्रारम्भ करें तो श्रोता या तो ऊंघने लगते हैं—या सभा छोड़कर उठ जाते हैं।

सोनगढ़ की यह विशेषता है कि वहाँ अध्यात्म जैस सूक्ष्म विषय की ही केवल चर्चा रहती है—प्रवचन और भाषण केवल उस एक विषय पर ही होते हैं, पर श्रोता मन्त्रमुग्ध हो उसे सुनते हैं। समय से 10 मिनिट पूर्व सभा भवन में होड़ सी लगाकर आते हैं और पूरे समय तक मनायोगपूर्वक सुनते हैं। स्वामीजी की प्रवचन शैली उनकी निमग्नता उसे सरस बना देती है।

स्वामीजी प्रभावक हैं—दैदीप्यमान हैं—उनकी वाणी ओजपूर्ण है—चारित्र उज्ज्वल है, इन सब बातों का भी जनता पर प्रभाव अंकित होता है।

अध्यात्म ग्रन्थ समयसार उनका मुख्य आराध्य ग्रन्थ है, जिसका ये बार-बार पारायण करते हैं। वे अमृतचन्द्राचार्य की भाषा में ही बोलते हैं। निश्चयनय परक कथनी उनकी जिह्वा पर सदा नृत्य करती है। निश्चयत: आत्मशुद्धि का मार्ग है, श्रेष्ठमार्ग है। स्वामीजी का प्रतिपादन उक्त आधार पर होता है, यद्यपि निश्चय का एकान्त वे स्वीकार नहीं करते, अनेकान्तवादी है—पर प्रमुखता निश्चयनय की ही सदा रखते हैं—व्यवहार गौण है सदा कथनी में रहता है।

निश्चय तो व्यवहार का प्रतिषेधक है ऐसा पंचाध्यायी कार भी लिखते हैं। तथापि सर्व साधारण की पहुँच निश्चय के आश्रय लेने योग्य नहीं बन पाती। अत: उन्हें निश्चयमार्ग पर आरूढ़ कराने के लिये व्यवहारधर्म का प्रतिपादन भी आचार्यों ने किया है।

स्वामीजी—जिन मन्दिर निर्माण—जिन पूजा—तीर्थयात्रा—पंच कल्याणक—जिनबिम्ब प्रतिष्ठा आदि सभी व्यवहार धर्मों (पुण्यरूप धर्मों) का प्रतिपादन करते हैं—उपदेश करते हैं—प्रेरणा भी देते हैं आचार्य इसे मोक्षमार्ग नहीं मानते। यह मोक्षमार्ग है भी नहीं; इसे पुण्यबन्ध का मार्ग ही जैनाचार्यों ने लिखा है। पुण्य भी पाप की

भूमिका से उठाने के लिए करणीय है। अत: आचार्यों ने उसे उपदेशित किया है तथा उसे परम्परा से मोक्ष का कारण भी बताया है।

परम्परा का अर्थ ही यह होता है कि साक्षात् मोक्ष का कारण वह नहीं—कोई और ही है। जो साक्षात् मोक्ष का कारण है, वह है निश्चय सम्यग्दर्शन—निश्चय सम्यग्ज्ञान और निश्चय सम्यक्चारित्र अत: व्यवहार सम्यग्दर्शन, ज्ञान-चारित्र पुण्यबन्ध के कारण होते हुए भी निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान—चारित्र की प्राप्ति के साधन बन सकते हैं। अत: उपादेय हैं जैन आचार्यों ने ग्रन्थाकारों ने व्यवहार की प्रधानता से उपदेश दिया है, पर निश्चय पथ पर पहुँचाने का ध्यान रखा है, उससे विरत नहीं हुए।

मतभेद के कारणों पर विचार

(1) जैनाचार्य व्यवहार धर्म को पुण्यबन्ध का कारण तथा परम्परा मोक्ष का भी कारण लिखते हैं। स्वामीजी उसे (पुण्यबन्ध का कारण अवश्य प्रतिपादन करते हैं पर उसे परम्परा से भी मोक्ष कारणत्व कथन करने में उदासीन हैं। यह एक हेतु है, जो परस्पर मतभेद का कारण बन रहा है।)

(2) दूसरा पक्ष व्यवहार पक्ष की मुख्यता से ही उपदेश करता है। निश्चय पक्ष को मानते हुए भी उसे अत्यन्त गौण और उपेक्षणीय कर देता है।

यद्यपि दोनों पक्ष स्याद्वादी अनेकान्ती हैं, अनेकान्तरूप तत्त्व के जानकार हैं— तथापि अपने-अपने नय से कथन को उपयोगी और अन्य नय के कथन को अनुपयोगी सा मानकर पक्ष खींचते हैं, यह खींचातानी ही विषमता के विषय बन रही है।

(3) आगम में यत्र-तत्र प्रतिपादित निश्चय प्रधान कथन को

तथा व्यवहार प्रधान कथन को निवाकृत न करते हुए भी दोनों पक्ष एक-दूसरे को मिथ्यादृष्टि मानते हैं और अपने को सम्यग्दृष्टि मानते हैं ऐसी मान्यता भी मतभेद का ही नहीं पारस्परिक विषमता का कारण बनी है।

(4) समाज में जहाँ-जहाँ उक्त दोनों पक्षों के कट्टर अनुयायी हैं। वे अपने गुरुजनों से चार कदम आगे हैं और उनकी परस्पर कषायाविष्ट चर्चाएँ मन्दिरों व संस्थाओं के तथा पंचायती संगठन के विभाजन का कारण बन रही है।

(5) एक पक्ष द्वारा अपर पक्ष की कटुता पूर्ण आलोचना भी इसमें घृताहुति का काम करती है।

आज अनेक दिगम्बर जैन साधु तथा प्रतिमाधारी श्रावकों में पाई जानेवाली आगम विरुद्ध चारित्रिक शिथिलता निश्चल पक्षवालों को कटु आलोचना का अवसर प्रदान करती है। दूसरी ओर व्रत, दान, पूजा आदि पुण्य कार्यों को निश्चय धर्म स्वरूप न होकर शुभरागरूप होने व पुण्यबन्ध के कारण (संसार कारण होने से) 'अधर्म' शब्द द्वारा व्यवहृत करना तथा स्वयं व्रत स्वीकार न कर अव्रती जीवन बिताना व्यवहार पक्षवालों को कटु आलोचना का अवसर प्रदान करती है।

उक्त कारणों से व्यवहार पक्षवाले इन निश्चय पक्षवालों को 'दिगम्बर' भी नहीं मानना चाहते, जबकि सोनगढ़ पक्षवाले अपनी कट्टर दिगम्बरता का उद्घोष चौड़े मैदान करते हैं और जन्मजात दिगम्बरों जैनत्व का एकाधिकार मानने को बिल्कुल तैयार नहीं हैं।

इस उत्पन्न परिस्थिति का सम्यक्प्रकारेण पर्यालोचन अत्यन्त आवश्यक है, उसे मैं अपनी समझ के अनुसार करता हूँ।

यह परम प्रसन्नता की बात है। सोनगढ़ पक्ष ने अपनी पूर्व अवस्था में प्राप्त श्रद्धा का परित्याग कर दिगम्बर जैन आगमानुमोदित

(1) देव के स्वरूप (2) शास्त्र के स्वरूप तथा (3) दिगम्बर जैन साधु के स्वरूप पर अपनी अडिग श्रद्धा स्थापित की है—अत: दोनों पक्षों के देव एक हैं एक स्वरूपात्मक हैं; ग्रन्थ भी एक हैं—जिनकी प्रामाणिकता में कोई मतभेद नहीं है; तथा दिगम्बर जैन गुरु के स्वरूप में भी कोई मतभेद नहीं हैं।

यदि धर्म के आधार भूत देव-गुरु-शास्त्र में मान्यता भेद होता तो दोनों पक्षों का सामंजस्य असम्भव होता। पर ऐसा नहीं है यही शुभ चिह्न है, जिससे उज्ज्वल भविष्य की मैं आशा करता हूँ। मतभेद के 5 कारण ऊपर दर्शाएँ हैं, उन पर क्रमश: नीचे विचार किया जाता है।

(1) व्यवहार का अर्थ पर सापेक्ष कथन है। अतएव सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा व्यवहार सम्यग्दर्शन है। आत्मश्रद्धान्नम सम्यग्दर्शन अर्थात् अपनी शुद्धात्मा का श्रद्धान भेदविज्ञानपूर्वक स्वसंवेदन स्वानुभूतिरूप निश्चय सम्यग्दर्शन है। मिथ्यादृष्टि जीव की दृष्टि यदि मिथ्या देव-गुरु-शास्त्र से हटकर सच्चे देव-गुरु-शास्त्र पर टिकती है तो ऐसे जीव को आत्मश्रद्धान की भूमिका प्राप्त हो सकती है। इसी से व्यवहार को निश्चय का साधन ग्रन्थकारों ने कहा है। इसी प्रकार व्यवहार क्रियाएँ दान-पूजा-व्रतादि ग्रहण—जिनको पाप से विरत कराकर वीतरागता के मार्ग को प्रशस्त बनाते हैं। अत: इनको पुण्यबन्ध का कारण होते हुए भी वीतरागमार्ग का साधकपना पाया जाता है। अत: परम्परा मोक्ष का कारण मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए। यह आवश्यक नहीं कि जिसे व्यवहार सम्यग्दर्शन व व्यवहारचारित्र हो उसे निश्चय सम्यग्दर्शन चारित्र की प्राप्ति हो ही जावे पर हो जाती है, इस कारण उसे साधन करने में कुछ बाधा नहीं है।

पाप से मुक्ति दिलानेवाले व्रत, दान, पूजादि को व्यवहारत: 'धर्म' कहा गया है 'अधर्म नहीं' अत: इसे अधर्मशब्द द्वारा व्यवहृत करना अपर पक्ष को हार्दिक पीड़ा पहुँचाता है।

यद्यपि निश्चयरत्नत्रय ही यथार्थ धर्म है और व्यवहाररत्नत्रय यथार्थ धर्म नहीं है। अत: जो धर्म नहीं उसे 'अधर्म' शब्द द्वारा कहा जा सकता है परन्तु सर्व साधारणजन पापक्रियाओं को अधर्म मानता है। पुण्य क्रियाओं को नहीं। अत: ऐसी भाषा के प्रयोग का औचित्य नहीं है।

पाप-पुण्य दोनों बन्ध के कारण हैं एक कुगति का कारण—तो दूसरा सुगति का कारण है। संसार चतुर्गति स्वरूप है। अत: संसार का कारण पुण्य 'धर्म नहीं है' यह शास्त्रोक्त कथन है तथापि उसे 'अधर्म' शब्द द्वारा व्यवहृत न कर जैनाचार्यों ने व्यवहारत: धर्म संज्ञा दी है। परमार्थ धर्म तो उसे ही माना है जो—

संसार दुखत: सत्त्वान् की धरायुत्तमसुखे।

—समन्त भ्रदाचार्य

अर्थात् प्राणियों को संसार के दु:खों से छुड़ाकर यथार्थ उत्तर सुख में धरे वह धर्म है। अत: पुण्य कार्य यथार्थ धर्म नहीं है तथा अधर्म जो पाप उसकी भूमिका से जीव को उठाते हैं तथा आगामी अभिवृद्धि की योग्यता सम्पादन में किन्हीं जीवों को कारण बनते हैं। अत: उन्हें 'अधर्म' शब्द द्वारा न कहकर व्यवहार धर्म द्वारा प्रतिपादन विषमता को दूर करने का कारण बन सकता है।

(2) व्यवहार पक्षवादी—विद्वज्जन है। यदि वे अपनी प्रतिपादन शैली में निश्चय धर्म की उपादेयता तथा उसकी श्रेष्ठता के प्रतिपादन को भी अपनावे और फिर उसे प्राप्त करने का साधन होने से व्यवहार धर्म को धर्म रूप कहें तो उत्तम होगा। निश्चय से जिसकी संज्ञा है, उसे उपेक्षणीय करना हितकर नहीं है।

दोनों पक्ष यदि एक दूसरे के मन को आदर दे तो विषमता दूर होने में देर न लगेगी।

(3) जिनेन्द्र द्वारा कथित त्तव का श्रद्धानी व्यक्ति सम्यग्दृष्टि है। मिथ्या दृष्टि नहीं। निश्चय सम्यग्दर्शन का कोई व्यवहारिक रूप नहीं है। यदि कोई है तो वह ही तत्त्वार्थश्रद्धान या देव-गुरु-शास्त्र का श्रद्धानरूप व्यवहार वर्तन। अत: किसे निश्चय सम्यग्दर्शन है, किसे नहीं है इसका निर्णय हम आप नहीं कर सकते। जिसका निर्णय नहीं कर सकते, उसका अहंकार भी वृथा है। द्रव्यलिंगी साधु मिथ्यादृष्टि ग्यारह अंग भवपूर्व का अध्येता घोरोपसर्ग परीषह विजयी अपने भीतर कषायोदय की अत्यन्त मन्दता धारण करते हुए भी अपने आन्तरिक निश्चय सम्यग्दर्शन व मिथ्यादर्शन का स्वयं निर्णय नहीं कर पाता, साधारण अन्य जन भी निर्णय नहीं कर पाते। अब उस पक्ष को अपनाध्येय बनाते हुए तत्त्व श्रद्धानी को सम्यग्दृष्टि मानकर वात्साल्य अंग का पालन करना चाहिए। ऐसा करने से ही सौहार्द्र बढ़ेगा। धर्म की यथार्थ प्रभावना होगी।

(4) समाज में उभयपक्ष भी उक्त 1-2-3 सुझावों का अनुसरण करें। मेरा पक्ष ही सत्य है—धर्मानुकूल है, पर पक्ष असत्य है, धर्मानुकूल नहीं है। ऐसा कदाग्रह छोड़ दे तो सामाजिक विघटन दूर होकर संगठन बढ़ेगा। धर्म की अभिवृद्धि होगी।

(5) परस्पर की कटुता पूर्ण आलोचना एक धर्मियों में नहीं होनी चाहिए। वात्सल्य सम्यग्दर्शन का अभंग भंग है, उसके अभाव से दोनों का सम्यग्दर्शन दूषित है। अत: कटुता का भाव दूर करे।

यह सत्य है कि आज दिगम्बर जैन साधुओं में अनेक साधु अपने साधु धर्म परिपालन में परिपूर्ण नहीं है।

(1) कुछ सहन हीनता के कारण उसका निर्दोष पालन नहीं कर पाते।

(2) कुछ देश काल की परिस्थिति वश निर्दोष पालन नहीं कर पाते।

(3) कुछ समाज के साधारण भक्तिमान जनों की अत्यन्त अवांछनीय भक्ति के कारण निर्दोष पालन नहीं करते।

(4) कुछ सब कुछ जानते हुए भी प्रमादवश निर्दोष पालन नहीं करते।

(5) कुछ मुनिपद की महत्ता तथा उसके प्रभाव को देखकर ख्याति-लाभ-पूजा के अभिलाषी होने से निर्दोष पालन नहीं करते।

ये सब बातें सत्य और यथार्थ है। इनसे आँख मूँदना अपने को धोखा देना है। इनमें से नं० 1 और 2 के कारणों से दोष लग जानेवाले साधु तो प्रायश्चित्तादि के पात्र हैं और वे अपने व्रतों को निर्दोष बनाने का भी प्रयत्न करते हैं, उन्हें साधुपद के योग्य प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए।

नं० 3, 4, 5 के कारणों से शिथिल साधुओं को सर्व प्रथम अपने दोष स्वयं दूर कर निर्दोष पद अंगीकार करना चाहिए अन्यथा जिनागम का अपवाद-तथा समाज की निश्रंखता के सम्पूर्ण दोष के स्थान वे होंगे। ऐसे शिथिलाचारी साधुओं व व्रती श्रावकों को उनके समान समझना भी उन्हें प्रोत्साहित करना है।

दूसरी ओर इनकी शिथिलता के कारण व्रतारोहण करना भी अभिष्ट मानना भूल भरा है। व्रत और व्रत के प्रति वात्सल्यभाव ही सम्यक्त का अंग है उसके तथा उनके धारियों के प्रति तिरस्कार का भाव आत्मवंचना है।

इस प्रकार मतभेद पड़ने के कारणभूत इन छोटी-छोटी बातों को दूर कर समस्त दिगम्बर जैन संघ यदि पारस्परिक स्नेह पूर्ण व्यवहार करें तो जैन धर्म की सच्ची प्रभावना अपने में व लोक में हो सकती है निश्चय प्रभावना व्यवहार प्रभावना में इसी प्रकार हेतुमद्भाव है।

स्वामीजी ने अपने जीवन में वह कार्य किया है जो आज सहस्त्रों वर्षों से जैन साधकों द्वारा सम्पन्न नहीं हो सका। दिगम्बर-श्वेताम्बर एक धर्म के अनुयायी भाई-भाई हैं, तथापि भाई यदि भाई को न माने—अलग हो जाये—विरोध रखे—तो भाई से भाई की दुश्मनी अन्य दुश्मनों से अधिक हो जाती है।

यही कारण है कि शताब्दियों से तीर्थों पर पारस्परिक झगड़े व मुकदमाबाजी चल रही है। स्वामीजी ने एक लाख के करीब अपने भूले भाइयों को सधर्म के मार्ग पर लगाया है।

दिगम्बर जैन समाज के कथित नेता जो उनका विरोध करने तथा उन्हें 'दिगम्बर जैन' न मानने की घोषणा करते हैं, वे तब उन्हें मान्यता देते थे जब वे भाई दिगम्बर जैनी नहीं बने थे। दिगम्बर जैन बन जाने पर ठुकराते हैं, तिरस्कार व अपवाद करते हैं, इससे बड़ी भूल कोई हो नहीं सकती। कहा जाता है ये 'अपना नया पन्थ' बनाते हैं, पर यह बात सही नहीं है। जिस पन्थ से ये आये उस पन्थ से स्वत: अलग हो गये, जिस पन्थ में आये वे अपने में शामिल नहीं करना चाहते—फलत: यह नया पन्थ बनेगा पर बनेगा दिगम्बर जैन समाज की भूल से—हम उनका नया पन्थ बनाने के कारण हैं, वे नहीं। वे अपने को कट्टर दिगम्बर जैन घोषित करते हैं।

सौराष्ट्र में 20 दिगम्बर जैन मन्दिरों का निर्माण—उनकी पंच कल्याणक प्रतिष्ठाएँ—समस्त दिगम्बर जैन तीर्थों की सहस्त्रों व्यक्तियों के संघ सहित वन्दना—लाखों रुपया दिगम्बर तीर्थरक्षा में चन्दा देना तथा उसकी पूर्ति का संकल्प—ये सब उनकी कट्टर दिगम्बरता के दृढ़तम प्रमाण हैं।

स्वामीजी अत्यन्त सरल, निष्कपट, सहजस्नेही, हंसमुख, ओजस्वी व्यक्ति हैं। अध्यात्म के उच्चतम विद्वान् हैं। अध्यात्म का

जीवनचर्या पर प्रभाव लक्षित होता है। प्रकारान्त उनका कार्य एक मिशन का कार्य है।

उनके अनुयायी अधिकांश व्यक्ति—रात्रि भोजन नहीं करते, कन्दमूल भक्षण नहीं करते। द्विदल नहीं खाते, व्रतरूप प्रतिज्ञाबद्ध न होते हुए इन श्रावणीय नियमों का पालन करते हैं, जबकि पुराने दिगम्बरों में यह परम्परा टूटती जा रही है।

मेरी स्वयं की दृष्टि में यह निर्णय है कि स्वामीजी का तत्त्वज्ञान यथार्थ है, प्रतिपादन शैली का भेद अवश्य है, तथापि नवदीक्षित दिगम्बर जैनों के लिये उनकी प्रतिपादन शैली ही सही बैठती है।

उनके व्यवहार धर्म का उपदेश दिया जाए तो उन्हें अपनी स्थिति से कुछ विशेषता परिलक्षित नहीं होती—व्यवहार धर्म भेद दर्शन-पूजा-प्रभावना-दान आदि तो ये उस अवस्था में भी करते हैं। दिगम्बर धर्म की विशेषता उसके अध्यात्म पक्ष के कारण है न कि व्यवहार पक्ष के कारण। अतः कोई भी अन्य धर्मानुयोगी उसके अध्यात्मपक्ष से ही दिगम्बर जैन धर्म की महत्ता आँकेगा।

कहा जा सकता है कि सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के स्वरूप का उपदेश प्रथम देना चाहिए तदनन्तर शुद्धात्मतत्त्व की बात करना चाहिए। कथन सत्य है तथापि वर्तमान समय के अनुसार किसी को सच्चे देव हमारे हैं उनका यह स्वरूप है, तुम्हारे देव झूठे हैं, उनका यह स्वरूप है। ऐसा कथन विपरीत फलदायी बनता है। अपने को सच्चा अन्य को मिथ्या कहना झगड़े को आमंत्रण देना है।

स्वामीजी शुद्धात्म का स्वरूप पहले दिखाते हैं, आत्मा सभी के भीतर है। अतः अपना स्वरूप जानने की रुचि जागृत हो जाती है। जब मेरा आत्मा रागादि क्रोधादि भावों से रहित-शरीरादि नो कर्म से रहित—तथा विषय सामग्री के साधनों से भिन्न 'केवल ज्ञानानन्दमय' है ऐसा अपनी आत्मा का माहात्म्य आता है, तब जो शुद्धात्मा बन

चुके परमात्म पद पर स्थिति है, वे कैसे होना चाहिए यह सहज बोध हो जाता है, तब सच्चे देव का स्वरूप और कुदेव का स्वरूप उन्हें स्वयं भासित होने लगता है, किसी को समझाने की जरूरत नहीं होती। प्रक्रिया भेद हैं। व्यवहार से यथार्थपक्ष समझाइए, अथवा निश्चय वस्तु स्वरूप समझाकर व्यवहार की पवित्रता समझाइए, दोनों में प्रक्रिया भेद होकर भी यथार्थ भेद कुछ नहीं। अत: जो लाभदायक प्रयोग है, स्वामीजी उसे ही अपना रहे हैं।

अत: उनकी शैली उनके अनुयाइयों को दिगम्बर जैन धर्म की अंगीकारता के लिये उपयुक्त है। पुराने दिगम्बरों में सभी लोग व्यवहार पक्ष का सम्यग्पालन करते हैं। यदि कुछ कमी है या विपरीतता है तो उन्हें भी उनके तात्त्विक उपदेश को ग्रहण कर दिगम्बर जैन धर्म की यथार्थता का अनुराग कर अपना व्यवहार संशोधित कर लेना चाहिए।

स्वामीजी इस युग की एक महान विभूति हैं, वे समस्त समाज के लिए आदरणीय हैं। मेरी उनके सभी सत्कार्यों पर श्रद्धा है और मेरी भावना है कि वे लौकिक कामनाओं से तथा युक्तियों से व कल्पित भावनाओं से दूर—जिनागम के यथार्थ रहस्य को प्रकाशित कर स्व-पर कल्याण समर्थ हों। भगवान महावीर के 2500 वें निर्वाण महोत्सव की यह सबसे बड़ी उपलब्धि होगी। यदि दिगम्बर जैन समाज के उभयपक्ष इस प्रभावना के यथार्थ मार्ग को अपना लें।

केन्द्रीय महासमिति की एकता (एक मंच) की भावना भी इसके बिना साकार नहीं बन सकती - ऐसा मेरा ख्याल है। अत: यदि सभी भाई इसमें एकजुट होकर प्रयत्न करें तो यह कार्य बहुत सरल है। ●

विनम्र श्रद्धांजलि!

मैंने स्कूल के साथ पाठशाला में कुछ धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन करके परीक्षाएँ दी थी, पर धर्म क्या वस्तु है, यह मैंने अपने जीवन में न जाना था। संयोग से वकालत के कार्य में धार्मिक रुचि तथा समय का अभाव भी धर्म के प्रति उपेक्षा का कारण बना रहा। परन्तु संयोग से स्वामीजी के प्रवचनों की पुस्तकों के पढ़ने का प्रसंग आने पर तीव्र इच्छा हुई कि प्रत्यक्ष में स्वामीजी की वाणी का लाभ उठाया जावे। इसी दृष्टि से सोनगढ़ जाने का निर्णय लेकर प्रथम वर्ष ही क्लास में बैठने व स्वामीजी के प्रवचन सुनने पर अन्तरंग में ऐसी रुचि जागृति हुई कि प्रति वर्ष सोनगढ़ जाए बिना चित्त को शान्ति नहीं मिलती।

धर्म के विषय में जो कुछ जानकारी हुई है, वह पूज्य स्वामीजी की ही देन है।

यदि स्वामीजी के प्रवचन मनन करने का अवसर नहीं मिलता तो पुण्य को धर्म समझता रहता। परिणाम स्वरूप तत्त्व के प्रति अज्ञानता बनी रहती।

यह स्वामीजी का ही महान उपकार है। मैं अपने जीवन में उनका अत्यन्त ऋणी हूँ। इस अवसर पर हृदय से श्रद्धांजलि प्रस्तुत करते हुए उनके प्रति आभार प्रगट करता हूँ और गुरुदेव के शतायु की कामना करता हूँ।

— नन्दकिशोर जैन, एडवोकेट

विदिशा (म०प्र०)

मोक्ष मार्ग दर्शक है, कानजीस्वामी का सन्देश

कल्याणकुमार जैन 'शशि'

जन्म-मरण की गतियों की व्यवहार यद्यपि भटकाएँ
आत्मा यदि निश्चय के द्वारा, मोक्ष परम पद पाये
उसका शत स्वागत है जो अन्तिम पद तक पहुँचाये;
वह सीधा पथ हितकारी है जिसमें मुक्ति प्रवेश
मोक्षमार्ग दर्शक है कानजीस्वामी का सन्देश।

राग-द्वेष के बन्धन में जीवन भटका फिरता है
शीघ्र नहीं टिकने देती, व्यवहारिक अस्थिरता है
इसके चक्रव्यूह में प्राणी इस प्रकार घिरता है;
जिसके कारण छूट न पाते राग-द्वेष संक्लेश।
मोक्षमार्ग दर्शक है कानजीस्वामी का सन्देश।

महावीर ने क्रियाकाण्ड का, किया न रंच समर्थन
सम्यक्, दर्शन, ज्ञान, चरित्र का किया प्रखर प्रतिपादन
समवसरण में प्राणि मात्र को दिया यही पथ दर्शन;
तप के द्वारा मोक्ष प्राप्ति का दिया दिव्य सन्देश
मोक्षमार्ग दर्शक है, कानजीस्वामी का सन्देश।

धर्म परिग्रह कर्माडम्बर, इनमें उलझ न जाये
भ्रमण बढ़ाने वाले पथ पर, आत्मा को न भ्रमाये
सत्वर लक्ष्य निकट लाये, वह पगडंडी अपनाये;
बहुचर्चित शास्त्रों में प्रतिपादित इनके निर्देश
मोक्षमार्ग दर्शक है कानजीस्वामी का सन्देश।

अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व के धनी : कानजीस्वामी

— डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल, जयपुर

'आत्मा..... आत्मा..... आत्मा भगवान आत्मा सदा ही अति निर्मल है, पर से अत्यन्त भिन्न परम पावन है। यह त्रिकाली ध्रुव तत्त्व आनन्द का कन्द और ज्ञान का घनपिण्ड है। रंग, राग और भेद से भी भिन्न अतीन्द्रिय परम पदार्थ निजात्मा ही एकमात्र आश्रय करने योग्य है। उसका ही आश्रय करो, उसमें जम जाओ, उसमें ही रम जावो।' यह प्रेरणा देते-देते लाखों की सभा में भी क्षण भर को ही सही अपने में रम जानेवाले, अपने में ही जम जानेवाले युगान्तरकारी आध्यात्मिक सत्पुरुष कानजीस्वामी को लाखों आँखों ने लाखों बार अपने में मग्न होते देखा होगा। उन्होंने क्या कहा? उसका क्या भाव? कानों से सुनकर चाहे बहुत कम लोगों ने समझ पाया हो, पर आँखों से देखनेवालों ने यह अनुभव अवश्य किया होगा कि स्वामीजी जो कुछ बोल रहे हैं, वह अन्तर की गहराई से आ रहा है। वह मात्र व्याख्यान के लिये व्याख्यान नहीं है।

'गंगा गये गंगादास और जमना गये जमनादास' वाली बात वहाँ नहीं है। चाहे 50 व्यक्तियों की सभा हो, चाहे पचास हजार की। चाहे अपने हों, चाहे पराये। वहाँ तो एक ही बात है—पर और पर्याय से भिन्न आत्मा की। गिरगिट का सा रंग बदलनेवाले तथाकथित आध्यात्मिक प्रवक्ताओं के समान अन्दर कुछ अैर बाहर कुछ वाली बात उनमें आप कभी नहीं पायेंगे।

उनकी वाणी में किसी का विरोध नहीं आता, मात्र अपना अविरोध झरता है। वे अपनी बात, अनुभव की बात, आगम की बात सबके सामने रखते हैं। कौन क्या गलत कह रहा है, गलत कर रहा है; यह

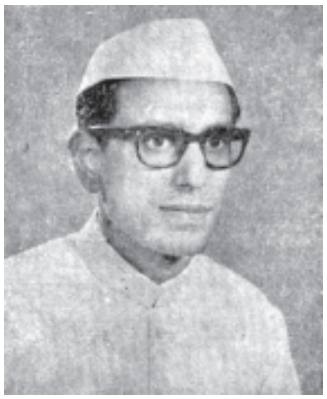

जानने के लिये, सुनने के लिये, कहने के लिये उनके पास समय नहीं है, सत्य का अनुभव करने और निरूपण करने से अवकाश मिले तब तो यह सब किया जाये। यह तो उनका काम है, जिन्हें सत्य से कोई सरोकार नहीं है, धर्म जिनका धन्धा है। धर्म को जीवन माननेवाले स्वामीजी इन सब बातों से बहुत दूर हैं।

यदि आत्मज्ञान का नाम अध्यात्म है तो स्वामीजी सच्चे अर्थों में आध्यात्मिक हैं, क्योंकि उनका चिन्तन, मनन, कथन, अनुभवन सब कुछ आत्मामय है। अधि=जानना, आत्म=आत्मा को इस प्रकार अपने आत्मा को जानना ही अध्यात्म हुआ।

पुण्य और पवित्रता का सहज संयोग कलिकाल में सहज सम्भव नहीं है। जिनके जीवन में पवित्रता पायी जाती है, उनकी कोई बात नहीं सुनता और जिनके समक्ष लाखों मानव झुकते हैं, जिनको सर्व सुविधाएँ सहज उपलब्ध हैं, वे पवित्रता से बहुत दूर दिखाई देते हैं, जैसे उनका पावनता से कोई सम्बन्ध ही न हो। उन्हें पवित्रता से कोई सरोकार नहीं। स्वामीजी एक ऐसे युग-पुरुष हैं, जिनमें पुण्य और पवित्रता का सहज संयोग है। उनमें सोना सुगन्धित हो उड़ा है।

वे अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व के धनी महापुरुष हैं। एक ओर जहाँ स्वच्छ शुभ्र श्वेत परिधान से सर्वांग ढ़की एकदम गोरी भूरी विराट काया, उस पर उगते हुए सूर्य-सा प्रभा सम्पन्न उन्नत भाल तथा कभी अन्तर्मग्न गुरु गम्भीर एवं कभी अन्तर की उठी आनन्द हिलोर से खिलखिलाता गुलाब के विकसित पुष्प सदृश ब्रह्मतेज से दैदीप्यमान मुखमण्डल, व्याख्यान में उनकी वाणी से कुछ भी न समझ पानेवाले

हजारों श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध किये रहता है। वहीं दूसरी ओर स्वभाव से सरल, संसार से उदास, धुन के धनी, निरन्तर आत्मानुभव एवं स्वाध्याय में मग्न, सबके प्रतिसमताभाव एवं करुणाभाव रखनेवाले विनम्र पर सिद्धान्तों की कीमत पर कभी न झुकनेवाले अत्यन्त निस्पृही एवं दृढ़ मनस्वी, गणधर जैसे विवेक के धनी वज्र से भी कठोर पुष्प से भी कोमल उनका आन्तरिक व्यक्तित्व बड़े-बड़े मनीषियों के आकर्षण का केन्द्र बना रहता है।

काठियावाड़ (आधुनिक गुजरात) की मिट्टी में ही न मालूम ऐसी क्या विशेषता है, जिसने एक ही शताब्दी में ऐसे दो महापुरुषों को जन्म दिया है, जिन्होंने लौकिक और पारलौकिक दोनों क्षितिजों के छोर पा लिये हैं। पहिले थे महात्मा गाँधी और दूसरे हैं कानजीस्वामी। एक ने हमें लौकिक स्वतन्त्रता का मार्ग ही नहीं दिखाया, अपितु स्वतन्त्रता भी प्रदान की है। दूसरा हमें पारलौकिक अलौकिक आध्यात्मिक स्वतन्त्रता का पथ प्रदर्शन कर रहा है, स्वयं उस पर चल रहा है, दूसरों को चलने का प्रेरणास्रोत बन रहा है। एक सावरमती का सन्त कहा जाता था तो दूसरा सोनगढ़ का सन्त कहा जाता है। एक बार इन दोनों महात्माओं का मिलन भी हुआ था, जब गाँधीजी राजकोट में स्वामीजी के प्रवचन में पधारे थे।

सोनगढ़ आज तीर्थधाम बन गया है। जहाँ-जहाँ सन्तों के पग पड़ते हैं, वे स्थान तीर्थधाम बन जाते हैं। सोनगढ़ क्यों न तीर्थधाम बने वहाँ तो आध्यात्मिक सत्पुरुष चालीस वर्ष से आत्म-साधना कर रहे हैं, आत्मसाधना और आत्म-आराधना का पथ-प्रशस्त कर रहे हैं।

आज ऐसा कौन जैन है जो गिरनार और शत्रुंजय (पालीताना) गया हो और सोनगढ़ न गया हो और वहाँ पर पहुँचकर विशाल जिनमन्दिर समवसरण मन्दिर, परमागममन्दिर के दर्शन कर कृतार्थ न हुआ हो। शहरी कोलाहल से दूर शान्त और निर्जन इस प्रान्त में

आत्मा के नांद की गूँज न सुनी हो, एवं-राग और भेद से भिन्न आत्मा की बात कान में न पड़ी हो।

आज सोनगढ़, समयसार और कानजीस्वामी पर्यायवाची हो गये हैं। सोनगढ़ में कुन्दकुन्दाचार्य के पंच परमागमों को परमागममन्दिर में संगमरमर के पाटियों पर उत्कीर्ण करा दिया है। सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य का इससे बड़ा स्मारक और क्या होगा। पर कानजीस्वामी कुन्दकुन्द और उनके समयसार के जीवन्तस्मारक हैं। क्यों न हो समयसार ने उनके जीवन को जो बदल डाला है। समयसार पाकर उन्होंने क्या नहीं पाया, क्या नहीं छोड़ा। सर्वस्व पाया और सर्वस्व छोड़ा। श्रीमद् रायचन्द ने समयसार लानेवाले को खोवा भर मुद्रायें दे दी थीं, पर कानजीस्वामी ने तो परम्परागत धार्मिक सम्प्रदाय ही नहीं, उसका गुरुतव, गौरवपूर्ण जीवन, यश यहाँ तक कि प्राणों तक का मोह छोड़ा।

वे प्राणों की बाजी लगाकर प्राणों की कीमत पर दिगम्बर (जैन) हुए हैं। दिगम्बरों ने उन्हें क्या दिया ? यदि दिगम्बरों ने उन्हें समयसार दिया, मोक्षमार्गप्रकाशक तो दिया उन्होंने दिगम्बरों को समयसार का, मोक्षमार्ग-प्रकाशक का मर्म दिया। यदि उन्हें दिगम्बरों से एक समयसार मिला, एक मोक्षमार्गप्रकाशक मिला तो उन्होंने समयसार और मोक्षमार्गप्रकाशक दिगम्बरों के घर-घर तक पहुँचा दिया।

कौन जानता था कि काठियावाड़ के छोटे से ग्राम उमराला में आज से 87 वर्ष पूर्व वि० सं० 1946 की बैसाख सुदी 2 रविवार के दिन जन्मा बालक कहान इतना महान होगा। श्वेताम्बर स्थानकवासी सम्प्रदाय में जन्मा बालक कहान बचपन से ही धार्मिक प्रवृत्ति का शान्त बालक था। माता उजमबाई और पिता मोतीचन्दजी श्रीमाल को एक ज्योतिषी ने बालक कहान को महापुरुष होने का स्पष्ट संकेत दिया था। अत: उनका पुत्रप्रेम सहज द्विगुणित हो गया था। साधारण शिक्षा के उपरान्त उनके जन्मस्थान के ही निकटस्थ कस्बा पालेज में

उनके बड़े भाई खुशालचन्दजी के साथ उन्हें भी दुकान पर बैठा दिया गया पर उनका मन उसमें नहीं रमा। वे उदासवृत्ति, पर कुशलतापूर्वक ईमानारी और पूरी प्रामाणिकता के साथ कार्य करने लगे। सोलह वर्ष की वय में एकबार उन्हें बड़ौदा की कोर्ट जाना पड़ा, वहाँ उन्होंने समस्त सत्य को बड़े धैर्य और गम्भीरता के साथ रखा। न्यायाधीश पर उनकी सरलता, सहजता, स्पष्ट वक्ता का ऐसा असर हुआ कि बिना गवाह के ही उनकी बात को प्रमाण मानकर निर्णय दे दिया।

उठते यौवन में उन्होंने 'भक्त ध्रुव' आदि नाटक भी देखे। सामान्य युवकों का मन नाटकों के शृंगारिक प्रसंगों में अधिक रमा करता है, उनका मन वैराग्य पोषक प्रकरणों में ही अधिक रमा करता था। जिसकी चर्चा आज भी वे बड़े ही भाव-विभोर हो, कभी-अपने अपने प्रवचनों में किया करते हैं।

अन्तर-व्यापार के अभिलाषी कहान का मन बाह्य व्यापार में न रमा। जब उनसे शादी का प्रस्ताव किया तो उन्होंने साफ-साफ कह दिया कि मुझे तो दीक्षा लेने का भाव है, मैं शादी नहीं करूँगा। अरे.... अरे....! उन्होंने दीक्षा लेने की बात मात्र नहीं कही, 22 वर्षीय उठते यौवन में ही उन्होंने स्थानकवासी साधु हीराचन्दजी के पास वि० सं० 1970 अगहन सुदी 9, रविवार के दिन बड़े ही ठाठ-बाट से दीक्षा ले ली। पर दीक्षा जुलूस में हाथी पर सवार होते समय दीक्षा वस्त्र फट गया। उस समय तो किसी की समझ में कुछ न आया, पर अब कभी-कभी स्वामीजी स्वयं कहते हैं कि मुझे तभी शंका हो गयी थी कि सच्चा साधुपना यह नहीं है।

यद्यपि गृहस्थावस्था में भी आपने श्वेताम्बर शास्त्रों का अध्ययन —मनन किया था तथापि दीक्षित होने पर बाद में उनका बहुत गम्भीर अध्ययन किया; पर उनके हाथ कुछ भी न लगा। उन्हें ऐसा लगा जो मेरा प्राप्तव्य है, वह इनमें नहीं है। वे उन पर व्याख्यान करते,

प्रवचन करते, हजारों लोग मन्त्रमुग्ध हो जाते। स्थानकवासी सम्प्रदाय में उनकी महान विद्वान, लोकप्रिय प्रवचनकार और कठोर-साधक साधु के रूप में प्रतिष्ठा थी। उनके भक्तगण मुग्ध थे, पर वे नहीं; वे कुछ और खोज रहे थे। अचानक वि० सं० 1978 में समयसार उनके हाथ लगा। मानो निधि मिल गयी। जिसकी खोज थी, वह पा लिया। वे उसे ले एकान्त जंगल में चले गये। उसके पढ़ने में मग्न हो गये, जाता समय ध्यान ही न रहा।

उनका अन्तर पुकार उठा कि 'सत्य पन्थ निर्ग्रन्थ दिगम्बर है', पर.....। वि० सं० 1982 में मोक्षमार्ग-प्रकाशक हाथ लगा। यह ग्रन्थ भी स्वामीजी को अपूर्व लगा, यह ग्रन्थराज अपूर्व है भी। यह इतना मन भाया कि इसका सातवाँ अध्याय तो आपने हाथ से लिख लिया, जो आज भी सुरक्षित है।

यह अन्तर्बाह्य का संघर्ष वि० सं० 1991 तक चलता रहा। आखिरकार को इस नरसिंह ने उसी वर्ष चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को साधारण गाँव सोनगढ़ में वाड़ा तोड़ ही डाला मुँह पट्टी उतार फेंकी और अपने को दिगम्बर श्रावक घोषित कर दिया। क्या ही विचित्र संयोग है कि यह शुभकार्य महावीर जयन्ती के दिन ही सम्पन्न हुआ। सम्प्रदाय में खलबली मच गयी। चारों ओर से भय और प्रलोभनों के पासे फेंके गये पर सब बेकार साबित हुए। धर्मान्धों ने क्या नहीं कहा और क्या नहीं किया पर 'मनस्वी कार्यार्थी—न गणयति दु:ख सुखं।'

कुछ दिनों तक वे एक अनन्य अनुयायी के सोनगढ़ के समीप टेकड़ी पर स्थित टूटे-फूटे मकान में रहे, जो आज भी उसी हालत में विद्यमान है और जिसे गुरुदेव स्वयं कभी-कभी अपने अनुयायियों को बड़े प्रेम से उँगली के इशारे से दिखाया करते हैं।

साम्प्रदायिकता के मोह में हो गये विरोधियों की कषाय जब शान्त होने लगी तो वे पुण्य और पवित्रता के धनी गुरुदेव के दर्शनार्थ

झुण्ड के झुण्ड आने लगे। कुछ यह देखने भी आते कि अब कैसा क्या चल रहा है, पर उनके समक्ष आकर उनके आचरण व्यवहार को देख एवं अभूतपूर्व प्रवचनों को सुन नत मस्तक हुए बिना नहीं रहते।

कुछ समय बाद जन्मजात दिगम्बर जैन भी पहुँचने लगे। कुछ प्रेम से कुछ भक्ति से, कुछ कुतूहल से पर जो भी उनके पास पहुँचता, उनका हुए बिना नहीं रहता; उनके अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। इनकी वाणी में तो कुन्दकुन्द के अमृत का जादू है तो पर उनका बाह्य व्यक्तित्व भी कम आकर्षक नहीं है।

उनके इस आध्यात्मिक आकर्षण से विरोधी खेमों में खलबली मच गयी। जो आज देखी जा सकती है। 'जो वहाँ जायेगा उनका ही हो जायेगा।' इस भय से आशंकित और अंकित होकर वहाँ न जाने की लोगों की प्रतिज्ञाएँ दिलाई जाने लगी पर तूफान को कौन रोक सकता है। अमर गायक कवि युगल की 'लो रोको तूफान चला रे; पाखण्डों के महल ढहाता, लो रोको तूफान चला रे।' यह पंक्तियाँ आज चुनौती दे रही हैं।

आध्यात्मिक क्रान्ति का यह सूत्रधार आज जहाँ भी जाता है, विरोधी भी उसका स्वागत करते हैं, सम्मान करते हैं, अभिनन्दन करते हैं। चार-चार बार सम्पूर्ण भारत की ससंघ यात्राएँ की हैं इस महापुरुष ने। पचास से अधिक विशाल जिन मन्दिरों का निर्माण हुआ है, इनकी पावन प्रेरणा से। बीस लाख से ऊपर साहित्य भी प्रकाशित हुआ है। गाँव-गाँव में तत्त्वचर्चा के केन्द्र स्थापित हो गये हैं। छोटे-छोटे से गाँवों में आप सामान्य व्यापारियों को निश्चय व्यवहार, निमित्त उपादान की चर्चा करते पायेंगे। यह सब इस महामानव का प्रभाव है कि आज के इस भौतिकतावादी युग में आध्यात्मिक वातावरण बना दिया है।

वह अद्वितीय महापुरुष हैं। ऐसा कोई दूसरा महापुरुष बतायें

जिसने इनके समान अनन्त प्रशंसाओं और निन्दाओं का उत्तर तक न दिया हो। जो जगत की प्रशंसा और निन्दा से इनके समान अप्रसवित रहे अपनी गति से ही चलता रहा हो। जिसने समय (शुद्धात्मा) और समय (टाइम) ऐसा साधना की है कि जिसमें समयसार प्रतिबिम्बित हो उठा हो और लोग जिसकी दिनचर्या से अपनी घड़ियाँ मिला लेते हैं।

उस अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व के धनी महापुरुष को शत-शत प्रणाम।

आध्यात्मिकता के हस्ताक्षर

हे त्याग तपस्या के प्रतीक, हे क्रान्तिदूत, हे शान्ति दूत!
भारत-गौरव, निर्ग्रन्थ सन्त, गुजरात भूमि के प्रिय सपूत!

भौतिकता के पृष्ठों पर लिख आध्यात्मिकता के स्वर्णक्षार,
तुम बढ़े जा रहे अनथक, सत्, शिवम, सुन्दर के पावन पथ पर!!

वाणी से झरता अमृत स्रोत, तन-मन का कलुष धोता है
नयनों में ज्ञान-दीप ज्योतित, अज्ञान-तिमिर को खोता है

गुजरात क्षेत्र में दिगम्बरत्व की जय गाथा के मुखरित स्वर,
यश गाथा कहते हैं तेरी, मन्दिर के ध्वज, उत्तुंग, 'शिखर'!!

हे युग-सारथि, संचालित होकर धर्मचक्र मय युग का रथ
है यही कामना, तब प्रताप से हो प्रशस्त जिन आगम-पथ!!

— शेखर जैन
मन्त्री-हरियाणा प्रदेश महावीर निर्वाण महोत्सव समिति

यशस्वी आध्यात्मिक सन्त

पण्डित परमेष्ठीदास जैन, न्यायतीर्थ, ललितपुर
प्रधान सम्पादक 'वीर'

सौराष्ट्र के छोटे से ग्राम में जन्मे, बाल्यावस्था से ही विरक्त और भरी युवावस्था में दीक्षा ग्रहण करके श्वेताम्बर सम्प्रदाय में महामुनिराज का उच्चतम पद प्राप्त करके महनीय पूज्यता को प्राप्त आध्यात्मिक सन्त श्री कानजीस्वामी ने जब श्री कुन्दकुन्दाचार्य के समयसार का अध्ययन किया तो उनकी दृष्टि बदल गयी। और उन्होंने अपने स्थानकवासी सम्प्रदाय में प्राप्त अवर्णनीय ख्याति, पूजा और सर्वोच्च मान्यता का मोह छोड़कर बड़े ही साहसपूर्वक मुहपत्ती (स्थानकवासी जैन साधु का परिवेष) त्याग कर अपने अनेक अनुयाइयों सहित दिगम्बर जैनधर्म, श्री कुन्दकुन्दाचार्यादि गुरुओं और समयसार आदि शास्त्रों के परम भक्त हो गये।

संवत् 1978 में स्थानकवासी सम्प्रदाय के महामुनिराज श्री कानजीस्वामी के मन में आकस्मिक विरक्ति व्याप्त हुई, और उन्होंने अपने गुरु श्री हीराचन्दजी महाराज से स्पष्ट कह दिया कि—यह मुहपत्ती, वसत्र और पात्रादि का परिग्रह मुनित्व के साथ अनुरूप नहीं लगता। उत्तर में गुरुजी ने कहा कि—यदि यह सब ठीक नहीं लगता तो बिना वस्त्र-पात्रवाला गुरु ढूँढ़ लो।

यद्यपि यह चर्चा सहज ही चल पड़ी, किन्तु किसे ज्ञात था कि श्री कानजीस्वामी को कुन्दकुन्दाचार्य और उनकी परम्परा के यथार्थ दिगम्बर गुरुओं के प्रति भक्ति हो जायेगी और वे अपने परम्परागत धर्म और प्रतिष्ठा का मोह त्याग कर दिगम्बर जैनधर्मी हो जायेंगे।

श्री कानजीस्वामी ने पूर्व दीक्षा का त्याग करके सौराष्ट्र के एक छोटे ग्राम—सोनगढ़ को पसन्द किया उन्हीं के साथ शताधिक पूर्वभक्त भी स्थानकवासी सम्प्रदाय का त्याग कर दिगम्बर जैन धर्मी हो गये। धीरे-धीरे सोनगढ़ का विकास होने लगा, वहाँ विशाल दिगम्बर जैन मन्दिर का निर्माण हुआ, स्वाध्यायभवन बना और आश्रम की स्थापना हो गयी। स्वामीजी ने श्री कुन्दकुन्दाचार्य और उनके रचित आध्यात्मिक ग्रन्थ समयसार आदि को आत्मकल्याणकारी मानकर खूब प्रचार किया। उनके समयसार-प्रवचन और अपूर्व व्याख्या को सुनकर लोग आश्चर्यचकित रह गये। दूर-दूर से श्रोतागण वहाँ पहुँचने लगे। वहीं निवास करने लगे और धीरे-धीरे सोनगढ़ ने जैन शासन की आध्यात्मिक राजधानी का रूप धारण कर लिया।

दिगम्बर जैन समाज में विद्यमान जैन सिद्धान्त शास्त्रियों में अधिकांश के विद्यागुरु स्याद्वादवारिधि पण्डित बंशीधरजी न्यायालंकार ने एक बार मुधवन में हजारों श्रोताओं की उपस्थिति में कहा था—

'हमारे तीर्थंकरों और आचार्यों ने सच्चे दिगम्बर जैन धर्म को अर्थात् मोक्षमार्ग को प्रकाशित करनेवाला जो उपदेश दिया था, वही इन कानजीस्वामी की वाणी में हम सबको सुनने को मिल रहा है। .....श्री कुन्दकुन्दाचार्य और श्री अमृतचन्द्राचार्य के बाद समयसार के यथार्थ रहस्य को जानने और समझानेवाले श्री कानजीस्वामी ही हैं।'

जहाँ समूचे सौराष्ट्र में 2-4 ही दिगम्बर जैन मन्दिर थे और सर्वत्र श्वेताम्बर धर्म का प्रभाव था वहाँ श्री कानजीस्वामी के प्रभाव, प्रेरणा और प्रयास से सौराष्ट्र में अनेकानेक भव्य दिगम्बर जैन मन्दिरों का निर्माण हो चुका है। केवल सौराष्ट्र में ही नहीं, अपितु समूचे भारत में शताधिक आकर्षक विशाल दिगम्बर जैन मन्दिरों का निर्माण हो चुका है, जहाँ विराट समारोहों के साथ सुन्दरतम भव्य दिगम्बर

जैन मूर्तियों की दिगम्बर मान्यतानुसार प्रतिष्ठा की गई है।

समयसार, मोक्षमार्गप्रकाशक, छहढाला, द्रव्यसंग्रह आदि बड़े-छोटे अनेक ग्रन्थों का इतनी प्रचुर मात्रा में प्रचार-प्रसार हुआ है जितना विगत कई शताब्दियों में कभी नहीं हुआ था। यह सब श्री कानजीस्वामी के यथार्थज्ञान प्रचार की भावना का ही फल है।

स्वामीजी के प्रमुख धाम सोनगढ़ में सैकड़ों भक्तजनों और शताधिक आजीवन ब्रह्मचारी बहिनों का स्थायी रूप में निवास है। उनके खानपान की शुद्धि, व्रत, नियम, आचार-विचार और जिनभक्ति आदि देखकर आश्चर्यचकित रह जाना होता है। पाठकों को यह भी ज्ञात हो कि उनमें अधिकांश श्वेताम्बर या स्थानकवासी जैन थे, जो अब कट्टर शुद्ध दिगम्बर जैन धर्मानुयायी हो गये हैं।

श्री कानजीस्वामी का ही यह प्रभाव है कि एक सुगठित सुव्यवस्थित, अनुशासनबद्ध यात्रासंघ के रूप में सहस्राधिक नर-नारी भारतवर्ष के प्राय: सभी दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्रों की यात्रा कर चुके हैं।

प्रतिवर्ष यत्र-तत्र शिक्षण और प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन करके ज्ञान प्रचार किया जाता है। श्री कानजीस्वामी के निमित्त से सोनगढ़ प्रकारान्तर में अध्यात्मिक तीर्थधाम बन गया है। पूज्य कुन्दकुन्दाचार्य जैसे महा महनीय व्यक्तियों को ही नहीं अपितु पण्डित प्रवर टोडरमलजी, पण्डित बनारसीदासजी तथा पण्डित दौलतरामजी आदि विद्वद्वरों के व्यक्तित्व और कृतित्व को भी उजागर करने में जितना कानजीस्वामी को श्रेय है उतना आज तक किसी को प्राप्त नहीं हुआ मुझे उनके उच्च व्यक्तित्व, महनीय कृतित्व और प्रशस्त आचार-विचार में विगत 35 वर्ष से अति निकट का परिचय है। दिगम्बर जैन समाज उनके उपकारों का चिरऋणी रहेगा। ●

ज्ञान-यज्ञ के यशस्वी प्रणेता

डा० भागचन्द्र जैन, भास्कर
अध्यक्ष, पालि-प्राकृत विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय

अध्यात्म चेतना के प्रेरक

श्री पूज्य कानजीस्वामी इस बीसवीं शताब्दी में अध्यात्म चेतना को जागृत करनेवाले एक ऐसे प्रेरक अग्रदूत हैं, जिन्होंने समाज को 'या विद्या सा विमुक्तये' का पाठ पढ़ाया है। समाज जब आत्मचिन्तन को भूलता सा जा रहा था, आत्मा-परमात्मा की बात उसके गले नहीं उतरती थी, तब उन्होंने चिदानन्द चैतन्यरस की ऐसी संजीविनी दी जिसका पानकर हर मुमुक्षु अपने को धन्य समझने लगा। अध्यात्म चेतना का यह नवनीत समाज को एक नया पथदर्शन दे रहा है। यहाँ विकारों की कोई नवीनता भले ही न हो पर प्रस्तुतीकरण की नवीनता आकर्षक है। विचारों की कोई नवीनता इसलिए नहीं कि स्वामीजी के विचार जैन धर्म के मूल सिद्धान्तों से पृथक् नहीं। उनकी विचारधारा तो वस्तुत: जैन धर्म का मूलरूप है। और इसी को वे जागृत कर रहे हैं।

स्वाध्यायशाला के प्रवर्तक

जैन धर्म में स्वाध्याय को दैनिक कार्यों के अन्तर्गत रखा गया है। समाज इसे कालवशात् भूलता चला जा रहा था। स्वामीजी के प्रभाव से यह भूल सुधरती चली जा रही है। आज गाँव-गाँव में नियमित स्वाध्याय प्रारम्भ हो गया है। प्राय: प्रत्येक मन्दिर के साथ स्वाध्यायशाला का निर्माण हो रहा है और उसमें प्रात: सायंकाल प्रवचन की व्यवस्था कर दी गयी है। मुमुक्षुगण इससे बहुत लाभान्वित हुए हैं। जिन शास्त्रों को लोग जानते नहीं थे, उनका वे स्वयं प्रवचन करने लगे हैं। यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।

वीतरागता के प्रचारक

स्वामीजी मूलत: दिगम्बर नहीं थे। जैसे ही कुन्दकुन्दाचार्य के ग्रन्थ उनके अध्ययन के विषय बने, उनकी दृष्टि में परिवर्तन आया और वे दिगम्बर सम्प्रदाय के अनुयायी हो गये। मात्र अनुयायी ही नहीं बल्कि वीतरागता के सच्चे उपासक और प्रचारक बन गये। जैन साहित्य के प्रकाशन का भी कार्य उन्होंने बड़ी तत्परता और उदारतापूर्वक प्रारम्भ किया। कम से कम कीमत में उसे मुमुक्षु के हाथों में पहुँचाने का सफल प्रयत्न हुआ अभी तक लगभग पचास पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। आत्मधर्म मासिक पत्रिका भी इसी उद्देश्य को लिये हुए है। इतना अच्छा और सस्ता साहित्य साधारणत: अन्यत्र दुर्लभ है।

बाह्य क्रियाकाण्ड के निषेधक

जैन धर्म निवृत्ति प्रधान धर्म है और निवृत्ति की सच्ची साधना निश्चयनय के बिना सम्भव नहीं। व्यवहारनय को अन्त में छोड़ना ही पड़ता है। स्वामीजी व्यवहाररूप बाह्य क्रियाकाण्ड को छोड़ देने का आग्रह करते हैं और आत्मा के मूल धर्म की ओर दृष्टि देने का निवेदन करते हैं। इसका तात्पर्य यह भी नहीं कि चरित्र का वहाँ कोई स्थान नहीं अथवा शुभोपयोग का कोई महत्त्व नहीं। शुभोपयोग की प्राप्ति के लिये शुभोपयोग की निश्चित ही उपयोगिता है। उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। परन्तु उसी में आसक्त हो जाना उचित नहीं। इस दृष्टिकोण के प्रचार से बाह्यक्रियाकाण्ड धीरे-धीरे समाप्त होते चले जा रहे हैं और आत्ममुख होकर रत्नत्रय की पवित्र त्रिवेणी बहने लगी है।

इस प्रकार पूज्य स्वामीजी ज्ञानयज्ञ के यशस्वी प्रणेता हैं जो मिथ्यात्व में फँसे हुए जीवों को बड़ी सरलता से बाहर निकलने के

दुस्साध्य व्रत में लगे हुए हैं। युवक वर्ग भी इस आन्दोलन की ओर बहुत आकर्षित हुआ है। स्वामीजी की तपोसाधना उनका सरल और मधुर व्यक्तित्व प्रवचन की अनूठी शैली ज्ञान की अगाधता, चिन्तन की तलस्पर्शिता, व्यवस्था की प्रगाढ़ता, विचारों की स्थिरता तथा सहानुभूति और सहिष्णुता ऐसे गुण हैं जिन्होंने उन्हें आज विश्व सन्त की श्रेणी में आसीन कर दिया है। उनके इस महामहिम व्यक्तित्व को हमारा शतशः सहस्रसः विनम्र प्रणाम। स्वामीजी स्वस्थ और चिरंजीवी रहें, यही हमारी मनोभावना है।

×××---------×××---------×××

पूज्य श्री कानजीस्वामी वर्तमान युग के महान आध्यात्मिक क्रान्तिकारी सन्त हैं। आपने दिगम्बर आम्नाय अंगीकार करके भगवान सीमंधर स्वामी एवं भगवान कुन्दकुन्दाचार्य प्रणीत वीतराग धर्म का प्रचार-प्रसार किया। समस्त दिगम्बर जैन समाज आपके इस उपकार के लिए सदैव ऋणी रहेगी।

स्वामीजी ने मूल जैन धर्म क्या है? निश्चय अथवा व्यवहार में किसका आश्रय किया जाये। मोक्ष प्राप्ति के लिये सद्पथ क्या है? इन गूढ़ विषयों पर 40 वर्षों तक गहन अध्ययन किया है। हर्ष का विषय है कि सारे भारत को स्वामीजी के प्रवचनों का लाभ प्राप्त हो रहा है।

मैं आपके इस शुभ कार्य की हृदय से अनुमोदना करता हूँ एवं विशेषांक सफलता की कामना करता हूँ।

— गुलशन राय जैन

मुजफ्फरनगर (उत्तर प्रदेश)

आध्यात्मिक सन्त विवेक संत,
दृढ़ श्रद्धानी सादर प्रणाम

अनूपचन्द्र न्यायतीर्थ, जयपुर

ओ कुन्दकुन्द के अनुयायी!
ओ! समयसार के भाष्यकार
अध्यात्मवाद के ग्रन्थों का
मंथन कर खींचा पुनः सार ॥1 ॥

उद्घाटित करके नये तथ्य
आडम्बर सारे किये चूर,
निज स्वाध्याय के बल पर ही
शंकाएँ सब की हुई दूर ॥2 ॥

हे वीतरागता के पोषक
मिथ्यात्व भाव का हुआ अन्त,
आत्मानुभूति से निज पर को
पहिचान रहे हो ज्ञानवन्त ॥3 ॥

तुम शुद्ध आम्नायी अखंड
आकर्षण तुम में यही एक,
विपरीत मान्यता छोड़ छोड़
आकर मिलते हैं अनेक ॥4 ॥

आचार्य कल्प टोडरमल के
हे सद्गुरु हो तुम पूर्ण भक्त
जिनकी साहित्यिक कृतियों से
हो सका मोक्ष का मार्ग व्यक्त ॥5 ॥

शिक्षण शिविरों के माध्यम से
फैलाते जग में सद् विचार,
साहित्य प्रकाशित कर सुन्दर
जिनवाणी का करते प्रचार ॥6 ॥

आगम ग्रन्थों का शुचि लेखन
परमागम मन्दिर में विशाल
युग युग तक गौरव गाथाएँ
गायेगा 'अनुपम' विशद भाल ॥7 ॥

मन्दिर निर्माण प्रतिष्ठा से
कर दिया संस्कृति में सुधार
जिन पूजा भक्ति भजन प्रवचन
द्वारा समझाते धर्म-सार ॥8 ॥

सदियों तक जीओ परमहंस
हे सरस्वती सुत! बुद्धि धाम,
आध्यात्मिक संत विवेकवंत
दृढ़ श्रद्धानी सादर प्रणाम ॥9 ॥

शान्ति-पथ-प्रदर्शक

ज्ञानी ज्ञान भाव में मग्न रहता है। उससे कोई लाभ ले रहा है या नहीं, उससे इससे कोई प्रयोजन नहीं। वह व्यर्थ के विषाद में अपना अमूल्य समय नष्ट न कर अपने सर्वांगीण विकास में सदैव तत्पर रहता है। जैसे सुमन खिलकर अपनी सुगन्ध बिखेरता है। चाहे वह निर्जन वन में हो या नगर के कोलाहल के मध्य मानव निर्मित क्यारी में। कौन उसकी महक ले रहा है, कौन नहीं; इससे उसे क्या प्रयोजन ? खिलना, महकना उसका स्वभाव है।

कानजीस्वामी की शान्त सौम्य मुद्रा, उनकी जीवनचर्या देखकर अथवा उनके प्रवचन श्रवण कर किसी कवि की पंक्तियाँ जो मैंने बचपन में पढ़ी थीं, बरबस याद आ जाती हैं—

कर्मवीर बकवाद नहीं करता है खल से।
शान्ति सहित निज कार्य किया करता है बल से॥

यद्यपि ओछा उसे बुरी बातें कहता है।
तो भी वह निज कर्म मार्ग पर दृढ़ रहता है॥

जो श्वान भूंकते हैं खड़े, हाथी जाता है चला।
क्या मशकों की हुंकार से खगपति डरता है भला॥

अन्त में स्वामीजी के प्रति मैं भावभीनी श्रद्धांजलि समर्पित करते हुए उनके दीर्घायु होने की मंगल कामना करती हूँ।

— रूपवती 'किरण', जबलपुर

महान क्रान्तिकारी सन्त

— प्रकाश हितैषी शास्त्री
सम्पादक—सन्मति-सन्देश, दिल्ली

धर्म का प्रयोजन शाश्वत शान्ति की प्राप्ति है। वह सुख-शान्ति आत्मा का स्वभाव है। अत: सुख-शान्ति प्राप्त करने के लिये आत्मस्वभाव को समझना अत्यन्त आवश्यक है। उस आत्म ज्ञान के साधनों को ही अध्यात्मवाद कहा जाता है। यह अध्यात्मवाद ही धर्म का प्राण है। इस अध्यात्म की साधना के द्वारा ही साधक जीव अपने साध्य मुक्ति (पूर्णज्ञान, अनन्त सुखादि) की प्राप्ति करते हैं।

प्रत्येक युग में इस अध्यात्मवाद का प्रचार-प्रसार होता रहा है। अनेक आचार्यों, साधु, सन्त और विद्वानों ने अपने-अपने समय में

इस अध्यात्मवाद का बिगुल बजाया है। आज भी आत्मार्थी सन्त श्री कानजीस्वामी ने निर्भीक एवं निर्भ्रान्त होकर भारत में इसी अध्यात्म का तुमुल नाद किया है। जैन समाज जो मात्र क्रियाकाण्ड को धर्म मानकर आँख बन्द कर चल रही थी, उसको आज स्वामीजी ने झकझोर दिया है। जिस अध्यात्म को नीरस और उपेक्षित मान रहे थे, वही अध्यात्म आज सबसे अधिक रुचिकर एवं संजीवनी बूटी की तरह उपादेय बन गया है।

आज से कुछ समय पूर्व प्रथमानुयोग और अधिक से अधिक चरणानुयोग ही शास्त्र सभाओं में चर्चित विषय होता था, वहीं आज अध्यात्म की सूक्ष्म से सूक्ष्म चर्चा चलने लगी है। क्रियाकाण्ड प्रधानी जीव भी आज अध्यात्म का विरोध करने के लिये ही सही समयसारादि ग्रन्थों का स्वाध्याय करने लगे हैं। यह श्रेय भी आदरणीय स्वामीजी को है। इनका विरोध तो अध्यात्म को वरदान बन गया है। क्योंकि ज्यों-ज्यों विरोध बढ़ा है, त्यों-त्यों ही भारत के कोने-कोने में इसका प्रचार बढ़ता गया है। और यह अध्यात्म का रंग ऐसा है, जिस पर दूसरा रंग चढ़ता ही नहीं है। लोग सोचते हैं विरोध करने से इसका प्रसार रुक जायेगा किन्तु वह तो दिन-दूना बढ़ता ही जा रहा है।

इसका एकमात्र यही कारण है कि जब विरोध उठता है तो लोगों की जिज्ञासा जगती है कि इतना विरोध होने पर भी यह प्रचार रुकता क्यों नहीं है, इसी जिज्ञासा को लेकर वे लोग अध्यात्म के सम्पर्क में आते हैं और वे अपने हित की बात सुन समझकर उसके कट्टर अनुयायी बन जाते हैं। जो भी सच्चे हृदय से अध्यात्म के सम्पर्क में आयेगा नियम से वह उसका अनुयायी बन ही जायेगा। क्योंकि वह उसकी अपनी वस्तु है। धर्म की मूल रकम है, अध्यात्म के ज्ञान के बिना अन्य अनुयोग के भाव को सही भी तो नहीं समझ

सकते हैं। अत: अध्यात्म का तलस्पर्शी ज्ञान होना एक धर्म प्रेमी को अत्यावश्यक है।

आज अध्यात्म का गम्भीर मनन-चिन्तन चलने लगा है। प्रत्येक नगर ग्राम में शास्त्र सभायें चलने लगी हैं, जिनकी प्रथा करीब उठती सी जा रही थी। जो भाई-बहनें कभी मन्दिर में भी नहीं आते थे, वे अब पूजा-भक्ति करते देखे जाते हैं। जो जैन धर्म की अ ई भी नहीं जानते थे, वे आज तत्त्व की गम्भीर चर्चा करने लगे हैं। जो विवेक शून्य क्रियायें करते थे, वे अब प्रत्येक धर्म क्रिया को विवेक पूर्वक करने लगे हैं। जो कभी शास्त्र सभाओं के नाम से हिचकते थे, वे ही आज आकर्षक प्रवक्ता बने हुए हैं। इन सब परिवर्तन के मूल कारण को जब हम खोजते हैं तो इसमें सोनगढ़ के सन्त का प्रमुख हाथ है। आज जो भी धर्म की ज्योति प्रज्वलित होती हुई दिख रही है। इन सबके लिये स्वामीजी प्रकाशस्तम्भ का कार्य कर रहे हैं।

कुछ समय पूर्व किसी प्रकाशन संस्था द्वारा कोई जैन ग्रन्थ प्रकाशित किये जाते थे तो वे बीस वर्ष में भी बिक पाते थे, जबकि आज मोक्षमार्गप्रकाशक सात वर्ष की अवधि में पच्चीस हजार प्रकाशित होकर समाप्त हो चुके हैं। समयसारादि कई महान ग्रन्थ अल्पावधि में ही कई हजार छपकर समाप्त हो चुके हैं। सोनगढ़ से प्रकाशित होनेवाले ग्रन्थ प्रकाशित पीछे होते हैं किन्तु वे पहले ही बिक चुके होते हैं।

इससे भी स्वर्णक्षरों में अंकित करनेयोग्य महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना हुई है तो वह है कि करीब 30-40 हजार स्थानकवासी श्वेताम्बर समाज के परिवार मूर्ति पूजक दिगम्बर धर्म में दीक्षित होकर सन्मार्ग पर लग गये हैं। ऐसी ऐतिहासिक घटना इतिहास में भी देखने को नहीं मिलेगी। यह सब सोनगढ़ के सन्त का ही प्रभाव है।

वे जो कुछ कहते हैं, सब शास्त्राधार से कहते हैं, एक शब्द भी अपनी ओर से नहीं मिलाते हैं। शास्त्रों की टीकाएँ भी सभी 200 वर्ष पुरानी पण्डित जयचन्दजी छाबड़ा आदि की हैं। उन्होंने न कोई टीका स्वयं लिखी है और न किसी आज के विद्वान से लिखवाई है। एक-एक शब्द प्राचीन टीकाकारों के हैं। वे अपने कुलधर्म को तिलांजलि देकर दिगम्बर धर्म में आत्म कल्याण की दृष्टि से ही दीक्षित हुए हैं, किसी लोकेषणा को लेकर नहीं।

उनके विषय में अधिकांश भाई यह कहते सुने गये हैं कि जब वे अध्यात्म की इतनी गहरी चर्चा करते हैं तो वे व्रती क्यों नही बन जाते हैं। इसके उत्तर में मैं उनका जो भाव समझ सका हूँ। वह यह है कि व्रत धारण नहीं किये जाते किन्तु जब अप्रत्याख्यानावरणादि कषाय नष्ट हो जाती है, तब अन्तरंग की शुद्धि के साथ वे व्रत प्रतिफलित होते हैं। जैसे वन में नाचनेवाली मयूर को बलात् रंगमंच पर नचाया नहीं जा सकता, वह तो हर्षित होकर वन में स्वयं नाचती है। भले ही उसके नृत्य को देखनेवाला कोई न हो।

यह जैन समाज के सौभाग्य की बात है कि उसे ऐसा महान् क्रान्तिकारी महापुरुष का सुयोग मिला है। इससे तो जैन समाज को हर्षित होकर इस सन्त का सादर स्वागत करना चाहिए और अपनी पूर्व मान्यताओं से मध्यस्थ होकर महान आचार्यों के मूलतत्त्व को ध्यान से सुनना चाहिए। ●

समयसार युग प्रणेता :
पूज्य श्री कानजीस्वामी

— उत्तमचन्द्र जैन, एम.ए., बी.एड., सिवनी (म०प्र०)

''समयसार को जानकर, पाया भव का अन्त।
कहना आगम उन्हीं को, सच्चा सन्त महन्त।।''

ऐसे ही समयसार मर्मज्ञ, आध्यात्मिक संत, पूज्य श्री कानजीस्वामी के अद्वितीय व्यक्तित्व को, उनके प्रति वर्तमान आस्था को यों तो लेखनी पूर्णत: व्यक्त करने में असमर्थ है, फिर भी यहाँ व्यत्किंचित, सम्भव प्रयास किया जा रहा है। जिनको अनुभव होता है, उन्हें शब्दों की विशेष महत्ता नहीं होती, किन्तु जिन्होंने अनुभव तो दूर रहा, अनुभव की बात को भी कभी सुना नहीं, अनुभवी सन्तों का कभी परिचय किया नहीं, आदर, सम्मान एवं कृतज्ञता की स्वीकृति के बदले जो कृतघता के नर्तन में लीन हैं, उन्हें कृतघता रूप महापाप से बचने में निमित्तभूत अनुभव एवं अनुभव की बातों का परिचय कराना ही एकमात्र साधन है, तदर्थ लेखनी का महत्त्व भी है। अत: यहाँ पर समयसार युगप्रणेता, महावीर की वीतराग वाणी के रहस्योद्घाटक, युगक्रान्ता, युगपुरुष सन्त पूज्य श्री कानजीस्वामी का संक्षिप्त यथार्थ निज अनुभूति अनुसार परिचय कराते हैं।

मेरा प्रथम परिचय—सन् 1962-63 में पूज्य स्वामीजी का मंगल-पदार्पण मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल में हुआ था। उस समय मैं लगभग 18 वर्ष का युवक था। मैं अपनी युवकोचित उत्कण्ठा सहित पूज्य स्वामीजी के दर्शनार्थ एवं सदुपदेश लाभार्थ निश्चित सभा मण्डप में पहुँचा। उस समय लगभग दस हजार से अधिक श्रोतागण मन्त्रमुग्ध की भाँति परम शान्त वातावरण में स्वामीजी

की अमृत वाणी का पान करने में संलग्न थे। कुछेक आनन्दित हो रहे थे, तो कुछ चन्द्रचकोरवत् निस्तब्ध थे, कुछ 'प्रमाण वचन गुरुदेव' 'बराबर' इत्यादि शब्दोच्चारण कर रहे थे। मैं स्वयं पूज्य स्वामीजी की शान्त, प्रसन्न, गम्भीर मुद्रा तथा उक्त वातावरण से प्रभावित हो रहा था। मुझे लग रहा था, निश्चित ही स्वामीजी महान् सन्त है। उनका सन्तपना उनके प्रतापवन्त-आभायुक्त मुखमण्डल, मधुरवाणी, तदनकूल हाव-भाव एवं शान्तमुद्रा से देदीप्यमान हो रहा था। केमरे की भाँति उक्त मुद्रा हृदय पटल पर चित्रांकित सी हो गयी। फिर भी उनकी वाणी का रहस्य या अर्थ स्वयं की अयोग्यता एवं आगम के अनभ्यास के कारण कुछ भी समझ में नहीं आया।

मेरी उत्कण्ठा में वृद्धि का कारण—तदुपरान्त सन् 1964 से 66 तक का समय स्नातक शिक्षा हेतु मैंने सिवनी (म०प्र०) में व्यतीत किया। इसी बीच किन्हीं दुराशययुक्त व्यक्तियों द्वारा पूज्य स्वामीजी का परिचय 'कानजी... कानजी' आदि शब्दों द्वारा मिलने लगा। वास्तव में वह परिचय निन्दकों की निन्दनीय प्रवृत्ति का परिचायक था। सूर्य पर धूल उछालकर उसे आच्छादित करने की असफल कोशिश की तरह तथोक्त 'कानजी' आदि शब्द 'पूज्य सन्त श्री कानजी' के दिनकर सदृश प्रतापी व्यक्तित्व को आच्छादित करने में असमर्थ रहे, बल्कि इन चेष्टाओं ने मुझे उन्हें सन्निकट से समझने की प्रेरणा प्रदान की। जिज्ञासा को यत्किंचित्, शान्त करने हेतु मैंने सोनगढ़ से प्रकाशित साहित्य का तथा इतर प्रकाशित दिगम्बर जैनाचार्यों के साहित्य का गम्भीर अध्ययन एवं परीक्षण प्रारम्भ किया, परिणामत: पूज्य स्वामीजी का विराट व्यक्तित्व एवं जिनागम का रहस्य 'वीतरागता' समझ में आने लगा। अभी सन् 64 से 68 तक पूज्य स्वामीजी का पुन: साक्षात् सान्निध्य भले ही प्राप्त नहीं हो सका, तो भी उनके

प्रवचनादि साहित्य अनुशीलन द्वारा मैं उनके व्यक्तित्व के काफी समीप पहुँचने लगा। अन्तरंग से एक झनकार उठने लगी 'सांची तो गंगा जा वीतराग वाणी'। इस संत की वाणी परम सत्य की उद्घाटक है। यह तो भव का अन्त करनेवाली वाणी है। आत्म-हितकारी एवं शान्तिदायिनी है। ऐसे सन्त का पुनः दर्शन एवं निरीक्षण करके जीवन सफल बनाना इस जीव का कर्तव्य है। अब उत्कण्ठा तीव्र से तीव्रतर होने लगी।

पुनदर्शन एवं सान्निध्य का सौभाग्य—एक कहावत प्रसिद्ध है कि 'जहाँ दृढ़ इच्छा शक्ति हो, वहाँ रास्ता मिल ही जाता है।' इसी अनुसार सन् १९६८ के ग्रीष्मावकाश में मैं अपर्याप्त अर्थसाधन होने पर भी सोनगढ़ को रवाना हो गया अकेला ही। इतनी लम्बी यात्रा पर मैं अकेला प्रथम बार ही निकला था, अनेकों कठिनाईयों के उपरान्त मैं प्रातः ५-६ बजे सोनगढ़ (स्वर्णपुरी) में प्रवेश कर गया। ऐसा लगा उस नगरी का प्रातःकालीन शान्त वातावरण, मानों ग्रीष्म की दोपहरी में दिवाकर किरणों में संतप्त सत्यान्वेषी पथिक वातानुकूलित कमरे "Air Conditioned Room" में पहुँच गया हो। सोनगढ़ के भव्य जिनायतनों की ध्वजाएँ लहरा-लहरा कर संकेत करने लगी कि आओ चिरसंतप्त भव्यात्माओं, आओ! यही है स्वर्णपुरी, यह है वह सौभाग्यशाली नगरी जहाँ पूज्य श्री कानजीस्वामी ने अनवरत लहरानेवाली वीतरागता की ध्वजा लहराई है। यही हैं वे जिनालय जहाँ साक्षात् विद्यमान तीर्थंकर सीमन्धरदेव के तदाकार निर्दोष जिनबिम्ब का तथा समवसरण का दर्शन कर भव्यों के कष्टों से यह आवाज ध्वनित हो उठती है 'अथ में सफलं जन्म-नेत्रे च विमले-कृते।' यही है वह पवित्र तीर्थधाम जहाँ आत्महितकारी, अमृतमयी वाणी का अजस्र स्रोत बहता रहता है।

अग्रिम अनुभूति—मैंने सर्व प्रथम जिनालय में प्रथम बार सीमन्धर जिनबिम्ब के तथा समवसरणादि के दर्शन किये। मेरे ठहरने आदि की सभी व्यवस्था कर दी गयी। मेरे निकट समबन्धी भाई श्री हेमचन्दजी से तुरन्त ही मुझे आगामी समय-सारिणी का ज्ञान हुआ। मानों वहाँ पहुँचते ही मैं किसी महान आत्महितकारी यज्ञ में निमग्न हो गया। प्रतिदिन 4 बजे प्रातःकाल से रात्रि 11-12 बजे तक आध्यात्म के गूढ़ रहस्यों का खुलासा एवं अमृतवाणी के सप्तभंगनयतरंगयुक्त झरनों में निरन्तर स्नान से मानो अनादि कालीन आत्मा का अगृहीत मिथ्यात्व मल धुलने लगा। मंगलाचरण के ये शब्द 'प्रक्षालित सकलभूतलमलकलंका' अब अनुभव में आने लगे। आत्मा का जो कि निरन्तर निर्मल निर्विकारी, शान्त ज्ञानानन्दमय स्वरूप है ऐसा आत्मतत्त्व के परिचय करने में तल्लीन हो गया। यथासमय दिन में 2-3 बार भोजनादि के अशुभ विकल्पों के सिवा, शेष समस्त समय में मात्र बुद्धिपूर्वक तत्त्वाभ्यास के अध्ययन, मनन एवं चिन्तनरूप सातिशय शुभ विकल्प ही बना रहता था। यह भी विस्मरण हो गया कि मेरे कोई सम्बन्धी भी हैं मेरा कोई घर, नगर आदि है, जिसे मैं छोड़कर आया हूँ, मुझे कई समस्याएँ सुलझाना थी, मैं किसी को पत्र तो लिख दूँ। तत्त्वचर्चा में ऐसी तल्लीनता कि यह तक भूल गये कि आज दिन कौन-सा है, दिनांक क्या है इत्यादि। ऐसा भी कोई वातावरण मिलेगा इस दुनिया में अन्यत्र, अन्तरंग कहता है कभी नहीं, कहीं नहीं, सिर्फ एक मात्र सोनगढ़ को छोड़कर। सोनगढ़ का शासनतन्त्र ही अलग है जिसका नाम है, 'आत्मानुशासन।' जहाँ दो प्रकार के शासन हैं एक तो व्यवहार से सन्त श्री कानजीस्वामी तथा दूसरे निश्चय से प्रत्येक आत्मा स्वयं शासक हैं, स्वयं के आत्मानुशासन तन्त्र का।

इक्कीस दिवसीय दीर्घ कालखण्ड व्यतीत हो गया, किन्तु पता नहीं चला। द्वितीय इक्कीस दिवसीय कालखण्ड प्रारम्भ हुआ, समस्त विकल्प आकर्षित हुए, इस समय भी, पूर्ववत् ज्ञानामृत के रसास्वादन के लिये। यह सत्य ही है कि अध्यात्म का रस जिस भव्यात्मा को लग जावे, उसे 42 दिन क्या? 33 सागर का काल व्यतीत होने पर भी पता नहीं चलता, ऐसा अनुभव चर्चा के रस में निमग्न हो जाता है। आगम में एक चौथे काल का उल्लेख भी है। लगता है मानों वह काल यही है, यहीं है। परन्तु चौथा काल तो इस समय विदेहक्षेत्र में वर्तमान है भरतक्षेत्र में नहीं, तब अन्त में इसका समाधान हो जाता है कि बहिर्दृष्टि से भरतक्षेत्र नजर आता है, अन्तर्दृष्टि से तो मैं सदा काल विदेहक्षेत्र (अर्थात् देहरहित चैतन्य आत्मप्रदेश क्षेत्र) का निवासी हूँ। यथार्थ में चैतन्य आत्मा विदेहक्षेत्र है, स्वक्षेत्र है, शेष सभी भरतक्षेत्र या विदेहक्षेत्र भी परक्षेत्र हैं। यहाँ पुनः विकल्प पैदा होगा कि आप अपने आत्मा का परिचय दे रहे हैं या पूज्य श्री कानजीस्वामी का? तो उत्तर होगा कि यही हैं पूज्य स्वामीजी का परिचय। उनके परिचय में ही तो यह सारा परिचय का प्रसंग बन रहा है। इसके पूर्व तो मैं अपना परिचय कभी इस प्रकार देता ही न था। मैं स्वयं को जानता ही न था, अतः इस परिचय में ही उस सन्त पूज्य श्री कानजीस्वामी का परिचय है। पूज्य स्वामीजी का काम भी यही है 'निजपरिचय कराना।' जिस निज का परिचय वे कराते हैं, वह निज (आत्मा) तो द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्म से रहित है, ऐसे निज परिचय में आधिव्याधि एवं उपाधियों का अन्त होकर समाधि प्रगटती है। ऐसी समाधि निज व पर में प्रगटानेवाले हैं पूज्य स्वामीजी।

एक अनुभव—संसार के उपाधिधारी पण्डितमन्यों की रीति निराली है। वे अपनी श्रद्धा, अपने विवेक, लेखनी एवं कथनी में

कब कैसा मोड़ दे दें, कोई ठिकाना नहीं। परन्तु पूज्य स्वामीजी जब से वीतराग वाणी के रहस्य को समझे, तभी से यथावत् अक्षुण्ण रूप से निरुपणादि करते रहे हैं, उनका तो उद्घोष है कि 'एक होय त्रय काल में, परमारथ को पंथ' तथा 'आत्मभ्रान्ति सम रोग नहीं सद्गुरु वैद्य सुजान।'

वे वीतरागता के प्रबल पोषक हैं, इसलिए वे कहते हैं—

'वचनामृत वीतराग के परमशान्ति को मूल।
औषधि हैं भवरोग की, कायर को प्रतिकूल।'

अन्त में—अधिक कथन से क्या? मेरा स्वयं का जीवन इस सन्त के सम्पर्कमात्र से पूर्णत: बदल गया। जहाँ उनके परिचय से पूर्व मुझमें नाममात्र का जैनत्व भी न था। भक्ष्य-अभक्ष्य का विवेक न था, आलू, प्याज, भटा आदि अनन्त कायों का भक्षण तथा अन्य अनेकों त्रुटियों के रहते हुए भी जैन नाम धारण करता था जो कि नामधारी रूप मात्र था, पश्चात् उपर्युक्त समस्त अनर्गल प्रवृत्तियों का शोधन एवं आत्मशोधन का अपूर्व चिन्तामणि सदृश मार्ग पूज्य स्वामीजी के ही सान्निध्य से मुझे प्राप्त हुआ। इस महान सन्त की महती अनुकम्पा से मुझ जैसे लाखों आत्माओं ने आध्यात्मिक जीवन पाया है। लाखों की संख्या में प्रमाणिक जिनागम ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ। सैकड़ों भव्य विशाल जिन मन्दिरों का निर्माण एवं हजारों जिनबिम्बों की वैभवपूर्ण प्रतिष्ठायें हुईं। जहाँ गतानुगतिक समाज कोरे क्रियाकाण्ड एवं पाखण्ड की ओर उन्मुख हो रहा था, वहाँ दूसरी ओर इस सन्त ने सर्वज्ञ ज्ञानमयी चेतना से समस्त धर्मकार्यों को अनुप्रणित किया है। ऐसे युगनिर्माण सन्त का विस्मरण कृतज्ञजन कभी नहीं कर सकते। मैं स्वयं हरिवंशपुराण के निम्नांकित शब्दों में अपनी कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ।

पाप कूपे निमग्नेभ्यों, धर्महस्तावलम्बनम्।
वदत्ता कः समोलोके संसारोत्तारणं नृणाम्॥155॥

अक्षरस्यापि चैकस्य पदार्थस्य पदस्य वा,
दानरं विस्मरत् पापी किं पुनः धर्म देशिनम्॥156॥

(हरिवंशपुराण, सर्ग 21/श्लोक 155-156)

अर्थात्—पापरूपी कूप में डूबे हुए जीवों को जो मनुष्य धर्मरूपी हाथ का सहारा देनेवाला है, लोक में उसके समान कौन उपकारी है (अर्थात् कोई नहीं।)

एक अक्षर का अथवा आधे पद का, अथवा एक पद (का ज्ञान) प्रदान करनेवाले को भूल जानेवाला मनुष्य जब पापी कहलाता है, तब कल्याणकारी धर्म के उपदेश देनेवाले को भूल जानेवाले को क्या कहना? उसे तो महपापी समझो।

अतः 'चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मैधी गुरुवे नमः।' अन्त में पूज्य सन्त श्री कानजीस्वामी के प्रति अनन्त-अनन्त उपकारों के कृतज्ञता का भार स्वीकार करता हुआ, उनके प्रति नम्रीभूत हूँ। ●

युग-क्रान्ता सन्त

राजेन्द्रकुमार जैन
सम्पाक-वीर

सौराष्ट्र के दो सन्तों ने अपने-अपने क्षेत्र में चरम सीमायें पार की हैं। पहले महात्मा गाँधीजी जिन्होंने सारे देश में नहीं बल्कि विश्व में अहिंसा को पुनः प्रतिस्थापित किया एवं भारत को स्वतन्त्र कराया, दूसरे सौराष्ट्र के पूज्य गुरुदेव कानजीस्वामी जिन्होंने सारे देश में आध्यात्मिक क्रान्ति का शंखनाद कर वीतराग वाणी का घर-घर प्रचार किया।

इस समय जबकि व्यक्ति लौकिक क्रियाकाण्ड को ही धर्म समझ बैठा है, पूज्य स्वामीजी द्वारा पिछले 40 वर्षों से भी अधिक समय से जनसाधारण में आध्यात्मिकता का संचार अपने आप में एक महान उपलब्धि है। आपके ही सद्प्रयत्नों से समयसार, मोक्षमार्गप्रकाशक आदि शास्त्रों का घर-घर में पठन-पाठन प्रारम्भ हुए।

कानजीस्वामी आज से 2000 वर्ष पूर्व आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा उपदेशित धर्म को आज के युग में प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। सौराष्ट्र व गुजरात में जहाँ एक भी दिगम्बर जैन दिखायी नहीं देता था, अब वहाँ लाखों दिगम्बर श्रावक बसते हैं।

वास्तव में कानजीस्वामी ने दिगम्बर जैन धर्म की महान सेवा की है, मैं उनके चरणों में अपनी विनम्र आदरांजलि समर्पित करता हूँ। ●

परम आदरणीय कानजीस्वामी का परिचय सन् 1950 में जब मैं सोनगढ़ गया, तब से है। इसके पश्चात् भी स्वामीजी का 500 यात्री भाईयों का संघ लश्कर नगर में आया। यहाँ वे तीन दिवस ठहरे। उनका हर प्रकार का प्रबन्ध लश्कर नगर की कार्यकारिणी ने किया, जिसका मैं मंत्री था। इस कारण उनकी सेवा तथा प्रवचन श्रवण का अवसर प्राप्त हुआ। उसके पश्चात् भी फतेपुर पंच कल्याणक, बम्बई पंच कल्याणक, सोनगढ़ पंच कल्याणक में उपस्थित होकर प्रवचन श्रवण कर धर्म लाभ लिया। आपके प्रवचन आध्यात्मिक विषय पर होते हैं। आपका प्रवचन निर्भीक, नि:स्पृही मधुर भाषा में होता है। आपके प्रवचनों को श्रवण कर लाखों महानुभाव दिगम्बर जैन धर्म में दीक्षित होकर धर्म साधना कर रहे हैं। मैं शुभकामना भेज रहा हूँ कि वे दीर्घायु हों और आपका धर्मध्यान व्रत में निरन्तर वृद्धि होकर मोक्षमार्ग की ओर गमन करने में लय रहे।

-मिश्रीलाल पाटनी, ग्वालियर

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं उनका जीवन दर्शन

'युगल', एम०ए०, साहित्य रत्न, कोटा

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी इस युग के एक महान एवं असाधारण व्यक्तित्व हैं। उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से बहुत दूर जन्म लेकर स्वयं बुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया एवं अपने प्रचण्ड पौरुष से जीवन में उसे आत्मसात् किया। इस जीवन में शुद्ध अन्तस्तत्त्व की देशना के लिये उन्हें किन्हीं गुरु का योग नहीं मिला फिर भी उन्होंने तत्त्व को पा लिया क्योंकि सद्गुरु की देशना को वे इस जीवन से पूर्व ही उपलब्ध कर चुके थे। पूर्व देशना से प्राप्त उनका तत्त्वज्ञान इतना परिपूर्ण एवं परिमार्जित था कि वह इस भवान्तर तक भी उनके साथ रहा और उसी ने उन्हें आलोक दिया। उन्होंने तो आगम की नैसर्गिक पद्धति में तत्त्व को उपलब्ध कर ही लिया किन्तु मेरी कल्पना यह है कि इस युग में अंतस्तत्त्व के बोध के लिये यदि वे किसी को अपना गुरु स्वीकार भी लेते तो उन्हें, तत्त्व की उपलब्धि सम्भावित नहीं थी क्योंकि उस समय यह तत्त्व प्राय: अभाव ग्रस्त था। यहाँ तक कि जीवन के सहज क्रम में जो दीक्षा गुरु उन्हें मिले थे, तत्त्व की शोध एवं उपलब्धि के लिये उनका मोह भी उन्हें छोड़ना पड़ा।

सौराष्ट्र के उमराला ग्राम में जन्मे उजमबा एवं मोती के ये लाल बाल्य से ही विरक्त चित्त थे और एकमात्र ज्ञान एवं वैराग्य के प्रकरण ही उन्हें पसन्द थे। अपनी उदात्त लोकोत्तर आकांक्षाओं के समक्ष उन्हें कामिनी का माधुर्य परास्त नहीं कर सका। फलस्वरूप किसी भी मूल्य पर वे उसे जीवन में स्वीकार करने को सहमत नहीं हुए। अन्तर में भोगों से विरक्ति बढ़ती गयी और अन्त में 24 वर्ष की

अवस्था में वे स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये। दीक्षा के नियमानुसार घरबार, कुटुम्ब-परिवार, धन-सम्पत्ति सब छूट ही गये और दीक्षा के आचार का भी दृढ़ता से पालन होने लगा किन्तु शान्ति की भूख शान्त नहीं हुई। शोध की प्रेरणा प्रशान्त नहीं हुई और अन्तर्द्वन्द्व चलता ही रहा। अत: अधिक समय तक वह प्रतिबन्ध सहन न हो सका एवं एक दिन (सं. 1991) मस्त मतंग की तरह उसे भी छोड़ दिया और तत्त्व की मस्ती में घूमते श्री कानजीस्वामी का स्वर्णपुरी (सोनगढ़) सहज ही विश्राम स्थल बन गया।

श्री कानजीस्वामी के जीवन का यह स्थल सर्वाधिक मार्मिक, स्तुत्य, लोक माँगल्य, एवं वरण्य है जहाँ उन्होंने जीवन के सबसे भयंकर शत्रु 'मताग्रह' को खुली चुनौती दी एवं अन्त में विजयी हुए। जीवन में घरबार, कंचन कामिनी पद एवं प्रतिष्ठा सभी कुछ तो छूट जाते हैं किन्तु महान ऋषि, मुनि एवं मनीषियों का बौद्धिक धरातल इस मताग्रह के प्रचण्ड पाश से मुक्त नहीं हो पाता। फलस्वरूप दृष्टि निष्पक्ष नहीं हो पाती और असंख्य प्रयत्नों में भी सत्य आत्मसात् नहीं होता।

श्री कानजीस्वामी इस युग के एक शुद्ध आध्यात्मिक क्रान्तिदृष्टा पुरुष हैं। उन्होंने जिस क्रान्ति का सूत्रपात किया ऐसी क्रान्ति पहले शताब्दियों में भी नहीं हुई। जैन-लोक-जीवन की श्वासें रूढ़ी, अन्ध-विश्वास, पाखण्ड एवं कोरे कर्मकाण्ड की कारा में घुट रही थीं। इसके आगे धर्म कोई वस्तु ही नहीं रह गया था। इन महापुरुष ने शुद्ध जिनागम का मन्थन कर इन जीवन विरोधी त्तवों को अधर्म घोषित किया और इस निकृष्ट युग में शुद्ध आत्मधर्म की प्राण-प्रतिष्ठा की। उन्होंने जनजीवन को एक सूत्र दिया 'स्वावलम्बन अर्थात् निज शुद्ध चैतन्य सत्ता का अवलम्बन ही धर्म है। परावलम्बन में धर्म अथवा शान्ति घोषित करनेवाली सभी पद्धतियाँ अधर्म हैं। फलस्वरूप विश्वसनीय नहीं है।'

जिस समय भारत वसुधा पर पूज्य श्री कानजीस्वामी का अवतरण हुआ उस समय भी आध्यात्मिक चिन्तन का रिवाज तो था किन्तु उस चिन्तन में आध्यात्म नहीं था। आध्यात्मिक चिन्तन का यह स्वरूप हो चला था कि आत्मा को कहा तो शुद्ध जाता था किन्तु वास्तव में माना अशुद्ध जाता था अथवा यदि शुद्ध माना भी जाता था तो आगम भाषा के दासत्व के कारण शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध माना जाता था और व्यवहारनय से अशुद्ध। इस तरह श्रद्धा के लिये कोई धरती ही नहीं थी और दो नय की चक्की में घुन की तरह पिसकर आत्मा की मिट्टी पलीत हो रही थी। बड़े से बड़े विचारक, महान से महान प्रतिभायें, त्याग और वैराग्य के आदर्शनय की इस चक्रीयता में इस तरह मुग्ध थे कि न तो उसमें से निकलने का उनका मन था और न सामने कोई रास्ता। सौराष्ट्र के उस सन्त ने जंगलों के निर्जनों में समयसार एवं मोक्षमार्गप्रकाशक जैसे परमागमों का गम्भीर अवगाहन कर इस आध्यात्मिक समस्या का सरलतम समाधान प्रस्तुत किया।

उन्होंने कहा 'विश्व के सभी जड़ चेतन पदार्थ स्वयं सिद्ध अनन्त शक्तिमय एवं पूर्ण हैं, वे एक-दूसरे से अत्यन्त भिन्न अपनी स्वरूप सीमा में ही रहते हैं और एक-दूसरे का स्पर्श तक नहीं करते। अत: सभी जड़ चेतन सत्तायें नितान्त शुद्ध हैं। आत्मा भी एक ऐसी ही स्वयं सिद्ध निरपेक्ष शुद्ध चैतन्य सत्ता है। श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, आनन्द आदि उसकी असाधारण शक्तियाँ अथवा स्वभाव है जो शाश्वत् उसी में रहते हैं। वह अपने में परिपूर्ण एवं अन्य से भिन्न एक स्वतन्त्र, पवित्र सत् है क्योंकि जो सत् अथवा सत्ता है, वह पूर्ण एवं पवित्र होना ही चाहिए अन्यथा वह सत् कैसा ? जो जड़ है, यह पूरा जड़ हो एवं चेतन पूरा चेतन, अपूर्ण जड़ अथवा अपूर्ण चेतन का स्वरूप भी क्या हो ? अत: पूर्णत्व एवं एकत्व सत् का स्वरूप ही है। विश्व के दर्शनों में जैनदर्शन का यह एक मार्मिक अनुसन्धान है, अपने अनुसन्धान

में उसने कहा कि वस्तु का एकत्व ही उसका परम सौन्दर्य है, सम्बन्ध की वार्ता विसंवाद है।'

'आत्मा का ऐसा परिशुद्ध स्वरूप स्थापित हो जाने पर आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान (मानने-जाननेवाली पर्याय) वृत्ति का केवल एक ही काम रहा कि वह आत्मा को पूर्ण एवं शुद्ध ही माने, ऐसा ही जाने एवं ऐसा ही अनुभव करे। किन्तु आत्मा की इस वृत्ति में सदा से ही यह अज्ञान एवं अविश्वास रहा कि उसने आत्मा को शुद्ध एवं पूर्ण माना ही नहीं वरन अपनी पड़ोसी देहादि सत्ताओं में ही मुग्ध रही। उन्हीं में अहं किया एवं उन्हीं में लीनता। पर सत्ताओं में अहं की यह वृत्ति महान व्याभिचाररिणी है क्योंकि उसमें विश्व की अनन्त सत्ताओं को अपने अधिकार में लेकर उसमें रमण करने की चेष्टा है। अत: विश्व की स्वतन्त्र एवं सुन्दर व्यवस्था को समाप्त कर देने की यह हरकत विश्व का सर्व महान अपराध हुआ और उसकी दण्ड व्यवस्था में निगोद फलित हुआ।'

'परिशुद्ध काँचन-तत्त्व होने पर भी आत्मा की वृत्ति में इतना लम्बा एवं ऐसा भयंकर अज्ञान क्यों रहा? इसका उत्तर आत्मा से दूर कहीं अन्यत्र तलाश करना एक दार्शनिक अपराध होगा, क्योंकि भिन्न सत्ता के वस्तुओं में कारण कार्यभाव कभी भी घटित नहीं होता। अत: इसका उत्तर स्वयं आत्मा ने सदा से स्वत: ही यह अज्ञान परिणाम किया और वह स्वयं ही अज्ञानी हुआ। जैसे एक लौकिक प्रश्न है कि महान बलशाली पराक्रमी एवं अतुल वैभव सम्पन्न एक सम्राट की महारानी दरिद्री महावत पर मुग्ध क्यों हो गयी? उसका कारण यदि हम महावत को मानें तो सम्राट तो उससे कहीं बहुत अधिक है, फिर महावत का मोह कैसा? अत: पूर्ण अनुसन्धान के बाद हमारा अन्तिम समाधान यही होगा कि यह तो महारानी की अपनी स्वाधीन परिणति ही है। उसके मनोविकार का कारण दूसरा

कोई भी नहीं है। उसी प्रकार आत्मा का अज्ञान भी अत्यन्त पर निरपेक्ष है। कथन में कर्मोदय आदि की सापेक्षता आ जाती है किन्तु भाव तो निरपेक्ष ही रहता है, क्योंकि यदि कोई दूसरा आत्मा को अज्ञानी बनावे तो कोई ज्ञानी भी बना सकेगा और पुनः कोई अज्ञानी बना देगा। अज्ञानी बना इस प्रकार आत्मा किसी के हाथ की कठपुतली मात्र रह जायेगा और उसके बन्ध-मोक्ष के सभी अधिकार छिन जावेंगे। और यह तो एक मखौल ही होगा। फिर एक प्रश्न है कि तो फिर इतने लम्बे एवं जटिल अज्ञान का अन्त कैसे हो? तो यह प्रश्न स्वयं ही अपना उत्तर है। 'अज्ञान का अन्त कैसे हो' ज्ञान में इस सबल विचार का उत्पाद ही अज्ञान का प्राणान्तक है क्योंकि प्रबल अज्ञान में ऐसा समर्थ विचार होता ही नहीं।

अनादि अज्ञान के प्रवाह में शुद्धात्मानुभूति सम्पन्न किन्हीं ज्ञानी सत् पुरुष का सुयोग मिलने पर जो महान उद्यमशील आत्मा उनकी कल्याणी वाणी को हृदयंगम करता है। उसका अनादि का अज्ञान शिथिल होकर इस समर्थ विचार में प्रवृत होता है। ज्ञानी गुरु के सुयोग एवं उनकी वाणी मात्र से यह नहीं होता वरन गुरु की वाणी का मर्म जिसे अपने ज्ञान में प्रतिभासित हुआ है, उसे यह विशुद्ध चिन्तन धारा प्रारम्भ होती है। एक प्रश्न हमारा और हो सकता है कि अज्ञानी को ज्ञान ही नहीं है कि वह यह सब कैसे करता होगा? तो ऐसा नहीं है उसके पास ज्ञान का अभाव है। अज्ञानी के पास ज्ञान तो बहुत है किन्तु परसत्ता शक्ति के कारण उसके ज्ञान का सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्यवसाय भी पर में ही होता है। किन्तु यही ज्ञान सद्गुरु भगवन्त से आनन्द निकेतन स्वसत्ता की महिमा सुनकर उसके प्रति उग्र व्यवसाय करके सम्यक् ज्ञान में परिणति हो जाता है और अतीन्द्रिय आनन्द का संवेदन करता है।

अज्ञानी के ज्ञान का यह ईहात्मक प्रश्न कि 'अज्ञान का अन्त कैसे हो' अज्ञान को एक खुली चुनौती है। इस प्रश्न में अज्ञानी को अज्ञान का स्वरूप विदित हो चुका है, अब वह समझने लगा है कि मेरी चैतन्य सत्ता को अनादि, अनन्त, पूर्ण ध्रुव अक्षयानन्द एवं सर्व सम्बन्ध विहीन है और मेरी ही वृत्ति ने उसे नश्वर, अपूर्ण, दुखी, अज्ञानी एवं पराधीन कल्पित किया है। यही मेरा अज्ञान था और अज्ञान आत्मा की पर्याय होने पर भी झूठा होने कभी भी अनुशीलन के योग्य अर्थात् श्रद्धेय नहीं है क्योंकि अज्ञान के अनुशीलन में कभी भी सही आत्म सत्ता की उपलब्धि नहीं हो सकती। अज्ञान के सदृश समस्त ही पर्याय वर्ग श्रद्धेय की कोटि में नहीं जाता। इस अज्ञान को वह स्वसत्ता विरोधी एवं नितान्त मिथ्या मानकर अज्ञान एवं अज्ञान से प्रादुर्भत परसत्तावलम्बी पुण्य एवं पाप की वृत्तियाँ एवं अनन्त पर सत्ताओं से एकत्व तोड़ता हुआ एवं समर्थ भेदज्ञान के बल से स्वसत्ता में ही एकत्व एवं अहं की स्थापना करता हुआ अपने अविराम चिन्तन द्वारा जब महामहिम आनन्द निकेतन निज चैतन्य सत्ता में ही अलख जगाता है तो सदा से पुण्य-पाप जैसी पर सत्ताओं में पड़ा अपनी श्रद्धा का अहं कम्पित एवं विडोलित होकर स्खलन को प्राप्त हो जाता है और लौटकर अपनी ध्रुव अक्षय सत्ता में ही अहंशील होता है। स्वरूप के अहं में धारावाहिक सक्रिय इस गौरवमय वृत्ति को ही सम्यक् दर्शन कहते हैं। श्रद्धा का स्व सत्ता में अहं परिणित होने के ही क्षण में श्रुतज्ञान की अविराम चिन्तन धारा मन का अवलम्बन तोड़ती हुई विराम को प्राप्त होकर उसी शुद्ध चैतन्य सत्ता में एकत्व करती हुई अतीन्द्रिय आनन्द का संवेदन करती है। उपयोग की यह परिणति ही सम्यक् ज्ञान है जो अनुभूति का विलय हो जाने के उपरान्त भी भेदविज्ञान की प्रचण्ड क्षमता को लेकर सम्यक् दर्शन के साथ निरन्तर बना रहता है और उसी समय किंचित् रागांशों के

अभाव से उत्पन्न अल्प स्वरूप स्थिरता ही स्वरूपाचरण चारित्र है। इसी प्रकार परम आनन्द स्वरूप यह अनुभूति श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र की त्रिवेणी है और साक्षात् मोक्षमार्ग है।

जैनदर्शन का यह चिन्तन सचमुच कितना वैज्ञानिक है कि जहाँ वह यह प्रतिपादन करता है कि जीवन कला का आरम्भ ही जीवन तत्त्व (निज अक्षय सत्ता) के स्वीकार से होता है। इसीलिए साधना के प्रथम चरण में उसने सम्यक् दर्शन को स्थापित किया और कहा कि इसके बिना सर्वबोध एवं जीवन की सर्व आचारसंहिता मिथ्या ही होती है।

सम्यग्दर्शन जैसी जीवन की महान उपलब्धि एवं उसके विषय को हृदयंगम करने के लिये यदि हम आत्मपदार्थ स्वरूप पर अनेकांतिक दृष्टि से विचार करें तो निर्णय बड़ा सरल हो जावेगा। यह निर्विवाद है कि आत्म पदार्थ के दो अंश हैं—द्रव्य एवं पर्याय। आत्म पदार्थ का द्रव्य अंश जिसे शुद्ध चैतन्य सत्ता, कारणपरमात्मा, परमपारिणामिकभाव भी कहते हैं सदा पर से भिन्न, अक्षय, अनन्त शक्तिमय पूर्ण, ध्रुव, अत्यन्त शुद्ध एवं पूर्ण निरपेक्ष है। उसमें कुछ भी करने का कभी अवकाश नहीं है और वह सदा ज्यों का त्यों रहता है। आत्मा के द्रव्यांश का यह स्वरूप प्रसिद्ध हो जाने पर अब उसका दूसरा अंश पर्याय शेष रह जाती है। यदि हम पर्याय की कार्य मर्यादा पर विचार करें तो हमारे मन में स्वाभाविक ही एक प्रश्न पैदा होगा कि द्रव्य के पूर्ण एवं शुद्ध सिद्ध हो जाने पर पर्याय को तो द्रव्य में कुछ करना ही नहीं रहा, तब फिर पर्याय का कार्य क्या होगा? तो उसका एक यह सरल उत्तर है कि पर्याय का कार्य नित्य विद्यमान द्रव्य का दर्शन; उसी का अहम् उसी की अनुभूति, एवं उसी की लीनता करना रहा और पर्याय का स्वरूप भी आलम्बनशीलता ही

है। वह द्रव्य की रचना नहीं करती, द्रव्य में कोई अतिशय नहीं लाती वरन् द्रव्य जैसा है, वैसी ही उसकी प्रतीति एवं अनुभूति करती है। द्रव्य तो ज्ञान एवं अज्ञान दोनों दशाओं में ज्यों का त्यों रहता है। इस प्रकार अनेकान्तिक पद्धति में आत्म पदार्थ के दो अंश द्रव्य एवं पर्याय की स्वरूप सीमा भी स्थिर हो जाती है और आत्म पदार्थ दो अंशों में खण्डित न होकर द्रव्य पर्याय स्वरूप पूरा बना रहता है।

आत्मा द्रव्य पर्याय स्वरूप होने पर भी द्रव्य पर्याय का स्वरूप परस्पर विरुद्ध होने के कारण श्रद्धा का अहम् एक ही साथ दोनों में नहीं हो सकता। जैसे एक स्त्री का अहम् एक ही साथ स्व एवं पर दो पुरुषों में नहीं हो सकता। नित्य द्रव्य के अहम् में 'मैं अक्षय हूँ' ऐसी अनुभूति होती है और अनित्य पर्याय के अहम् में 'मैं क्षणिक हूँ' ऐसा संवेदन होता है। पर्याय का स्वरूप भी विविधरूप है। वह क्षणिक है, आलम्बनवती है, वर्तमान में विकारी है, भूत एवं भविष्य का व्रती समुदाय वर्तमान में विद्यमान ही नहीं है एवं समग्र ही वृत्ति समुदाय गमनशील है। उसमें विश्राम नहीं है। पथिक को गमन में नहीं, गन्तव्य में विश्राम मिलता है, क्योंकि गन्तव्य ध्रुव एवं विश्राम स्वरूप होता है। इसी प्रकार आत्मवृत्ति को वृत्ति में नहीं ध्रुव में ही विश्राम मिलता है। वृत्तियाँ तो स्वयं ही विश्राम के लिये किसी सत्ता को तपासती है। इस प्रकार समग्र ही वृत्ति समुदाय दृष्टि (श्रद्धा) के विषयक्षेत्र से बाहर रह जाता है। इसी अर्थ में आचार्यदेव श्री अमृतचन्द्र ने कहा है कि बद्धस्पृष्टादि भाव आत्मा के ऊपर ही ऊपर तैरते हैं, उनका आत्मा में प्रवेश नहीं होता।

इस सम्बन्ध में कुछ और भी तथ्य विचारणीय हैं। आत्मा एक अनादि-अनन्त ध्रुव एवं अक्षय सत्ता है। गुण एवं पर्याय तो उसके लघु अंश है और वह एक ही सदा इनको पीकर बैठा है। अतः गुण

पर्याय के अनन्त सत्त्वों से भी वह एक चिन्मय सत्ता बहुत अधिक है। पर्याय जब उस अनन्तात्मक एक का अहम् एवं अनुभव करती है तो उस एक की अनुभूति में अनन्त ही गुणों का स्वाद समाहित हो जाता है। इसके स्थान पर एक-एक गुण पर्याय की अनुभूति की चेष्टा स्वयं ही वस्तुस्थिति के विरुद्ध होने से प्रतिक्षण आकुलता ही उत्पन्न करती है क्योंकि वस्तु के प्रत्येक प्रदेश में अनन्त गुणों की समष्टि इस तरह संगठित एवं एकमेक होकर रहती है कि उनमें से किसी के अनुभव का आग्रह अनन्त काल में भी साकार नहीं होता वरन् अज्ञानी अपनी इस चेष्टा में प्रतिक्षण विफल प्रयास होने से निरन्तर प्रचण्ड आकुलता को उपलब्ध करता रहता है। गुण पर्याय के अहम् में अनन्त गुण पर्याय की एकछत्र स्वामिनी भगवती चैतन्य सत्ता का महान अपमान भी होता है। अत: गुण पर्याय का अहम् भी जड़ सत्ताओं के अहम् के समान मिथ्यादर्शन ही है।

आत्मा के द्रव्य गुण पर्याय एक ही समय में ज्ञान के विषय बनते हैं किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उनको अहम् भी एक ही साथ समानरूप से समर्पित किया जाये। अनेक को एक साथ जानना एक बात है और फिर उनमें से श्रद्धा (अहम्) के विषय का चयन करना बिल्कुल भिन्न दो बात है। सभी श्रेय श्रद्धेय नहीं होते वरन् आत्मा के द्रव्य गुण पर्याय मय परस्पर विरुद्ध स्वरूप को जानकर ज्ञान ही यह निर्णय लेता है कि ये तीनों समानरूप से उपादेय नहीं हो सकते वरन् तीनों में मात्र निरपेक्ष निरभेद एवं निरविशेष द्रव्य सामान्य ही उपादेय अथवा श्रद्धेय होनेयोग्य है। अन्य की उपादेयता स्पष्ट मिथ्यादर्शन है।

एक वार्ता यह भी बहुलता से चलती है कि जब एकान्त पर्याय दृष्टि अर्थात् पर्याय का अहम् मिथ्या एवं आकुलता स्वरूप है तो एकान्त द्रव्यदृष्टि भी मिथ्या एवं आकुलतामय होना चाहिए। यह तर्क

ठीक ऐसा ही लगता है कि गर्त में गिरना यदि एकान्त कष्टमय है तो सयन का निवास भी एकान्त कष्टप्रद ही होना चाहिए किन्तु यह तर्क तो स्पष्ट अनुभूति के विरुद्ध है। जब समग्र ही पर्याय समुदाय अज्ञान राग-द्वेष एवं अनित्यता का आयतन है और इसके समानान्तर एकमात्र निज चैतन्य सत्ता ही शुद्ध पूर्ण, ध्रुव एवं आनन्द निकेतन है तो दोनों में से किस का अहम् एवं किसका अवलम्बन श्रेयस्कर होगा? एक बात और है और वह यह कि ज्ञान सदा अनेकांतिक ही होता है और दृष्टि सदा ऐकांतिक ही होती है। द्रव्य एवं पर्याय के परस्पर विरुद्ध दोनों पहलुओं का परिज्ञान हो जाने पर सहज ही यह निर्णय हो जाता है कि वृत्ति (दृष्टि) को दोनों में से कहाँ आराम मिलेगा। 'निश्चितरूप ध्रुव द्रव्य ही शाश्वत् आराममय है' इस प्रकार ध्रुव की महिमा ज्ञात हो जाने पर अनादि से वृत्ति समुदाय में पड़ा श्रद्धा का अहम् विगलित होकर निज ध्रुव सत्ता के अहम् में परिणित हो जाता है।

श्रद्धा का विषय इतना स्पष्ट होने पर भी प्रमाणाभास से ग्रासीभूत कुछ ऐसा आग्रह हैं, जिन्हें श्रद्धा के विषय में पर्याय शामिल किये बिना तृप्ति नहीं मिलती। किंतु हमारा संतुलित विशुद्ध चिंतन स्वयं हमें यह समाधान देता है कि श्रद्धा के विषय क्षेत्र में पर्याय के भी पर्दापण का हमारा आग्रह अविवेक तो है ही साथ ही अत्यंत अव्यवहारिक भी है। इस संबंध में एक अत्यंत महत्वपूर्ण बात सदा दृष्टव्य है—एक प्रश्न है कि श्रद्धा का श्रद्धेय पहले से ही विद्यमान एवं पूर्ण होता है या श्रद्धा के क्षण में स्वयं श्रद्धा श्रद्धेय के साथ मिलकर उसे पूरा करती है और तब वह उसका श्रद्धेय होता है? यदि श्रद्धा श्रद्धेय को पूरा करती है तो इसका अर्थ यह हुआ कि श्रद्धेय सदा ही अपूर्व है और अपूर्ण श्रद्धेय में श्रद्धा का सर्व समर्पण एवं लीनता अनंत काल में भी संभव नहीं है। इस प्रकार श्रद्धेय की

अपूर्णता में श्रद्धा का स्वरूप सदैव संदिग्ध, प्राप्त एवं मलिन ही रहेगा और वह कभी भी सर्व समर्पण पूर्व व श्रद्धेय का चरण नहीं करेगी। एक बात और है—यह तो सर्व विदित है कि वर्तमान में अज्ञानी का पर्याय समुदाय विकारी है और स्व एवं पर, द्रव्य एवं पर्याय, विकार एवं निर्विकार आदि का तात्विक चिंतन एवं विश्लेषण भी अज्ञान दशा से ही प्रारंभ होता है। अज्ञानी को अपनी विशुद्ध चिंतन धारा में जब यह पता लगता है कि 'मेरी सत्ता तो नितांत शुद्ध एवं अक्षय है और मेरी ही वृत्ति उसे अशुद्ध एवं नश्वर घोषित करती रही' तो वृत्ति समुदाय में पड़ा उसका विश्वास स्खलित होकर शुद्ध चैतन्य सत्ता पर अपनी स्थापना कर लेता है। इस विश्वास में सदैव ही पर्याय के स्तर का निषेध प्रवर्तित होता है। इसी को पर्याय का हेयत्व कहते हैं। स्पष्ट बात तो यह है कि दृष्टि में निषेधरूप भी कोई वृत्ति प्रवर्तित नहीं होती वरन् निरंतर निज शुद्ध चैतन्य सत्ता में अह्म का प्रवर्तन ही पर्याय का निषेध अथवा हेयत्व कहा जाता है। फिर भी यदि हमारा पूर्वाग्रह विकारी एवं अनित्य समुदाय को परम निरविकार नित्य द्रव्य के साथ मिलाकर अपने श्रद्धेय की रचना करेगा तो उस श्रद्धेय का क्या स्वरूप होगा इसकी कल्पना भी संभव नहीं है। संभवत: इस मिथ्या एवं विफल प्रयास में श्रद्धा एवं श्रद्धेय का संपूर्ण सौंदर्य ही नष्ट हो जावेगा। इसी प्रकार भावी निर्विकारी पर्याय समुदाय को द्रव्य में मिलाकर श्रद्धा करने का आग्रह भी समान कोटि का मिथ्या दर्शन ही है क्योंकि भावी निर्मल पर्यायें तो वर्तमान में विद्यमान ही नहीं है। अत: उस सत् का विद्यमान द्रव्य में मिलाने की विधि क्या होगी? दूसरी वजनी बात यह है कि कोई भी पर्याय नित्य विद्यमान निर्विकारी निज चैतन्य सत्ता के अवलंबन पर शुद्ध होती है न कि शुद्ध पर्याय का अवलंबन होता है।

इस संदर्भ में एक अत्यंत सुंदर मनोवैज्ञानिक तर्क भी हमें समाधान देगा कि जब इस अनंत विश्व में एकमात्र निज शुद्ध चैतन्य सत्ता ही संपूर्ण एवं सर्वोत्तम होने से शरणय है और इसके समानांतर समग्र ही गुण पर्याय समुदाय एवं विश्व की जड़ सत्तायें हीन एवं भिन्न होने से शरणय नहीं हो सकती तो सर्वोत्तम सत्ता का अवलंबन न लेकर हीन एवं भिन्न के अह्म एवं अवलंबन में क्या कभी आनंद की निष्पत्ति हो सकेगी ? निश्चित ही नहीं होगी। फिर भी यदि पर्याय पक्ष का आग्रह प्रवर्तित होता है तो इससे बड़ी दुर्गति एवं दुराशय दूसरा क्या होगा ?

शुद्ध चैतन्य सत्ता मिथ्या दर्शनादि विकारी पर्याय समुदाय से विकारी नहीं बनती वरन् इस शुद्ध चैतन्य सत्ता का अदर्शन एवं अविश्वास ही मिथ्यादर्शन की विकारी पर्याय है। इसी प्रकार वह चैतन्य सत्ता सम्यक् दर्शनादि शुद्ध पर्यायों के उत्पन्न होने पर शुद्ध नहीं होती वरन् उस शुद्ध चैतन्य सत्ता का दर्शन अर्थात् अहम् ही सम्यक् दर्शन की शुद्ध पर्याय है। इस प्रकार चैतन्य सत्ता की त्रैकालिक शुद्धता एवं सर्व नय निरपेक्षता अत्यन्त निरापद है और सर्व ही अनित्य एवं विकारी पर्याय समुदाय उसकी ध्रुव परिधि के बाहर रह जाता है। यहाँ तक कि ध्रुव सत्ता के अहम् को सम्यक् दर्शन कहा तो जाता है किंतु सम्यक् दर्शन में ध्रुव का अहम् नहीं वरन् स्वयं ध्रुव है। इस प्रकार स्वयं सम्यक् दर्शन भी सम्यक् दर्शन की परिधि (ध्रुव) के बाहर रह जाता है और यद्यपि द्रव्य पर्याय स्वरूप पूरे आत्म पदार्थ में सम्यक् दर्शन का विषय पदार्थ का ध्रुव सामान्य द्रव्यांश ही होता है किंतु वह अंश अपूर्ण नहीं स्वयं ही पूर्ण है और दृष्टि (श्रद्धा) उसमें अंश का नहीं वरन् पूर्ण का अनुभवी करती हुई स्वयं पूर्ण है। इस प्रकार दोनों अंशों की पूर्णता ही वस्तु की पूर्णता है। ध्रुव को अंश मानकर श्रद्धा करना प्रकारांतर से मिथ्या दर्शन ही है। जैसे ग्यारह के

अंक में एक के दोनों अंक अपने-अपने में पूर्ण है। इस प्रकार दोनों अंक अपूर्ण हो तो ग्यारह का पूर्णांक ही उपलब्ध नहीं होगा क्योंकि दो अपूर्ण स्वयं तो कभी पूरे होते ही नहीं किंतु दोनों मिलकर भी किसी एक पूर्ण स्वरूप को निष्पन्न नहीं कर सकते। वह वस्तु स्वभाव की स्वयंसिद्ध विलक्षणता ही है।

इस पद्धति में आत्मा को मात्र ध्रुव मानने से उसमें पर्याय का अभाव नहीं हो जाता वरन् ध्रुव एवं ध्रुव की श्रद्धा, पूर्ण एवं पूर्ण का अहम् इस प्रकार दोनों अंशों की निरपेक्ष पूर्णता में आत्म पदार्थ द्रव्य पर्याय स्वरूप पूर्ण ही बना रहता है। वास्तव में ध्रुव को अंश माननेवाली श्रद्धा में पूर्ण की प्रतीति ही नहीं होगी वरन् सदा ही ऐसा लगता रहेगा कि आत्मा में अभी कुछ कमी है। निश्चय ही श्रद्धा आदि वृत्तियों का कार्य ध्रुव आत्मा में कुछ करना नहीं वरन् उसे ध्रुव मानना मात्र होता है। 'मैं ध्रुव हूँ' यही सम्यक् दर्शन का स्वर है। सम्यक् दर्शन की काया ध्रुव से ही निर्मित है, उसमें सर्वत्र ध्रुव ही पसरा है। अनित्यता उसमें है ही नहीं। उसे विश्व में ध्रुव के अतिरिक्त अन्य सत्ता का स्वीकार ही नहीं है। उसका विश्व ही ध्रुव है। यदि दृष्टि में ध्रुव के अतिरिक्त अन्य सत्ता का भी स्वीकार हो तो दृष्टि का स्वभाव अहम् होने के कारण उसे अन्य सत्ता में अहम् हुए बिना नहीं रहेगा और यही अहम् मिथ्या दर्शन है। 'मेरी सत्ता ध्रुव है' सम्यक् दर्शन को द्रव्य पर्याय का यह भेद भी बर्दाश्त नहीं है। उसे ज्ञान की तरह स्व-पर का भेद करना नहीं आता उसे तो अहम् करना आता है। उसके लोक में कोई पर है ही नहीं। वह मिथ्या होती है, तब भी उसे सब स्व ही दिखाई देता है, तब सम्यक् होने पर तो उसकी परिधि में अन्य भावों का प्रवेश कैसे संभव है और तो और सम्यक् दर्शन के घर में स्वयं अपने रहने के लिए भी कोई जगह नहीं है। उसने अपना कोना-कोना ध्रुव के लिए खाली कर दिया है।

सौराष्ट्र के संत ने भव के अंत के लिए 'ध्रुव' का यह मंगल सूत्र लोक को दिया। उन्होंने सम्यक् दर्शन के जिस स्वरूप का अनुसंधान किया, वह इस युग का एक आश्चर्य है। सम्यक् दर्शन के इस सूक्ष्म एवं अद्भुत स्वरूप का इस युग को स्वप्न भी नहीं था। वास्तव में श्री कानजी स्वामी इस युग में सम्यक् दर्शन के आविष्कर्ता है और वह भवांतक सम्यक् दर्शन इस युग को उनका सबसे महान वरदान है। इसके स्वरूप का बोध उनके बिना संभवित ही नहीं था। उन सत् पुरुष ने सम्यक् दर्शन के संबंध में प्रचलित सभी भ्रांतियों को प्रक्षालित कर दिया। कोई कहते थे कि सच्चे देव, गुरु, धर्म की श्रद्धा ही सम्यक् दर्शन है तो कोई सात तत्त्व की श्रद्धा किसी ने तो यहाँ तक कहने का दुस्साहस किया कि जैन कुल में जन्म ही सम्यक् दर्शन है। कहीं से आवाज आई कि सम्यक् दर्शन काललब्धि आने पर अपने आप होता है, उसके लिए पुरुषार्थ अपेक्षित नहीं है और उत्पन्न हो जाने पर भी स्वयं को उसका पता नहीं चलता किंतु उन महापुरुष ने रहस्योद्घाटन किया कि इनमें से एक भी सम्यक् दर्शन नहीं है, इन सबकी समग्रता में भी प्रचंड अंतर पुरुषार्थ के बिना सम्यक् दर्शन नहीं होता। यह भी नितांत असत्य है कि सम्यक् दर्शन होने पर स्वयं को उसका पता नहीं चलता। सम्यक् दर्शन का उद्भव होने पर साधक को निज शुद्ध चैतन्य सत्ता की लीनता में अतींद्रिय आनंद का प्रत्यक्ष संवेदन होता है। आगम का अक्षर अक्षर इसका साक्षी है। उन संत ने सम्यक् दर्शन के इस निश्चय पक्ष का ही विवेचन नहीं किया वरन् उसके व्यावहारिक पक्ष का भी प्रबल समर्थन किया। उन्होंने कहा 'सम्यक् दृष्टि मिथ्यात्व, अन्याय एवं अभक्ष का सेवन नहीं करता।' उसका लोक जीवन बड़ा पवित्र होता है, वह स्वप्न में भी अतत्व एवं असत्य का समर्थन नहीं करता। वही सच्चे देव गुरु धर्म का सच्चा उपासक होता है। जीवन में इस विशुद्धि के प्रादुर्भाव के

बिना सम्यक् दर्शन नहीं होता। उसका जन्म पवित्र मनोभूमि में ही होता है।

सम्यक् दर्शन की गरिमा को गाते-गाते वे संत विभोर हो जाते हैं। वे कहते हैं 'सम्यक् दर्शन जीवन की कोई महान उपलब्धि है, वह जीवन तत्त्व एवं जीवन कला है। उसके बिना जीवन मृत्यु का ही उपनाम है। ज्ञान में स्व-पर का भेद समझने की क्षमता होने पर सम्यक् दर्शन हर परिस्थिति में हो सकता है। सातवें नरक की भयंकरता अथवा स्वर्गों की सुषमा उसमें बाधक नहीं होती। कर्मकांड के कठिन विधान उसकी उत्पत्ति में मदद नहीं करते, उसे घर नहीं छोड़ना है देह का विसर्जन नहीं करना है वरन् घर एवं देह में रहकर उनसे अहम् तोड़ना है। इसीलिए सम्यक् दर्शन सरल है। कठिन की कल्पना ही कठिनाई है। सम्यक् दर्शन अनुकूल अथवा प्रतिकूल परिस्थिति का दासत्व स्वीकार नहीं करता इसीलिए नरक एवं स्वर्ग के विषम वायु मंडल में भी 'मैं नारकी नहीं, मैं देव नहीं वरन् मैं तो अक्षय चैतन्य तत्त्व हूँ ऐसे अविराम संचेतन में उसका जन्म हो जाता है, इसीलिए वह हर गति में होता है।' इस युग में सम्यक् दर्शन श्री कानजी स्वामी की एक ऐसी शोध है जिसने मृत्यु की ओर बढ़ते युग के चरण जीवन की ओर लौटा दिये हैं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि उस संत के सम्यक् दर्शन ने मृत्यु को ही मार कर विश्व से उसकी सत्ता ही समाप्त कर दी है।

श्री कानजीस्वामी एवं चारित्र—सम्यक् दर्शन एवं सम्यक् ज्ञान की तरह पूज्य गुरुदेव ने चारित्र का भी एक प्रांजल स्वरूप प्रस्तुत किया। वे चारित्र के महान उपासक हैं। चारित्रवंत दिगम्बर संतों के अंतर बाह्य स्वरूप का वर्णन करते-करते वे अघाते नहीं हैं। सहस्त्रों बार उनके अंत:स्थल से यह उद्‌गार सहज ही निकल पड़ते

हैं कि 'ऐसे वन बिहारी नग्न दिगम्बर, वीतराग संतों के दर्शन हमें कब प्राप्त हो और वह अवसर कब आवें जब हम आनंदमय नग्न दिगम्बर दशा की हमें उपलब्धि हो' कुन्दकुन्द एवं अमृतचंद्र जैसे अनंत भावलिंगी संतों के चरणों में उनका मस्तक सदा नत रहता है। आनंद में झूलते दिगम्बर संतों के हृदय के मर्म को आज वे ही पहिचान पाये हैं। मुनित्व के बाह्य इति वृत्तों में मुनि का आत्मा खो गया था चारित्र को कठिन एवं कष्ट साध्य माना जाता था। चारित्र के उस महान् उपासक की वाणी के माध्यम से चारित्र का सही स्वरूप आज निखरा है। कोरे शुभ अनुष्ठानों की काली कारा में चारित्र जैसे जीवन तत्त्व को कैद करने के सभी प्रयत्न आज उस संत ने विफल कर दिये हैं। उन्होंने शंखनाद फूँका, 'चारित्र न तो घरबार आदि बाह्य संयोगों का वियोग मात्र है। और न कर्मकांड की छलागें। न कोरा नग्नत्व ही चारित्र है और न महाव्रत, समिति आदि का पराश्रित शुभाचार। उपसर्ग एवं परीषह झेलना भी चारित्र नहीं तो इंद्रियों का दमन एवं भयंकर कायक्लेश भी नहीं वरन् स्वरूप में अंतर्लीन आनंद वृत्ति ही चारित्र है।'

श्री कानजीस्वामी ने चारित्र के अनिवार्य सहचर शुभाचार का भी जिसे व्यवहार चारित्र कहते हैं पूरा समर्थन किया 'उन्होंने कहा शुभाचार जो मात्र मंद कषाय की ही पर्याय है, उसे चारित्र मानना तो मिथ्या दर्शन है ही किंतु वीतराग चारित्र के अनिवार्य सहचर शुभाचार का सत्व ही स्वीकार न करना भी समान कोटि का मिथ्या दर्शन ही है।' मुनित्व की भूमिका में उस चारित्र के साथ रहनेवाले शेष कषायांष इतने मंद हो जाते हैं कि उनकी अभिव्यक्ति २८ मूलगुण रूप शुभाचार के रूप में ही होती है। अतएव श्री कानजीस्वामी कहते हैं कि यद्यपि नग्नता मुनित्व नहीं किन्तु मुनि नग्न ही होते हैं और

अंतरंग परिग्रह के अभाव के साथ उनके तिल तुष मात्र भी बाह्य परिग्रह नहीं होता। मुनि का स्वरूप जमाने के अनुसार नहीं बदलता वरन् उनका त्रैकालिक स्वरूप एक ही होता है। उन्होंने व्यवहार चारित्र का बड़ा सुंदर स्पष्टीकरण किया कि व्यवहार (शुभभाव) कोई चारित्र नहीं है वरन् बहु तो अचारित्र भाव में चारित्र का आरोप मात्र है। क्योंकि अंतरंग वीतराग चारित्र के साथ वह शुभभाव भूमि नियम से होती है तथा इस शुभभाव भूमि के प्रगट हुए बिना वीतराग चारित्र भी प्रकट नहीं होता। इसी अनुरोध से मंद कषायरूप उस अचारित्र भाव को भी चारित्र कहने की एक पद्धति है और इसी पद्धति को व्यवहार कहते हैं। किंतु वस्तुतः चारित्र तो आनंदमय वीतराग भाव ही है और वही मोक्षमार्ग है। मंदकषायरूप व्यवहार चारित्र, चारित्र का विकार मात्र है। वह थोड़ा भी चारित्र नहीं है और सर्व ही बन्ध स्वरूप है।

सम्यक् दृष्टि को जीवन में सदा ही चारित्र के प्रादुर्भाव की उग्र भावना प्रवर्तित होती है, उसे भले ही पुरुषार्थ की निर्बल गति के कारण चारित्र नहीं होता किंतु वह कभी भी चारित्र की आनंदमय वृत्ति के प्रति उदासीन एवं प्रमादी भी नहीं होता। अतः निश्चित ही उसे इस भव अथवा भवांतर में चारित्र का उदय होता है। मोक्षमार्ग की क्रमिक भूमिकाओं का उल्लंघन करके जल्दबाजी करने से चारित्र नहीं आता, वरन् शुद्ध चैतन्य तत्त्व की उग्र भावना से ही जीवन में चारित्र का उदय होता है।

श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र का तो विशद विवेचन श्री कानजीस्वामी की वाणी में हुआ ही है, किंतु साथ ही जैन दर्शन के आधारभूत सिद्धांत निश्चय व्यवहार, निमित्त उपादान एवं आहत दर्शन का प्राण अनेकांत आदि का जो अत्यंत प्रामाणिक आगम सम्मत एवं सतर्क प्रतिपादन

हुआ है कि वह चित्त को चकित कर देता है। संभवत: जैनदर्शन का आधारभूत कोई सिद्धांत ऐसा नहीं है जिससे उनके ज्ञान एवं वाणी का व्यवसाय नहीं हुआ हो। अध्यात्म का ऐसा सांगोपांग एवं व्यापक विवेचन तो शताब्दियों में नहीं हुआ। चालीस वर्ष से अध्यात्म की बरसातें करती हुई उनकी प्रज्ञा ने अज्ञान की जड़ें हिला दी हैं। तीर्थंकरों एवं वीतराग संतों के हृदय का मर्म खोलकर उन्होंने हमें तीर्थंकरों के युग तक पहुँचा दिया है। उनकी प्रज्ञा ने आगम के गंभीर रहस्यों की थाह लेकर जो मर्म निकाले हैं, वह इस युग का एक आश्चर्य सा लगता है। वाणी का यह कमाल कि चालीस वर्ष के धारावाहिक प्रवचनों में कहीं भी पूर्वा पर विरोध नहीं है। आत्मप्रसिद्धि, नय प्रज्ञापन एवं अध्यात्म संदेश जैसी साहित्यिक विधियाँ उनकी निर्मल एवं पैनी प्रतिमा के ऐसे प्रसव हैं, जिन्हें देखकर आज के युग का बौद्धिक अहम उनके चरणों की धूल में धूसरित होकर गर्व का अनुभव करेगा। उनके प्रवचनों से कल्पनातीत आध्यात्मिक साहित्य का सर्जन हुआ है। शाश्वत शांति के विधि विधानों से भरे उनके आध्यात्मिक साहित्य ने भारतीय साहित्य का शीश विश्व में ऊँचा किया है। वह साहित्य युग-युग तक शांति के पिपासुओं को सच्ची शांति का दिशा-निर्देशन करता रहेगा। उन्होंने जिस आध्यात्मिक क्रांति को जन्म दिया है, उसने युग के प्राण मौत के मुँह से निकाल दिये हैं। आज जन-जन के श्वास प्रश्वास में अमरत्व का संचार होने लगा है। आज के त्रस्त जन जीवन को उनकी वाणी में सही राह एवं राहत मिली है। श्री कानजीस्वामी का युग भारतीय इतिहास एवं श्रमण संस्कृति का एक स्वर्ण युग होगा। उन्होंने भारतीय इतिहास में एक बेजोड़ अध्याय जोड़ा है। वे उस क्रांति के उन्नायक महामानव हैं, जिसका जन्म बाहर नहीं भीतर होता है। जिस क्रांति के उदय में

आत्मा क्लांति का नहीं वरन् मंगलमय शांति का संवेदन करता है। लक्ष्य-लक्ष्य मानवों ने उनकी इस शांति वाहिनी क्रांति का समर्थन किया है और उसके सत्य को परख कर उसमें दीक्षित हुए है। आज लोक का यह स्वर कि 'यदि यह मुक्ति दूत नहीं होता तो हमारी क्या दशा होती' लोक हृदय की सच्ची अभिव्यंजना है। निस्संदेह श्री कानजीस्वामी लोक मांगल्य की प्रतिष्ठा करनेवाले एक लोक दृष्टा एवं लोक सृष्टा युग पुरुष है।

इन महापुरुष का अंतरंग जैसा उज्ज्वल है, बाह्य भी वैसा ही पवित्र है। उनकी अत्यंत नियमित दिनचर्या सात्विक, एक रूप, एवं परिमित आहार आगम सम्मत, सत्य सम्भाषण, करुणा एवं सुकोमल हृदय उनके व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव है। ८७ वर्ष की अति वृद्ध अवस्था में भी उनकी दिनचर्या इतनी नियमित एवं संयमित है कि एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाता। 'समय गोयम मा पमायए' की वीर वाणी उनके जीवन में अक्षरशः चरितार्थ हुई है। शुद्धात्म तत्त्व का अविराम चिंतन एवं स्वाध्याय ही उनका जीवन है। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति वे सदैव सतर्क एवं सावधान है। उसका उल्लंघन उन्हें सह्य नहीं है। उनके जीवन का प्रत्येक स्थल अनुकरणीय है। निश्चित ही वे इस जगत के वैभव है और युग उन्हें पाकर गौरवान्वित हुआ है।

वे युगपुरुष युगों-युगों तक मुक्ति का संदेश प्रसारित करते हुए युग-युग जीवें यही आज के युग की एकमात्र कामना है।

मैं उन युगपुरुष की ८७वीं जयंति के पुण्य पर्व पर अपनी श्रद्धा के अनंत सुमन उनके चरणों में चढ़ाता हूँ। ●

युगपुरुष कानजीस्वामी का शत-शत अभिनन्दन!

हजारीलाल 'काका'

जिसने धर्म साधना ही में लगा दिया है अपना तन मन,
भारत भर में घूम-घूम कर दिया धर्म को नूतन जीवन।
अडिग आज जो आत्म धर्म पर निश्चय नय काले अवलम्बन,
हे युग पुरुष तुम्हें तन-मन से करता हूँ शत-शत अभिनंदन॥

जिनके सतत प्रयत्नों से चल रही धर्म की चर्चा घर-घर,
जिसने जन जीवन में फूँका आत्म धर्म का मंत्र मनोहर।
समय सार के गणधर बन कर किया जिन्होंने पावन प्रवचन,
हे युग पुरुष तुम्हें तन मन से करता हूँ शत-शत अभिनंदन॥

चौथा काल वर्तने लगता जहाँ आपने डाला बसेरा,
वह स्थल तीरथ बन जाता जहाँ आपने डाला डेरा।
तुमसे धर्मामृत रस पीकर प्रमुदित हो जाता है जन-जन,
हे युग पुरुष तुम्हें तन-मन से करता हूँ शत-शत अभिनंदन॥

रूढ़ि वाद में बहे जा रहे थे उन सब को सद्मार्ग बताया,
क्रिया कांड में धर्म समझने वालों को जाकर समझायाँ
'काका' गंवा रहे क्यों नरभव कुछ तो इसकी कीमत आंको,
मोक्ष मोक्ष की है अभिलाषा तो अपने अंतर में झांको॥

भेद प्रभेद बता करके समझाया ये है सम्यक दर्शन,
हे युग पुरुष तुम्हें तन-मन से करता हूँ शत-शत अभिनंदन॥

अध्यात्मरसिक
स्वस्ति श्री कानजीस्वामीजी का सद्भाव पूर्ण स्वागतार्ह—प्रशस्त-विकल्प

ब्र० माणिकचन्द्र चंवरे, कारंजा

सोनगढ़ में परमागम-मंदिर को निमित्त करके जो पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ, उस समय सम्मिलित विद्वत् परिषद के अधिवेशन में श्री दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा निधि की आवश्यकता स्पष्ट की गई। विद्वत् समाज की तो पूर्ण अनुकूलता थी ही। उपस्थित समाज भर ने इस योजना का सद्भावों से एक स्वर से स्वागत ही किया। भारत भर में प्राचीन काल से दिगम्बर जैन समाज की तीर्थ क्षेत्ररूप संपदा वैभव संपन्न रही है। उसकी पूर्णरूपेण विधिवत् अद्ययावम् (up to date) सुरक्षा-सुव्यवस्था और जीर्णोद्धार होने के लिए करोड़ों की आवश्यकता है और यह इस काल में समयोचित और सर्वोपरि सामयिक घटना हो सकती है। इस विषय को लेकर समाज में नवचैतन्य निर्माण हुआ है। समाज की ओर संस्कृति की सुरक्षा के लिए एक पवित्रतम प्राणभूत घटना के विषय में भी योगायोग से कोई कोई भाई अन्यथा विकल्प करके गुणैक दृष्टि से या कार्य की दृष्टि से न देखते हुए कषायों का आविष्कार करने में न चूके। पक्षपात में पड़ जाने के कारण एक भाई ने महामहिम आचार्यश्री कुन्दकुन्द भगवान को भी कोसा। सूर्य के ऊपर थूकने जैसी हँसी की बात हुई। अस्तु।

तीर्थ सुरक्षा का कार्य विशाल व्यापक और महत्वपूर्ण है। वह सुसंगठित रूप से योजनाबद्ध सजगता से तत्परतापूर्ण स्वरूप से हो इसमें किसी को भी कोई विकल्प की आवश्यकता नहीं है। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी बम्बई इस कार्य में संलग्न है। उसके

कार्यों में हस्तक्षेप करने का या सुरक्षा व्यवस्था में हस्तक्षेप करने का किसी को भी विकल्प नहीं था, न है। केवल सुरक्षा में समय पर आवश्यक संबल पहुँचाने मात्र उद्देश से यदि स्वतंत्र रूप से भी **सुरक्षा ट्रस्ट** होता है, उसमें भी विकल्प का कोई कारण नहीं होना चाहिए। नये ट्रस्ट का दायरा और विचारधारा अत्यंत स्पष्ट थी और तिथि 14/9/74 की सोनगढ़ की खास मीटिंग में पुनः अत्यंत अत्यंत स्पष्ट हुई। श्री पंडित बाबूभाईजी, श्री नेमिचंदजी पाटनी आदि भाईयों ने अपने वक्तव्य में ट्रस्ट का मूल उद्देश्य और सदाशय प्रामाणिकता से स्पष्ट किया, अनंतर इसी समय श्री भा० दि० जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी के मान्यवर सभापति श्री सेठ लालचंदजी ने प्रस्फुटित सदाशय को हृदयंगम करके उत्साहपूर्ण रूप से सहज भाव से प्राप्त होनेवाले इस हार्दिक सहयोग का सहर्ष स्वागत ही किया और सफलता की मनोकामना प्रगट की।

इस ही अवसर पर स्वस्ति श्री आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी से तारीख 16 को अध्यात्म प्रवक्ता श्रीमान् पंडित बाबूभाई के साथ स्वतंत्ररूप से भेंट होने का सुअवसर प्राप्त हुआ। श्रीमान् स्वामीजी को और विकल्पों में कोई रस विशेष नहीं परमार्थ की सहज स्वाभाविक रुचि है, इस स्वभाव विशेष का परिचय था ही। इसलिए उनकी आध्यात्मिक विशिष्ट भाव समाधि में अपनी तरफ से अंतराय न हो, इस भावना से इसके पूर्व में कहने की तीव्र भावना होते हुए भी कुछ कहा नहीं था परंतु इस वक्त दिगम्बर जैन तीर्थ तीर्थनिधि और ट्रस्ट के विषय में आवश्यकता को लेकर मनोगत स्पष्ट किया। फलस्वरूप श्रीमान् स्वामीजी की ओर से जो भाव और भावनायें व्यक्त हुईं, वह उनकी आध्यात्मिक गौरवता को लिये हुए ही थी। स्वामीजी ने कहा—

'अपनी ओर से किसी का द्वेष तो होना ही नहीं चाहिए। सत्वेषु मैत्री तत्वभावनापूर्वक होनी चाहिए। फिर भी दिगम्बर-जैन-तीर्थों की सुरक्षा और सुव्यवस्था के लिए उचित प्रबंध करना समाज का कर्तव्य होगा।'

विचार पूर्ण अभिप्राय में रत्ती भर भी द्वेष भावना का अंश नहीं था। समाज की ओर से जो असीम प्रमाद भाव या उपेक्षाभाव हो रहा उसके परिहार के लिए संपूर्ण समाज को सूत्ररूप से समुचित मार्ग दर्शन भी था। सम्यग्दर्शन के साथ यदि विकल्प हो तो धर्मायतनों के विषय में किस प्रकार के हो सकते हैं, इसका वह सहज भाव से प्रगट हुआ एक स्वभाव सुंदर सद्भाव परिपूर्ण हृदयग्राही मनोहर दर्शन था।

समाज में हर एक विषय को लेकर समय-समय पर इष्ट अनिष्ट रूप हद से ज्यादा नुक्ताचीनी होती ही आई है। निष्पत्ति तो कुछ हुई नहीं। आशा करे कि इस विषय में यदि समाज चाहे तो बहुत कुछ सीख सकता है, सजग होकर बिना विकल्प अच्छी मात्रा के ठोस कार्य कर सकता है। परमात्म प्रसाद से यह सब हो, ऐसी हार्दिक भावना है। ●

शत शत वन्दन

- डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल

श्रद्धेय कानजीस्वामी वर्तमान युग के महान् सत्पुरुष हैं। सद्गृहस्थ होते हुए भी समाज में उनका सम्मान किसी आचार्य व मुनि से कम नहीं हैं। तत्वज्ञान का प्रचार करना उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य रहा है और उसमें आशातीत सफलता मिली है। गत ४० वर्षों से वे दिगम्बर समाज के आध्यात्मिक पक्ष को ऊँचा उठाने में व्यस्त हैं। आचार्य कुन्दकुन्द का समयसार उनका सर्वाधिक श्रद्धास्पद ग्रंथ है जिसकी उन्हें प्रत्येक पंक्ति ही नहीं अपितु उसका प्रत्येक शब्द उनके रोम-रोम में समाया हुआ है। मुझे उन्हें दो बार सोनगढ़ में चार बार जयपुर में नजदीकी से देखने का अवसर मिला और मैंने उन्हें अपने समय के प्रत्येक क्षण को तत्त्व चर्चा में व्यतीत करते हुए देखा। वे नियमित रूप से दिन में दो बार प्रवचन करते हैं। और उसमें आध्यात्मिकता का पाठ स्वयं पढ़ते हैं तथा श्रोताओं को पढ़ाते हैं। गम्भीर तत्त्व चर्चा करते हुए भी उन्हें हमें प्रसन्न मुख पायेंगे, आत्मा की शक्ति का जब वे वर्णन करने लगते हैं तो अपने आपको भूल जाते हैं और ऐसे लगने लगता है कि जैसे वे आत्मा गुणों में उतर गये हों। प्रवचन करने की उनकी अपनी शैली है और उसी शैली में आज देश के पचासों विद्वान उनके सन्देश का प्रचार प्रसार करने में लगे हुए हैं। देश में यह प्रथम अवसर है जबकि एक ही व्यक्ति के सद्प्रयत्नों एवं प्रेरणा से सारे देश स्वाध्याय की परम्परा को प्रोत्साहन मिला हो।

पूज्य कानजीस्वामी का जन्म यद्यपि दिगम्बर सम्प्रदाय में नहीं हुआ लेकिन सारे देश में विशेषत: गुजरात में उन्होंने दिगम्बर धर्म का जिस विशाल पैमाने पर प्रचार किया, विशाल मन्दिरों का निर्माण कराने की प्रेरणा दी, पचासों पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सवों का

आयोजन कराया और हजारों स्त्री पुरुषों को दिगम्बर धर्म में परिवर्तित किया यह उनके महान् व्यक्तित्व का परिचायक है। गत सैकड़ों वर्षों में इस प्रकार का परिवर्तन सम्भवत: प्रथम बार हुआ है। स्वामीजी का केन्द्र सोनगढ़ है। और वह अध्यात्म प्रेमियों के लिये तीर्थ स्थल के समान है। दिगम्बर जैन समाज में जितना साहित्य का प्रचार एवं स्वाध्याय के प्रति जन भावना उत्पन्न हुई है उन सबमें स्वामीजी की प्रेरणा कार्य कर रही है। स्वामीजी साधु वेश में नहीं हैं लेकिन पूर्णत: साधु स्वभाव के हैं। आचार्य कुन्दकुन्द, आचार्य अमृतचन्द्र, पद्मनन्दि एवं महापण्डित टोडरमलजी के वे सबसे अधिक प्रशंसक हैं और अपने प्रत्येक प्रवचन में इन महान् आत्माओं का स्मरण किए बिना नहीं रहते।

इन विद्वानों के ग्रंथों की तो उनको पंक्ति एवं वाक्य तक ऐसे याद हैं, जैसे मानों उन्होंने उन ग्रन्थों को पूर्ण आत्मसात कर लिये हों।

जैनधर्म के महान् प्रचारक के चरणों में मेरा शतत: वन्दन। ●

गुरु-कहान

एक सन्त का मानस,
कभी नहीं स्वीकार करेगा,
रेखाओं में बन्धन।
जिसने जीवन भी सीखा है!
आत्म-देह का भेद
जो कि संसार छटाता,
जीवन में जीने को जीता,
किन्तु भाव में मुक्ति समाई।
तदपि देह त्याग,
ज्ञानमय हो तो फिर-
संसार नहीं फिर-फिर आयेगा
यही ध्येय ध्याता ने ध्याया
अमर हो गया और रहेगा:-
'गुरु कहान'
जो सदा तप रहा यही तपस्या
स्वर्णपुरी उद्यान महकता और गूंजता
इसी भाव के अलख राग से
चिर गुंजन हो रहा निनादित
लाखों-लाखों के अन्तस में
आत्मा की आवाज गूंजती
कलयुग में सतयुग दर्शाती
इसीलिए गुरुदेव नमन है—
हे आत्मा के सन्त नमन है—
परमात्मा के हे लघुनन्दन तुम्हें नमन है!!

राजेन्द्र कुमार जैन,
विदिशा (म.प्र.)

आध्यात्मिक क्रान्ति के सूत्रधार : श्री कानजी स्वामी

पं. रतनचन्द 'भारिल्ल',शास्त्री, न्यायतीर्थ , एम.ए., बी. एड., विदिशा (म. प्र.)

सोनगढ़ के सन्त युगपुरुष श्री कानजीस्वामी के अनुपम व्यक्तित्व ने धर्म एवं अध्यात्म के क्षेत्र में प्राय: सभी विशाल व्यक्तित्वों को प्रभावित किया है। ऐसा कोई भी नहीं बचा जो उनके व्यक्तित्व से अप्रभावित रहा हो। उन्होंने तत्वज्ञान की ओर एक नया मोड़ दिया है जो युगों से विस्मृत था। वे वर्तमान आध्यात्मिक क्रान्ति के सृष्टा हैं। उनका अधिकांश जीवन धर्म भावना से ओत-प्रोत और आत्म-साधक के रूप में ही व्यतीत हुआ है एवं हो रहा है, अत: वे सच्चे अर्थों में सन्त व युगपुरुष हैं।

साधु, व्रती, विद्वान, श्रीमान् और नेतागण सभी ने स्वामीजी के बारे में समय-समय पर अपने-अपने मनोभाव अभिव्यक्त किए हैं तथा उनके द्वारा हुए तत्त्व प्रचार, दिगम्बर जिन धर्म की प्रभावना, धर्मायतनों के नव-निर्वाण के महान कार्यों एवं आध्यात्मिक क्रान्ति की मुक्त कण्ठ से प्रंशसा की है। यहां कुछ मनीषियों के विचार उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत करने का प्रयत्न है।

सर्व प्रथम, तपोनिधि चारित्र चक्रवर्ती 108 आचार्य शान्तिसागरजी (दक्षिण) के हृदय में कानजीस्वामी के प्रति जो विचार थे, वे उन्हीं के शब्दों में दृष्टव्य हैं—

एक बार कुछ व्यक्ति आचार्यश्री के पास जाकर बोले—

''महाराज! समाज में कानजीस्वामी के आत्मधर्म ने गजब मचाया है। उनकी समयसार की एकान्तिक प्रारूपरणा से बड़ी गड़बड़ी होगी, व्यवहार धर्म का व सच्चे धर्म का लोप होगा...। इसलिए आप आदेश निकालें व उनकी प्ररूपरणा धर्म बाह्य है, ऐसा जाहिर करें।'' उक्त कथन सुनकर आचार्यश्री ने कहा—''अगर मेरे सामने प्रवचन के लिए समयसार रखा जाएगा तो मैं भी क्या और कोई भी क्या वही तो मुझे कहना पड़ेगा, पुण्य-पाप को हेय ही बताना होगा, यही समयसार की विशेषता है। अब रही बात व्यवहार की, व्यवहार धर्म की जीवन में उपयोगिता कैसी है? यह बात कानजीस्वामी को पटाना होगा। उनका निषेध करने से क्या होगा? कानजी का निषेध करके क्या कुन्दकुन्द का निषेध करना है?''[1] जैनन्द्र सिद्धान्त कोष के निर्माता प्रशान्त मूर्ति तत्त्वरसिक श्री 105 क्षुल्लक जैनन्द्र वर्णी के श्री कानजीस्वामी के प्रति उद्‌गार....। ''अत्यन्त परोक्ष उस तत्त्व का परिचय पाने के लिए जिनवाणी की शरण अथवा ज्ञानीजनों की संगति ही मात्र निमित्त कारण है। अत्यन्त दुर्लभ उस सार की प्राप्ति के निमित्तरूप से सहायक होनेवाले उस ज्ञानी पुरुष के प्रति क्यों स्वाभाविक बहुमान स्वतः उत्पन्न न हो जायेगा। भले ही वह ज्ञानी पुरुष साक्षात् वीतरागी भगवान अरहन्त हों या वीतरागी दि० गुरु हों, या कोई श्रावक हों अथवा गृहस्थ हों, तत्त्व की प्राप्ति में निमित्तपने की अपेक्षा सब समान हैं। यद्यपि वैराग्य व चारित्र की भूमिकाओं की अपेक्षा उनमें आकाश-पाताल का अन्तर है। काठियावाड़ देशस्थ सोनगढ़ ग्राम के सुप्रसिद्ध अध्यात्म योगी कानजीस्वामी भी उन्हीं में से एक हैं। अध्यात्मिक जगत के वासी, उनके अर्थात् श्री कानजीस्वामी

1. आचार्य शान्तिसागर अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ 157

के उस महत् उपकार को कदापि नहीं भुला सकते, जो कि उन्होंने अपनी अद्वितीय प्रतिभा द्वारा भौतिक युग की अन्धकारमय जगती पर विलुप्त प्राय: हो जानेवाली अध्यात्म धारा को पुन: नवजीवन प्रदान किया है।''[2]

इसी क्रम में प्रत्यक्षदर्शी, 105 क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज के अनुभव निम्न प्रकार हैं—

''जब मैं पैदल यात्रा करता हुआ जैनबद्री मूड़बद्री गिरनार की यात्रा के पश्चात् चीर अभिलाषित अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए चार्तुमास के समय सोनगढ़ पहुँचा और चार मास के स्थान पर 14 मास वहाँ रहा। वहाँ मैंने स्वामीजी की धर्म देशना श्रवण की और वहाँ का अपूर्व शान्त वातावरण देखा तो जो आनन्द आया उसको मैं प्रगट करने में असमर्थ हूँ। यही कारण है कि जो वहाँ का वातावरण एक बार अवलोकन कर लेता है, वह दूसरे वक्त जाये बिना नहीं रह सकता।''

''जब स्वामीजी से निश्चय-व्यवहार, निमित्त-उपादान, कर्त्ता-कर्म, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध के विषय में सुना व 14 महा की अवधि में जो अनुभव किया तो जीवन की दिशा ही बदल गई। वहाँ रहनेवाले मुमुक्षु निश्चयात्मक धर्म पर तो अटूट श्रद्धा रखते हैं क्योंकि वास्तव में धर्म तो वही है परन्तु साथ ही जिनेन्द्र पूजन, भक्ति, दान, स्वाध्याय आदि की प्रवृत्ति भी उनमें ही देखी जाती है। और यह सब स्वामीजी के निश्चय-व्यवहार की सन्धिपूर्वक उपदेश करने की शैली का प्रतीक है, क्योंकि निश्चय के साथ व्यवहार होता है, उसका निषेध कैसे हो सकता है।[3]

विद्वत वर्ग में प्रतिष्ठा प्राप्त महान दार्शनिक विद्वान स्व० पं० श्री

2. सन्मति सन्देश, वर्ष 7, अंक 5, पृष्ठ 27
3. सन्मति सन्देश, वर्ष 7, अंक 5, पृष्ठ 27

चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ जयपुर ने गुरुदेव के सम्बन्ध में लिखा है कि—

''इसमें कोई शक नहीं कि कानजीस्वामी के उदय से अनेक अंशों में क्रान्ति उत्पन्न हुई है, पुराना पोपडम खत्म हो रहा है और लोगों को नई दिशा मिल रही है। यह मानना गलत है कि वे एकान्त निश्चय के पोषक हैं। हम सोनगढ़ में एवं सर्वत्र फैले हुए उनके अनुयायियों में निश्चय तथा व्यवहार का सन्तुलन देख रहे हैं। सौराष्ट्र में अनेकों नवीन मन्दिरों का निर्माण तथा उनकी प्रतिष्ठायें स्पष्ट बतलाती हैं कि वे व्यवहार का अपलाप नहीं करते। वे भगवान् कुन्दकुन्द के सच्चे अनुयायी हैं। जो आलोचना करते हैं, वे आपे में नहीं हैं, व उन्होंने न निश्चय को समझा, न व्यवहार को और सच तो यह है कि उन्होंने जैन शास्त्रों का हार्द ही नहीं समझा।

सोनगढ़ से जो धार्मिक साहित्य निकल रहा है, उससे स्वाध्याय का बहुत प्रचार हुआ है। .... निमित्त और उपादान तथा क्रमबद्ध पर्याय आदि दार्शनिक चीचें हैं, विद्वानों के समझने की हैं। ऐसी चीजों की आन्दोलन का विषय बनाना समाज की शक्ति को क्षीण करना है। हमें प्रत्येक प्रसंग को निष्पक्ष दृष्टि से देखना चाहिए। उनका प्रयत्न प्रशंसनीय है।[4]

संहितासूरि पं० नाथूलालजी शास्त्री, इन्दौर द्वारा स्वामीजी के बारे में प्रगट किए गये उद्‌गार निम्न हैं—''इस अशान्ति पूर्ण भौतिक वातावरण में आत्मधर्म एवं सदाचरण का प्रसार कर जिन शासन की प्रभावना करनेवाले और अपने पुण्यशाली तेजस्वी व्यक्तित्व से अगणित व्यक्तियों के जीवन को बदल देनेवाले महान् आध्यात्मिक सन्त आत्मार्थी सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी इस युग की अनुपम विभूति

4. सन्मति सन्देश, वर्ष 7, अंक 5, पृष्ठ 2

हैं—श्री कानजीस्वामी समस्त उपलब्ध साहित्य (शास्त्रों) का अध्ययन कर चुके हैं। श्री आचार्य समन्तभद्रस्वामी, जिनसेनस्वामी, अमृतचन्द्राचार्य, नेमीचन्द्राचार्य आदि के ग्रन्थों को भलीभाँति स्वाध्याय करने से उनका सब विषय स्मृति में है, उनका स्मृतिज्ञान विलक्षण है।

श्री कानजीस्वामी के जितने प्रवचन हुए उनका प्रकाशन हुआ है, उन्हें माध्यस्थ भाव से देखने पर अविरोधता ही मिलती है। मैं लगभग 15 वर्ष से सोनगढ़ के सम्पर्क में हूँ, प्रारम्भ में मुझे भी स्वामीजी के प्रवचनों में विरोध का आभास हुआ.... परन्तु धीरे-धीरे जब विचार किया और शास्त्रावलोकन किया तो वास्तविकता का ज्ञान हुआ। वर्तमान में अध्यात्म की ओर जनता का झुकाव और स्वाध्याय के प्रचार का श्रेय स्वामीजी को है।

श्री कानजीस्वामी हमारी अध्यात्म परम्परा को पुर्नजीवित करनेवाले इस युग के महान् अध्यात्मिक सन्त हैं। स्वामीजी की शास्त्र अविरुद्ध अनेकान्त वाणी और पवित्र व्यक्तित्व का माध्यस्थ भाव से अधिकाधिक लाभ उठा कर मनुष्य भव को सफल बनावें।

जैन समाज के गौरव, लब्धप्रतिष्ठित व्रती पं० जगमोहनलालजी शास्त्री, कटनी ने स्वामीजी से प्रभावित होकर उनके प्रति अपनी आस्था व्यक्त करते हुए लिखा है कि.... ''जब से श्री कानजीस्वामी ने भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के समयसार आदि अध्यात्म ग्रन्थों का परिशीलन कर जैन धर्म का यथार्थ मर्म समझा और अपने अनुयायी हजारों भाई-बहिनों को समझाया, तब से दि० जैन समाज की प्रगति में एक नया मोड़ आया है।[5]

स्वर्गीय पं० गोपालदासजी वरैया के सत्प्रयत्न से दि० जैन समाज में धर्म और न्याय के पठन-पाठन का प्रसार हुआ। श्री 108

5. सन्मति सन्देश, वर्ष 7, अंक 5, पृष्ठ 49

मुनि गणेशकीर्ति महाराज के प्रयत्न से संस्कृत व्याकरण, दर्शन, साहित्य के पठन-पाठन की रुचि जागी, इसी प्रकार इस युग में श्री कानजीस्वामी के निमित्त से दि० जैन समाज में अध्यात्म शास्त्रों के पठन-पाठन की ओर रुचि रही है।

वर्तमान काल में धर्म की बात उसी धर्म के अनुयायियों के गले उतारना भी कठिनतर कार्य है फिर अपनी पुरानी मान्यताओं को छोड़कर पक्षपातरहित हो सत्य को स्वीकार करने की बात तो अत्यन्त कठिन है। श्री कानजीस्वामी ने इस दिशा में जो प्रयत्न किया है, उसका बहुत बड़ा मूल्य है।

हमने स्वामीजी को नजदीक से देखा है, परखा है और उनके प्रवचनों को तथा अनुभवों को सुना है, हमें विश्वास है कि वे दिगम्बर जिनागम के कटर श्रद्धानी हैं। .....स्वामीजी सरल परिश्रमी हैं। उन्हें वचन पक्ष या अभिमान नहीं है, बल्कि आगमानुकुल बात को वे तत्काल स्वीकार कर लेते हैं। .....स्वामीजी प्रतिज्ञारूप प्रतिमा आदि नहीं पालते तथापि उनके आचरण खान-पान आदि किसी प्रतिमाधारी से कम नहीं हैं। उत्तम आचरण, मर्यादित खान-पान, आजीवन ब्रह्मचर्य, मन्द कषाय आदि उनके गुण उनमें और उनके अनेक शिष्यों में पाये जाते हैं।

समाज के विवेकशील वर्ग से हमारा निवेदन है कि आगम के प्रकाश में उनके प्रवचनों को देखें। मिथ्याधारण बनाकर न चलें।..... वे एक महापुरुष हैं, अपना सर्वस्व पूर्वरूप त्यागकर धर्म रत्न की खोज में चले हैं। उनके साथ धर्म वात्सलयता का बर्ताव करना आवश्यक है, तभी दि० जैन धर्म की प्रभावना होगी।[6]

सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री बनारस—गुरुदेव के

---

6. कानजीस्वामी अभि० ग्रन्थ (हि०वि०) पृष्ठ 8

सम्बन्ध में अपने हार्दिक उद्‌गार इस प्रकार प्रगट किए हैं—

''इसमें सन्देह नहीं कि श्री कानजीस्वामी का व्यक्तित्व बड़ा प्रभावक है और वक्तत्व शैली अनुपम है, उनके प्रभाव से सोनगढ़ के जैनेतर अधिवासी भी अध्यात्म चर्चा के प्रेमी बन गये हैं। उक्त कथन के अतिरिक्त मण्डन मिश्र की निम्न किवदन्तियाँ प्रस्तुत करते हुए सोनगढ़ व स्वामीजी के प्रति श्रद्धा व्यक्त की हैं—''मण्डन मिश्र एक बहुत बड़े विद्वान थे, जब शंकराचार्य शास्त्रार्थ के लिए उनके ग्राम में पहुँचे तो उन्होंने ग्राम के बाहर कुँआ पर पानी भरनेवाली स्त्री से मण्डन मिश्र का घर पूछा, उस स्त्री ने उत्तर दिया—

स्वत: प्रमाणम् परत: प्रमाणं, कीरांगना पत्र गिरी गिरन्ति।
द्वारेपि नीडान्त: सन्निरूद्धा, आवेहि तन्मंडन मिश्र धाम: ॥

अर्थात् जिसके द्वार पर पिंजरों में बन्द मैंनायें प्रमाण स्वत: होता है या परत: होता है।'' इस प्रकार की चर्चा करती हों उसे ही मण्डल मिश्र का घर समझना। सोनगढ़ के विषय में भी यही समझना चाहिए कि जहाँ के वायु मण्डल में अध्यात्म प्रवाहित हो, वही कानजी का स्थान सोनगढ़ है।[7]

ब्र० राजारामजी जैन गुरुदेव की 75वीं जन्म जयन्ती के अवसर पर लिखते हैं कि—

''मैं 1008 श्री बाहुबलीजी की दक्षिण यात्रा को महा मस्तकाभिषेक के समय जा रहा था, भोपाल में श्री बाबा छोटेलालजी वर्णी का साथ हो गया। उनके साथ स्वर्णपुरी पहुँचा। वहाँ आध्यात्मक सन्त श्रद्धेय स्वामीजी के प्रवचन सुनकर मन्त्रमुग्ध जैसा हो गया, यात्रा का विकल्प टूट गया, करीब 4 माह लगातार वचनामृत का पान

7. जैन जागरण के अग्रदूत (भा० ज्ञानपीठ काशी) पृष्ठ 91)

किया, जीवन में अनुपम रहस्य समझा।

भले ही लोग कहें कि व्यवहार उड़ा दिया, मुनि निन्दक हैं, परन्तु भाई। पक्षपात छोड़कर निर्णय करो व्यवहार कुशलता, सद्प्रवृत्ति जो सोनगढ़ में है, शायद ही अन्यत्र हो। इतना अवश्य है कि व्यवहार धर्म नहीं, क्योंकि धर्म तो आत्मा की परिजाति है, इसलिए बाह्य क्रियाकाण्ड धर्म नहीं हो सकता, ऐसा वे उपदेश करते हैं और अनादि, विपरीत मान्यता को छुड़ाते हैं..... इत्यादि।[8]

भारतवर्षीय विद्वत् परिषद के मन्त्री श्री पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य ने लिखा है—''श्री कानजीस्वामी युगपुरुष हैं, उन्होंने दि० जैन धर्म के प्रभाव का महान् कार्य किया हैं। उनके इस जीवन निर्माण में समयसार का अद्भुत प्रभाव है। इसमें निबद्ध कुन्दकुन्दस्वामी की विपुल अध्यात्म देशना ने अगणित प्राणियों का उपकार किया है। उसने पहले महाकवि श्री बनारसीदासजी को दिगम्बर धर्म में दीक्षित किया फिर शतावधानी राजचन्द्र को दि० जैन धर्म का श्रद्धालु बनाया। और अब श्री कानजीस्वामी को दिगम्बर धर्म का दृढ़ श्रद्धानी बनाया है। न केवल कानजीस्वामी को, किन्तु उनके साथ 20 हजार व्यक्तियों को भी इस धर्म में दीक्षित कराया है। समयसार से प्रभावित होकर श्री कानजीस्वामी ने शुद्ध वस्तुस्वरूप को समझा, वर्षों इसका एकान्त में मनन किया और अन्तरंग की प्रबल प्रेरणा पाकर अपने जन्मजात धर्म का परिधान छोड़ दिया। अब वे बड़े गौरव के साथ कहते हैं कि—

''संसार सागर से पार करनेवाला यदि कोई धर्म हैं तो दिगम्बर जैन धर्म ही है। उनके इस कार्य से सौराष्ट्र प्रान्त ही जागृत हुआ हो सो बात नहीं, भारतवर्ष के समस्त प्रदेश जागृत हुए हैं और

---

8. सन्मति सन्देश, अंक 5, वर्ष 7

स्वाध्याय के प्रति निष्ठा का भाव उत्पन्न कर आत्मकल्याण की ओर लग रहे हैं।[9]

श्री पं०फूलचन्द्रजी सिद्धान्त शास्त्री वारणसी के शब्दों में—

''कोई कुछ भी क्यों न कहे, मैं तो कहता हूँ कि वर्तमान में श्री कानजीस्वामी का उदय दिगम्बर परम्परा के लिए अभ्युदय रूप है। जिसके जीवन में दिगम्बर परम्परा का माहात्म्य समाया हुआ है, वह श्री कानजीस्वामी और समग्र सौराष्ट्र को आदर की दृष्टि से देखे बिना नहीं रह सकता।[10]

उनके अनन्त उपकार स्वीकृत करते हुए श्री कान्तीलाल शाह बम्बई ने स्वामीजी के प्रति जो श्रद्धा एवं कृतज्ञता ज्ञापन की वह उन्हीं के शब्दों में निम्न है—

''आपने समाज का बड़ा उपकार किया है, वस्तु तत्त्व का विवेचन यथार्थरूप में आप से ही मिलता है, आप स्वयं भी भेदविज्ञान के साक्षात् अवतार हैं। एक बार जो आपका प्रवचन सुन लेता है, वह उनका ही हो जाता है। हमारे तो वे धर्मपिता हैं। उनके अनन्त उपकार का समाज व मैं अत्यन्त ऋणी हूँ। उनकी अमृत वाणी सुनकर एवं परोक्ष में उनके प्रवचन पढ़कर अगणित जीवों ने अपना आत्मकल्याण किया है। आपने ही जैन तत्त्व को समझने की सच्ची दृष्टि दी है। जैन धर्म की आत्मा वस्तु की स्वतन्त्रता, व्यवहार, निश्चय, निमित्त, उपादान और क्रमनियत आदि का आपने समाज के सामने इतना सुन्दर निष्कर्ष निकालकर रखा है कि जनसाधारण दृष्टि भी बदल गई। उनके उपकार का बदला दे सकना असम्भव है मेरी मंगल कामना है कि पूज्य श्री के बताये हुए जैन शासन की विश्व भर में

9. सन्मति सन्देश, अंक 5, वर्ष 7
10. खानियातत्त्व चर्चा, पृष्ठ 19

जय-जयकार हो और गुरुदेव दीर्घ काल तक हमारा मार्ग प्रदर्शित करते रहें।[11]

अन्त में उपसंहार के रूप में दि० जैन विद्वानों की एक मात्र प्रतिनिधि संस्था श्री भारतीवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद के अभिप्राय को रखना चाहूँगा उसका तृतीय अधिवेशन सं० 2003 में सोनगढ़ में हुआ, जिसमें 32 विद्वान बन्धुओं ने और दूसरे हजारों लोगों ने भाग लिया। पूज्य गुरुदेव का परिचय करने का मुख्य उद्देश्य से ही परिषद के अधिवेशन के लिए सोनगढ़ की पसन्दगी की गई थी। इस बारे में विद्वत्परीषद के अध्यक्ष श्री पं० कैलाशचन्द्रजी सिद्धान्ताचार्य ने अपने प्रवचनों में कहा था कि—''यहाँ पर परिषद का अधिवेशन करने से हम सबको महाराज श्री के पास से अध्यात्म का बहुत लाभ मिला है। परिषद अपना अधिवेशन का कार्य तो किसी भी स्थान पर कर सकती थी किन्तु महाराजजी के आध्यात्मिक उपदेश का लाभ लेने के मुख्य हेतु से इस स्थान को प्रमुखता दी गई है।..... महाराज के पास से हम सबको नई दृष्टि मिली है। हम भगवान से प्रार्थना करते हैं कि हम फिर इधर आवें और महाराजश्रीजी का उपदेश सुनकर अपना आत्मकल्याण करें।

विद्वत्परिषद के सभी बन्धु पू० स्वामीजी के साक्षात परिचय से प्रसन्न हुए थे और पूज्य गुरुदेव को अभिनन्दन देते हुए परिषद ने एक प्रस्ताव भी पास किया था, जो निम्न प्रकार है—

''आत्मार्थी श्री कानजी महाराज द्वारा जो दि० जैन धर्म का संरक्षण और सम्वर्द्धन हो रहा है, विद्वत परिषद उसक श्रद्धापूर्वक अभिनन्दन करती है तथा अपने स्वराष्ट्री साधर्मी बहिनों-भाइयों के सद्धर्म प्रेम से प्रमुदित होती हुई उनका हृदय से स्वागत करती है। वह इसे परम

11. सन्मति सन्देश, अंक 5, वर्ष 7, पृष्ठ 52

सौभाग्य और गौरव का विषय मानती है कि आज दो हजार वर्ष बाद भी महाराज ने श्री 1008 वीर प्रभु के शासन के मूर्तिमान प्रतिनिधि भगवान कुन्दकुन्द की वाणी को समझकर अपने को ही नहीं पहिचाना है, अपितु हजारों और लाखों मनुष्यों को जीव उद्धार के सत्य मार्ग पर चलने की सुविधाएँ जुटा दी हैं। परिषद का दृढ़ विश्वास है कि महाराज के प्रवचन-चिन्तन तथा मनन द्वारा होनेवाला दिगम्बर जैन धर्म की मान्यताओं का विश्लेषण तथा विवेचन न केवल साधर्मियों की दृष्टि को अन्तर्मुख करेगा अथवा सतत् ज्ञानाराधकों को अप्रत्तता के साक्षात् परिणाम आचरण के प्रति तथैव प्रयत्न बनायेगा अपितु मनुष्य मात्र को अन्तर तथा बाह्य पराधीनता से छुड़ानेवाले रत्नमय की प्राप्ति करानेवाले वातावरण को सहज ही उत्पन्न कर देगा। अतएव इस अवसर पर अभिनन्दन और स्वागत के साथ-साथ परिषद यह भी घोषित करती है कि चूंकि आपका कर्त्तव्य हमारा है, इस प्रवृत्ति में हम आपके साथ हैं। (प्रस्तावक—प्रो० खुशालचन्द्र जैन, एम.ए. और पं० महेन्द्रकुमारजी, समर्थक—पं० परमेष्ठीदासजी, पं० राजेन्द्रकुमारजी।)

इन अतिरिक्त श्री कानजीस्वामी ने दक्षिण और उत्तर भारत की तीर्थयात्रा करते हुए जिस नगर में भी पदार्पण किया, वहाँ की धर्म प्राण समाज ने गुरुदेव का भावभीना स्वागत श्रद्धा-भक्ति व प्रेम वश अपूर्व सम्मान किया था। सैकड़ों स्थानों से आपको कई सौ अभिनन्दन पत्र भी समर्पित किए गए थे, जिनमें स्वामीजी के गुणों एवं सम्यग्ज्ञान प्रचार की महत्ता प्रदर्शित की गई है। उनमें से कुछ प्रमुख नाम निम्न हैं—

1. दि० जैन परिषद, दिल्ली
2. वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली
3. जैन समाज, कलकत्ता

4. दि. जैन समाज, मद्रास
5. दि. जैन समाज, जयपुर
6. दि. जैन पंचायत, सहारनपुर
7. दि. जैन समाज, कोटा
8. दि. जैन समाज, जबलपुर
9. दि. जैन समाज, ग्वालियर
10. दि. जैन समाज, बम्बई
11. सकल दि. जैन समाज, आगरा
12. दि. जैन समाज, सागर
13. गणेश दि. जैन संस्कृत विद्यालय, सागर
14. दि. जैन समाज, दमोह आदि।

ऐसे पूज्य श्री स्वामीजी ने क्रमबद्धपर्याय की झंकार कर हम जैसे अनादि काल से सुसुप्त अनेक प्राणियों को जागृत किया है, अत: हमारे ऊपर उनके अनन्त-अनन्त उपकार हैं, जिन्हें जीवन में भुलाया नहीं जा सकता। अन्त में पूज्य गुरुदेव के प्रति मेरी विनम्र श्रद्धा समर्पित है।

एक क्षण भी जी, मगर स्वभाव सन्मुख जी।
तू स्वयं भगवान है, भगवान बनकर जी॥

कुन्दकुन्द आचार्यनु, गुरुवर भाखे ज्ञान।
सीमंधर प्रभुये कहयु, धरे गुरुवर ध्यान॥
सर्व सृष्टि ने तारवा, सीमंधर अवतार।
कुन्दकुन्द आचार्यपण, करुणाकरी अपार॥
रोहेल वाड़नी धन्य धर, धन्य उमराला गांव।
वैश्य कुलने धन्य छैं, ज्यां जन्म्या गुरु कहान॥
धन्य-धन्य आ धरती ने, धन्य सोनगढ़ ग्राम।
ज्यां गुरु सदा विराजिता, नहिं कोऊ तेहि समान॥

-सौभाग्यमल जैन, भोपाल

स्वामीजी सन् 1973 में तीसरी बार दिल्ली पधारे, यह चित्र उसी अवसर का है।
चित्र में दृष्टिगोचर हैं—साहू शान्तिप्रसाद जैन जी, लाला प्रेमचन्दजी,
लाला भगतरामजी जैन आदि।

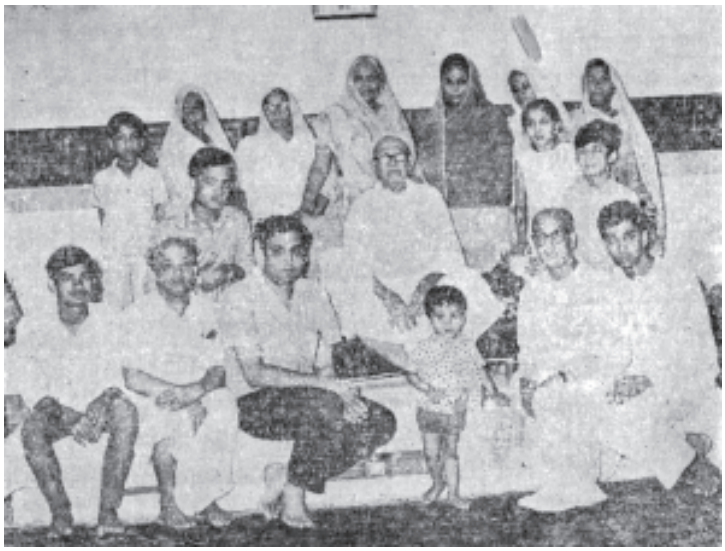

जयपुर के सुप्रसिद्ध श्रीमन्त सेठ आध्यात्मिक-रसिक श्री पूरणचन्दजी गोदिका
के परिवार के साथ गुरुदेव।

स्वामीजी से आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा करते हुए सिद्धान्ताचार्य पण्डित कैलाशचन्दजी शास्त्री, श्री प्रेमचन्दजी, श्री नेमचन्दजी हेटवाले, अध्यक्ष दिल्ली दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल एवं साहू शान्तिप्रसादजी जैन।

सन् 1957 में कानजीस्वामी के दिल्ली आगमन का दृश्य। दृश्यवय हैं—स्व० श्री तनसुखरायजी, श्री नेमीचन्द पाटनी आगरा, लाला भगतरामजी आदि।

श्री कानजीस्वामी
एक अद्‌भुत व्यक्तित्व

-विमलभाई

कानजीस्वामी, एक जीती जागती जीवन जोत, आत्म अभ्युदय की साकार मूर्ति। सारे सौराष्ट्र में जिनकी आत्मक्रान्ति की धूम है, पर शेष भारत जिनके प्रकाश से वंचित नहीं।

सुन्दर सलौना शरीर, दैदीप्यमान आभा, सुखद भाव मण्डल, वाणी में ओज जो भी सरल हृदय से सन्मुख हुआ, उस ही की ग्रंथि खुली, ऐसा शायद ही कोई हो कि जिसने सरलता से सुना तो हो पर उसे शान्ति न मिली हो।

ऐसा भी आज तक नहीं हुआ, कि किसी की बातों को सभी ने सरलता से मान लिया हो, कुछ विरोधी भी सभी के होते ही हैं, इनके भी हैं। पर उनके लिए स्वामीजी के हृदय में बड़े सुन्दर विचार है। ये श्रद्धालु श्रावकों से कहा करते हैं। ''तुम्हें विरोधियों से घृणा या क्रोध न करना चाहिए, इनमें भी तुम्हारी ही तरह भगवान बसते हैं। इनमें थोड़ी ना समझी है, जब समझ जायेंगे तो स्वयं ही सही रास्ते पर आ जायेंगे। साथ ही तुम्हें भी अपनी समझ के लिए अहंकार न करना चाहिए, बस सहजरूप में अपनी दृष्टि अप्राप्त की ओर रख, आगे बढ़ते जाना चाहिए।''

एक बार एक त्यागी ब्रह्मचारी इनका पक्ष लेकर किसी विरोधी भाई से सवाल जवाब और मुकदमेबाजी की ऊहापोह में पड़ गये, इनके समाने बात आई तो ये बोले—भाई समय का समागम तो बहुत थोड़ा है, न जाने कब आयु समाप्त हो जाए, इस मूल्यवान समय को यूं हल्की बातों में उलझकर नष्ट न करो, बन सके तो प्राप्त समय को अपने आत्मकल्याण में प्रयोजित कर लो।

ये सर्व साधारण को बहुत ही सरल भाषा में समझाया करते हैं,

इनका कहना है सबसे पहले तुम यह मानो, कि 'तुम हो' तुम्हारा स्वतन्त्र अस्तित्व है, ये कैसे हो सकता है, कि जो वस्तुयें दिखती है, वो तो है और जो उन्हें देखनेवाला है वो नहीं, इसलिए आकाश, समय, और पुद्गल (दिखनेवाली जड़ वस्तुयें) की तरह ही तुम्हारी भी स्वतन्त्र सत्ता है।

अब जिन्होंने अपनी सत्ता स्वीकार कर ली, उनसे यह कहते हैं, तुम्हारे में जो विकार चलते दिखते हैं, उसके दोषी तुम स्वयं ही हो, क्योंकि अगर तुम दोष का कारण औरों को मानोगे तो तुम उन्हीं में फेरफार करने का प्रयत्न करते रहोगे, और जब सब दोषों के जिम्मेदार अपने को ही मान लोगे, तो अपने को ही ठीक करने के प्रयत्न में लग जाओगे।

इसलिए दोष दूसरे निमित्तों को न हो दोष तुम्हारा और केवल तुम्हारा ही है। इसके माने बिना आगे गति नहीं।

अब ये जिन्होंने माना दोष हमारे ही है, शत प्रतिशत हम ही उनके जिम्मेदार है। उनसे यह कहते है देखो तुम्हारे वास्तविक स्वभाव में दोष नहीं, यदि दोष स्वभाव का हिस्सा होते तो उसमें से वो निकल नहीं सकते थे, यदि तुम अपने निज के वास्तविक स्वभाव की ओर दृष्टि दोगे तो यह शनै शनै स्वत: निकलते जायेंगे। और तब शुद्ध सोने के समान निखर आयेगी तुम्हारी निर्मल आत्मा।

जिस तरह सोने को तपाने से उसका मैल निकल जाता है, उस ही तरह दर्शन, ज्ञान और चरित्र रूप धर्म अंगीकार करने से आत्मा निखरती है।

इन महापुरुष का जन्म दिन सम्वत 1946 में वैसाख सुदी दूज के दिन सौराष्ट्र के उमराला गांव में, शाह मोतीचन्द के घर माता उजमबा की कूख से हुआ था।

इनके उपदेश सभी जातियों और प्रदेशों के लोगों के लिए समान है, यही कारण है, इनके आश्रय में आये लोगों में सभी जातियों और प्रदेशों के लोग सम्मिलित हैं, उनमें भाषा भेद का कोई झगड़ा नहीं, सभी प्रेम की डोर में बँधे समानता से धर्म साधन करते हैं।

वर्तमान युग के महान सन्त श्री कानजीस्वामी

—श्रीराम जैन, दिल्ली

मुझे याद है अपने जीवन का वह सुनहरी सुखद दिन जबकि मुझे एक मुमुक्षु भाई द्वारा गुजरात के महान आध्यात्मिक सन्त पूज्य श्री कानजीस्वामीजी के सम्बन्ध में उनकी कही हुई वाणी का सार सुनने को मिला और पुण्ययोग से कुछ ही दिन पश्चात् उनके दर्शन तथा सत्यकथित मर्मस्पर्शी, भेदज्ञानमयी सर्वज्ञ की वाणी सुनने और समझने का अवसर मिला गया।

आत्मा समझ स्वरूप है, आत्मा स्वयंसिद्ध प्रत्यक्ष अनुभवगोचर है, स्वभाव से परिपूर्ण है तथा ज्ञाता द्रव्य में कुछ करने की तो बात दूर रही, यह तो अपनी पर्याय में भी कोई फेरफार नहीं कर सकती। ऐसी दृष्टि पाकर कौन निहाल नहीं हो जावेगा? समझकर तो निहाल होगा ही होगा। पूज्य स्वामीजी ने अनेक भव्य जीवों को ऐसी दृष्टि दी और आज भारत में अनेक जीव आपके द्वारा निरूपित मोक्षमार्ग को समझकर अपने कल्याण में लगे हुए हैं। यह बात अब विद्वानों तथा जैन समाज के हृदय में अंकित हो चुकी है और जैन समाज चिरकाल तक उनके इस उपकार को भुला नहीं सकेगा। मैं पूज्य गुरुदेव के चरणों में हार्दिक अभिनन्दन अर्पित करता हूँ।

हे! स्वर्णपुरी के सरल सन्त

– मांगीलाल अग्रवाल 'अगर', एम.ए, बी.एड.

सोनगढ़ के सरल सन्त ने,
आगम मर्म बताय दिया॥
हिमालय सा प्रबल अडिग ये,
सौराष्ट्र सन्त यूं धवल खड़ा,
ज्ञान गंग प्रवाही समय भक्त ने
सम्यक् मार्ग जतलाय दिया॥1॥

ये आतम बात बड़ी आमलोक,
ये सम्यक् सार्थक दर्शन है,
ये अनादि अविरोधागम है,
भव्यों को भव बता दिया॥2॥

पंथवाद और क्रिया काण्ड का,
भंडाफोड़ करवाय दिया,
व्यवहार धर्म उपचार बता,
धर्म स्वरूप समझाय दिया॥3॥

पर लक्ष्मी मिथ्या श्रावक को,
निज वैभव गुण प्रकटाने को,
अणुव्रत, महाव्रतधारी को,
अनुभव पाठ पढ़ाय दिया॥4॥

तेजमयी स्वप्रकाश ज्योति से,
ये भारत क्षेत्र चमकाय दिया,
सोनगढ़ की स्वर्णपुरी को,
प्रसिद्ध तीर्थ बनवाय दिया॥5॥

जन-जन को शिक्षित करने का,
शिविरों का साज सजाय दिया,

काम छोड़ विरागी बनकर,
वीतराग विज्ञान सिखाय दिया ॥6॥

शत-शत वन्दन स्वामी जी को,
आत्मज्ञ, मर्मज्ञ, विरागी जी को,
धवल धाम सन्मार्गी जी को,
'अगर' ममस्वरूप लखाय दिया ॥7॥

जैन धर्म का केन्द्र आत्मा है। इसलिए यह धर्म अध्यात्म प्रधान है। विचार के लिए निश्चयनय है और कार्य के लिए व्यवहारनय है। विचार ठीक होने पर व्यवहार भी होगा। दोनों का होना जरूरी है, पर विचार व्यवहार को दिया देता है।

कुछ काल के प्रभाव से, कुछ परिस्थितियों के कारण कुछ सांसारिक उपलब्धियों के लालचवश ऐसा होता है कि व्यवहारिक पक्ष निश्चय से दूर हो जाता है और व्यवहार ऐसा होने लगता है कि उसमें कमजोरियाँ ही झलकती हैं और उसकी दृढ़ता दिखाई नहीं देती। ऐसे समय में अनिवार्य हो जाता है कि कोई क्रान्ति आए और व्यवहार पक्ष निश्चय से दूर न होकर उसके अनुसार साथ-साथ चले। यह तभी मुमकिन है जब भूला हुआ या आँखों से ओझल किया हुआ निश्चय पक्ष अपने आसन पर फिर जमे।

जैन धर्म के इतिहास में समय-समय पर ऐसा होता रहा है। बहुत दिनों से कानजी महाराज का नाम सुना था। पर उनका, साहित्य देखने का और उनके व्याख्यान सुनने का मौका कुछ समय से ही मिला। ऐसा लगा कि जैन धर्म का निश्चय पक्ष जो शायद कुछ पीछे हट गया था और व्यवहार की बागडोर नहीं पकड़ रहा था, जाग्रत हो रहा है। इससे यह विश्वास पैदा होता है कि शुद्ध जैन धर्म फिर से मार्ग दिखाएगा और व्यवहार को रास्ता दिखाकर आलोक पैदा कर सकेगा। कानजी महाराज की इस ओर साधना सफल हो रही है और जैन धर्म के शुद्ध रूप का ज्ञान बढ़ता जा रहा है।

कानजी महाराज के चरणों में शत-शत वन्दन!

-शिवनाथ मित्तल, नई दिल्ली

शान्त मूर्ति

नन्दलाल सरवगी , कलकत्ता
अध्यक्ष, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ

पूज्य आध्यात्मिक सन्त श्री कानजीस्वामी को मैं 25 वर्षों से जानता हूँ। इनके विषय में पहले मैं अपने कतिपय पंडितों तथा त्यागियों से इनके विषय में अनर्गल सुना करता था, कितने तरह की मिथ्या बातों का प्रचार इनके विषय में किया जाता था। एक बार मैं सोनगढ़ गया। वहाँ पर मैंने आपके प्रति लोगों में अत्यन्त श्रद्धा एवं भक्ति देखी। आपके प्रवचनों में नित्य ही हजारों की संख्या में लोग धर्म श्रवण करते थे। मुझे यह एक सबसे बड़ी विशेषता लगी कि जब आपका प्रवचन प्रारम्भ होता था, तब एक घण्टे तक सभी लोग अत्यन्त शान्त व गम्भीर रूप से बैठते थे, कोई भी व्यक्ति फुसफुसाहट भी नहीं करता था।

द्वितीय बार जब आप ससंघ तीर्थ यात्रा को निकले थे, तब तुझे आपके दर्शनों का लाभ प्राप्त हुआ। मैं राजगृही से कलकत्ता तथा लगभग एक माह तक साथ रहा। और आपके आहार-विहार, धर्म साधन के बारे में जो हमारे पंडित तथा त्यागी कहा करते थे, को सावधानीपूर्वक देखा। मुझे लगा कि हमारे पंडित व त्यागी वर्ग ने जो कहा, वह मिथ्या था। आपके खान-पान के विषय में जो भ्रान्ति समाज में फैली हुई है, क्रिया उससे बिल्कुल विपरीत थी। मैंने आपका आहार अत्यन्त अल्प एवं शुद्ध पाया।

उसी समय आपका विहार राजगृही से गया की ओर वहाँ की समाज के विशेष निमंत्रण पर हुआ। आपका वहाँ पर हार्दिक स्वागत किया गया।

आप जब राजगृही में थे, तब एक गुजराती वृद्ध भाई ने आकर

प्रणाम कर कहा—'तीर्थंकर महाराज की जय।' तब स्वामीजी ने कहा—'नहीं रे भाई, अब आँख खुल गई है, हम तो अव्रती ब्रह्मचारी हैं। आपके विषय में पूज्य स्व० पंडित बंशीधरजी इन्दौर वालों से अक्सर पूछा करता था, तब उन्होंने मुझे कहा कि पूर्व जन्म के संस्कार हैं, इसलिए इनके प्रवचन तथा अर्थ निर्दोष होते हैं। पूज्यवर्णीजी का भी आपसे बहुत स्नेह था, वे आपसे प्रभावित भी थे।

मुझे एक बात इनकी बहुत ही प्रभावित करती है, वह यह कि जो गुण एक जैन सन्त में होने चाहिए, वे सब आपमें पूर्णरूप से विद्यमान हैं। दो-तीन जैन पत्रों में आपके प्रति अनर्गल मिथ्या प्रचार हो रहा है लेकिन आपने न तो किसी का प्रत्युत्तर ही दिया और न विरोध ही किया। पहले जब आप एक बार कलकत्ता आए तो प्रवचन के समय कुछ भाईयों ने आपसे उल्टे प्रश्न करने शुरु कर दिए। जब उनके उत्तर ठीक मिल गए तो वे असभ्य व्यवहार करने लगे। तब आपके कुछ समर्थक खड़े हो गये और वे विरोधी भाईयों को दण्ड देना चाहते थे, तब स्वामीजी ने कहा कि इन भले लोगों से झगड़ा मत करो। जो कुछ कहा है, मुझे कहा है। मैंने इनके शब्दों को ग्रहण नहीं किया है। आप लोग शान्त रहें। यह एक सच्चे सन्त का उदाहरण है।

मैं तो गुणों से सदैव ही प्रभावित था तथा जब कभी भी आपके दर्शनार्थ सोनगढ़ जाता हूँ, बहुत सन्तोष होता है। आपके चेहरे पर असली ब्रह्मचर्य का तेज विद्यमान है, जो कि जैन त्यागी के होना ही चाहिए। आपकी वाणी बहुत ही ओजस्वी है।

मैं भगवान जिनेन्द्रदेव से आपके दीर्घ मंगलमय जीवन की कामना करता हूँ।

आत्म धर्म मर्मज्ञ

पद्मचन्द जैन सर्राफ
अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश दिगम्बर जैन
मुमुक्षु मण्डल

भाव के अभाव का सिंहनाद करनेवाले सन्त इस समय दिखनेवाले विश्व में एकमात्र पूज्य श्री गुरुदेव कानजीस्वामी ही हैं। हम जैसे पामर प्राणियों पर उनका महान्-महान् उपकार है कि दिगम्बर सम्प्रदाय में जन्म लेकर भी हम दिगम्बर की बात न समझ सके। पूज्य श्री के उपदेश से ही सच्चा स्वाधीन मार्ग समझ में आया।

जीवन के प्रारम्भ से ही पूज्य श्री स्वामीजी सत्य की खोज में थे। मुझे अपने आत्म स्वरूप की प्राप्ति कैसे हो, इसके लिए उन्होंने स्थानकवासी सम्प्रदाय में साधु पद स्वीकार किया। स्थानकवासी सम्प्रदाय के सब शास्त्रों का अध्ययन किया परन्तु स्वामीजी जो चाहते थे, उसकी प्राप्ति वहाँ न हुई। स्वभाव से उनकी कोरे क्रियाकाण्ड में रुचि नहीं थी। वे बराबर अनुभव करते थे कि बिना अध्यात्म को समझे आत्मा का उद्धार नहीं, उन्होंने ज्ञान यज्ञ का प्रारम्भ तो किया पर उसमें तृप्ति न मिली स्वाध्याय के साथ भूख बढ़ने लगी। जो मैं चाहता हूँ वह कहाँ मिले, यही प्रश्न उन्हें बराबर होने लगा।

प्रकृति का नियम है कि यदि किसी गुरुतर कार्य के लिए दृढ़ प्रयत्न किया जाय तो उसकी अवश्य प्राप्ति होती है। हुआ भी ऐसा ही। पूर्व भव का संस्कार ही समझिये लम्बी प्रतीक्षा के बाद भगवान श्री कुन्दकुन्द प्रणीत श्री समयसार श्रुत उनके हाथ लगा और उसका स्वाध्याय प्रारम्भ किया। उन्होंने पढ़ा—हे आत्मन् अनादि से तूने संसार सम्बन्धी काम, भोग सामग्री प्राप्त की एक बार नहीं, अनन्त-अनन्त बार प्राप्त की। यदि प्राप्त नहीं किया तो एकमात्र पर से भिन्न अपने आत्म स्वरूप को प्राप्त नहीं किया। उन्होंने भीतर से अनुभव किया कि यह कोई अलभ्य वस्तु है। यदि मेरा कल्याण होगा भव

बन्धन का अन्त होगा तो इसी से होगा। इतने समझते ही उनके आनन्द का पारावार न रहा। वे सब भूल गये, खाना भूले, पीना भूले, सम्प्रदाय का नशा उतरने लगा।

अन्य सबको भूलकर वे इस महान श्रुत के अभ्यास में एकचित्त होकर लग गये। भक्त आकर कहते स्वामिन्! जनता चातक के समान आपश्री के उपदेशामृतपान करने के लिए लालायित हो रही है। विशेष आग्रह होने पर कहते—'भाई मेरा चित्त स्वाध्याय में है, उन्होंने श्री समयसार परमागम के मिलने पर उसका स्वाध्याय ही अपना परम प्रधान कर्त्तव्य बनाया और उसके तलस्पर्शी अनुभव मनन द्वारा बन सका उतना रसपान किया और भक्तजनों को उसका रसपान कराया। आज भी पूज्य गुरुदेव की यह स्थिति है, ज्यों ही वे एकान्त पाते हैं श्री समयसार परमागम के रसामृतपान द्वारा साक्षात् समयसार बन जाते हैं।' यह है उनकी अन्तर आत्म परिणति का सच्चा जीवन परिचय। वे दिगम्बर परम्परा के सच्चे अनुयायी हो गये और उनकी वाणी भी उनके अनुरूप निकलने लगी। अध्यात्म, अध्यात्म, अध्यात्म एकमात्र यही उनके प्रवचनों का विषय बन गया। उनके जीवन में जो उथल-पुथल हुई, उनकी वाणी को सुनकर वह उथल-पुथल बाहर भी होने लगी। परन्तु वे घबराये ही नहीं परिणाम यह हुआ कि अन्त में उनकी अध्यात्म वाणी का सबने लोहा मान लिया, उसके फलस्वरूप यह दिखाई दिया कि हजारों-लाखों व्यक्ति सम्प्रदाय के मोह से मुक्त होकर आत्मपन्थी (दिगम्बर) बन गये। यह है पूज्य गुरुदेव कानजीस्वामी का और उनकी वाणी का चमत्कार। एक बार भी जिसे उस वाणी का लाभ मिलता है, उसके हृदय कपाट खुल जाते हैं।

धन्य हैं वे महात्मन्, धन्य है उनकी वाणी और धन्य है उनका आत्मधर्म स्वीकार। मेरी यही अन्तर अभिलाषा है कि आपश्री का अपूर्व प्रभावनायोग चिर काल तक समस्त विश्व को उपलब्ध होता रहे। हे युग निर्माता महात्मन् आपश्री के चरणों में मेरा शत-शत वन्दन है।

ग्रंथराज समयसार
और
श्री कानजीस्वामी

ब्र. हेमचन्द्र जैन 'हेम'

नमः समयसाराय, स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय, सर्वभावान्तरच्छिदे॥

द्वितीय श्रुतस्कन्ध परम्परा में कुन्दकुन्द भारती का सर्वोत्कृष्ट परमागम 'समयसार' है। 'पर' से एवं 'पर्याय' से भी भिन्न, स्वसहाय, निर्विकल्प स्वरूप निज-शुद्धात्मतत्त्व को दर्शानेवाला तथा व्यवहार से विमूढ़ जगज्जनों को भेद विज्ञान एवं वीतराग दशा होने में कारणभूत एकमात्र सह परमाध्यात्म शास्त्र 'समयसार' है। इसलिए 'मंगल भगवान वीरो....' इस श्लोक में वीर प्रभु एवं गौतमस्वामी के तत्काल बाद इस परमाध्यात्म शास्त्र के रचयिता कलिकालसर्वज्ञोपमा प्राप्त आचार्य कुन्दकुन्ददेव का नाम स्मरण किया हैं। अस्तु कालदोष से जीवों की बुद्धि मन्द होती देख एवं निज उपयोग की शुद्धता के वर्धनार्थ क्रमशः आचार्य अमृतचन्द्रसूरि और आचार्य जयसेनस्वामी द्वारा संस्कृत में 'आत्मख्याति' एवं 'तात्पर्यवृत्ति' टीका में लिखा जाने के बाद आज से करीब 500 वर्ष पूर्व पाण्डे राजमल जिनधर्मी सद्गृहस्थ महाकवि ने संस्कृत टीका में उद्धृत श्लोकों के ऊपर 'खण्डान्वय टीका' गद्य भाषा में लिखी जिसका आधार लेकर महाकवि सद्गृहस्थ पं. बनारसीदासजी ने 'नाटक समयसार' नामक पद्यानुवाद प्रस्तुत कर समयसार के सार को जीवित रखा। पं. बनारसीदासजी के करीब 300 वर्ष बाद अर्थात् आज से 200 वर्ष पूर्व जयपुर में आगम एवं अध्यात्म के ज्ञाता एवं अधिवक्ता दो महासमर्थ विद्वान एक ही काल

में हुए। प्रथम का नाम आ० क० पंडितप्रवर श्री टोडरमलजी है और द्वितीय का नाम पं. श्री जयचन्द्रजी छाबड़ा हैं। इनमें से प्रथम विद्वान श्री टोडरमलजी ने ब्र. रायमलजी की प्रेरणा एवं सहयोग से गोमट्टसारादि अनेक आगम ग्रंथों की भाषा टीकायें रची और आगम-अध्यात्म के पठनोपरान्त भी रह जानेवाली शंकाओं के समाधानार्थ एक मौलिक चिन्तन से युक्त सुबोध भाषा ग्रंथराज 'श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक, लिखा जो कि सामाजिक विद्वेषों का शिकार बन जाने से एवं पंडितप्रवर की आयु क्षीणता के कारण अपूर्ण-अधूरा ही रह गया। तथापि आत्मार्थीजनों को आज भी मोक्षमार्ग प्रकाशित कर रहा है और करता रहेगा। द्वितीय विद्वान् पं. जयचन्द्रजी छाबड़ा ने 'समयसार' अष्टपाहुड़ एवं देवागम आदि अनेक आध्यात्म व न्याय शास्त्रों की भाषा टीकायें रचकर महान् श्रुतसेवा का लाभ उठाया। जिस प्रकार ग्रन्थराज समयसार को प्राप्त कर शतावधानी श्रीमद् राजचन्द्र एवं श्री गणेशप्रसादजी वर्णी निर्ग्रंथ मार्ग के उपासक बने, ठीक उसी तरह आज हमारे बीच 86 वर्ष की देहावस्था में विराजमान परमकृपालु सत्पुरुष आत्मज्ञ सन्त श्री कानजीस्वामी भी उन्हीं परम दिगम्बर श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के समयसार को प्राप्त कर स्वयं एवं अन्य अनेक भव्य जीवों को सच्चे निर्ग्रंथ वीतराग धर्म का दृढ़ उपासक बना रहे हैं। सोनगढ़—जहाँ पूज्य स्वामीजी विराजते हैं, आज इस भारत वसुन्धरा पर एक 'लघु सर्वार्थसिद्धि' की उपमा धारण करता हुआ स्वर्णपुरी अथवा मोक्षपुरी अथवा परमागमपुरी बना है कि जहाँ निरन्तर अध्यात्मरसिक जीवों का तांता लगा रहता है और अपनी-अपनी अध्यात्म पिपासा शान्त कर स्थायी निराकुल सच्चे मोक्ष सुख की प्राप्ति हेतु उद्यमवन्त हैं। अहो! परमागम जिनवाणी एवं श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य परम्परानुगत मूल दिगम्बर शुद्धाम्नाय के पोषक एवं संरक्षक सोनगढ़ के सन्त तुम्हें बारम्बार प्रणाम। ●

आत्म-विश्वास

- फूलन्द पुष्पेन्दु, खुर्इ

मैं डंके की चोट कहूंगा निश्चय पूर्वक
समय सार की दिव्य ध्वनि को-
अगर झेलने वाला कोई
महापुरुष इस भारत में विद्यमान है
तो बस केवल एक व्यक्ति है,
बाकी तो सब तथाकथित है।
महावीर का गौतम गणधर
क्या हर कोई हो सकता है?
अरे! विकट पुरुषार्थ चाहिये।

●

सीमंधर तो विद्यमान है इस दुनिया में
उनके गुण पर्याय द्रव्य को
सम्यक्दृष्ट्या देख रहे जो
वे अपने को देख रहे हैं निश्चयपूर्वक;
मोह पलायन हुआ इसी से-
अर्हद्भक्त हैं, परम दार्शनिक केवल वे ही
शेष दार्शनिक तथाकथित हैं।
''जो जाणदि अरहंत...गाथा
है नजीर सुप्रीम कोर्ट की
कुन्दकुन्द के न्यायालय की।

●

नग्न दिगम्बर कुन्दकुन्द-प्रभु-
अमृतचन्द्राचार्य प्रभु
का गुण गायन जब करते हैं झूम-झूम कर
तब तो हमको ऐसा लगता
जैसे सचमुच स्वयं नग्न हों
आत्म-मगन हों, इसीलिए तो
मुनियों के हैं भक्त आप ही
केवल सच्चे!
बाकी तो सब तथाकथित है—
हे सम्यक्त्व शिरोमणि! तुमको
मेरा बारम्बार नमन है!!

गुरुदेव या गुणदेव : एक विनम्र आदरांजलि

सुरेश सरल, जबलपुर

दातौन के वक्त नीम की तनिक-सी लकड़ी घन्टों के लिए मुँह में कडुवाहट छोड़ जाती है और यदि कडुवाहट सहने का क्रम कुछ दिन तक नियमित रखा जावे तो यह कडुवी लकड़ी दाँतों पर स्थायी चमक ही नहीं छोड़ती वरन् उन्हें भिन्न-भिन्न गरम, ठण्डे, तीखे, चटपटे, खारे पदार्थों से संघर्ष स्वीकारने की शक्ति, क्षमता भी प्रदान करती है। नन्हीं-सी दातौन, बत्तीसों दाँतों को स्वस्थ, सुन्दर और साफ-सुथरे बनाये रहती है।

भारतवर्ष का गौरव है यह कि गुरुदेव भी वर्तमान में जैन-मानस के लाखों-लाख प्राणों (आत्मानों) को अपनी गम्भीर गिरा से योग्य श्रावक बना रहे हैं। अब क्षण भर को ऊपर के शब्दों के भावार्थ देखिये:—श्रावक—दाँत, गुरुदेव—दातौन, पदार्थ—कर्म, संघर्ष

शक्ति—संयम-साधना। दाँत गन्दे हैं, दातौन कडुवी है। समूची समाज की चर्या विवादग्रस्त है, गुरुदेव की चर्या आत्म-ग्रस्त है।

सफाई—ज्ञान—का अमृत घोलनेवाले गुरुदेव यदि गन्दे दाँतों से घिरी जीभ द्वारा कडुवे माने जायें तो माने जाते रहें, वे कडुवाहट, सिद्धान्त-शिखा—से जन-जन का जीवन जो उज्ज्वल कर रहे हैं। इस पर जिसने ध्यान दिया, उसकी कडुवाहट समाप्त हो गई। गुरुदेव अपनी यात्रा-वीथिका पर अकेले हैं या सहयात्रियों से घिरे हैं, उन्हें इसकी खबर है। खबर रहे भी क्यों—''सम्यग्दृष्टि कदाचित् अकेला ही हो तो अकेला भी वह सुशोभित एवं प्रशंसनीय होगा।'' गुरुदेव को श्रावक-समाज से विरोध मिले या समर्थन, उन्हें इसकी भी परवाह नहीं है। उनके अन्तर में प्रज्जवलित चैत्यानन्द की अमर ज्योति का प्रभाव ही कुछ ऐसा है। वे स्वयं में रमे हैं। प्रकृति को आमसात कर रहे हैं और आत्मा को प्रकृतिसात। शायद तभी, उनकी निश्छल मुस्कान उनकी आत्मा की विमलता की आकृति की स्पष्टि देती है।

वह ऐसा प्राण है जो सुख में स्थापित है, एक ऐसा प्राण जिसमें सुख स्थापित है। गुरुदेव का परिचय भी यही है। वे महान दृष्टा हैं। गुण जो घट-घट में प्रतिष्ठित हैं और जिनके दर्शन भी गुरुदेव कर चुके हैं। अत: वे जीव-जीव के गुण स्पष्ट करते चल रहे हैं।

अग्निदेव, वायुदेव कई-कई श्री देवों के नाम प्रचलित होते हैं सृष्टि से। वर्तमान समाज को एक देव और मिले हैं—गुण देव। यही मेरी ओर से गुरुदेव को एक वैशेषणिक-संज्ञा है, मेरी आदरांजलि है।

आध्यात्मिक गगन के चमकते नक्षत्र

पूज्य कानजी स्वामी

पं. श्री 'स्वतन्त्रजी' जैन

इतिहास की साक्षी है कि आज से दो हजार वर्ष पूर्व अर्थात् भगवान महावीर की निर्वाण प्राप्ति के पाँच शताब्दि वर्ष पश्चात् आ. कुन्दकुन्द महाराज हुये। तब आपकी माँ शैशवकाल में ''शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि, निरंजनोऽसि, संसार माया परिवर्जितोऽसि'' की लोरियां गाते हुए पीठ पर हल्की नन्हीं मृदुल एवं मधुरिम थपकियाँ देते हुए बालक कुन्दकुन्द को सुलाती थीं। इन लोरियों का संस्कारित बालक कुन्दकुन्द पर यह प्रभाव पड़ा कि वे आगर्भ दिगम्बर रहे।

विदेह क्षेत्रस्थ भगवान सीमंधर जिनेन्द्र की साक्षात् दिव्यध्वनि श्रवण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और आगे चलकर भगवान महावीर की आध्यात्मिक देशना के प्रतीक बन गये। वे अध्यात्म-गंगा में गंभीर डुबकियाँ लगाकर जिस शीलता की अनुभूति करते थे, वह वचनातीत थी। क्योंकि जड़ शब्दचैतन्य अनुभूति को कहने में सर्वथा असंभव रहे हैं।

विश्व के कल्याणार्थ प्रशस्त अनुराग के कारण ही जब करुणा का भाव आता था, तब आपकी लेखनी की पैनी नोंक ताड़पत्र पर समयसार आदि जैसे परम आध्यात्मिक परमागम ग्रंथों को लिखती थी। और जब स्वानुभूति का रस अन्दर ही अन्दर झरने लगाता था, तब लेखनी अपने आप रुक जाती थी। कुन्दकुन्द की वाणी बनाम भगवान महावीर की वाणी ही मानी गयी हैं। कलिकाल सर्वज्ञ कुन्दकुन्दाचार्य के ग्रंथों में शुद्धात्मा की ही कथनी बहुलता के रूप में है।

महर्षि कुन्दकुन्दाचार्य के एक हाजार वर्ष बाद आचार्य अमृतचन्द्र हुए, इन्होंने कुन्दकुन्द की वाणी का जैसा हार्द समझा वह अपनी जगह महत्वपूर्ण है। यही कारण है कि आपने कुन्दकुन्दाचार्य के परमागम ग्रंथों की विविधनामों की विस्तृत टीकायें की जो आपकी अगाध विद्वता की परिचायक हैं। साथ में यह भी सिद्ध करती हैं कि आप अपने युग के अद्वितीय अध्यात्म के ज्ञाता थे। आचार्य अमृतचन्द्र की वाणी बनाम आचार्य कुन्दकुन्द की वाणी है।

श्रीमदमृतचन्द्राचार्य के 600/650 वर्ष पश्चात् श्री बनारसीदासजी हुये, जो कि गृहस्थ होते हुए भी अध्यात्म के ज्ञाता अध्येता एवं प्रणेता थे। सुप्रसिद्ध रस-कवि होते हुये भी आध्यात्मिक क्रान्ति के जन्मदाता थे जो तेरा पंथ (जिनेन्द्र का पंथ) के नाम से जानी जाती है। क्रान्तिकारक होने के कारण ही आपने भट्टारकवाद को उखाड़ फेंका था । नाटक समयसार की रचना श्रीमदमृतचन्द्राचार्य की आत्मख्याति टीका का एक प्रकार से हिन्दी पद्यानुवाद प्रतीक स्वरूप माना जाता है। बनासीदास की वाणी आचार्य अमृतचन्द्र की वाणी है।

पंडितप्रवर बनारसीदासजी के लगभग 200 वर्ष बाद पं. टोडरमलजी हुये। आप आचार्यकल्प की उपाधि से प्रसद्धि हैं मोक्षमार्ग प्रकाशक आपके द्वारा रचित एक ऐसा ग्रंथ है जो आपके प्रकांड पांडित्य का प्रतीक है। अपने समय के विशिष्ट सिद्धान्तज्ञ, अध्यात्मज्ञ, कर्मवीर एवं धर्मवीर थे आपकी वाणी आचार्य कुन्दकुन्द, आचार्य अमृतचन्द्र, कविवर बनारसीदासजी की प्रतीक है।

इस प्रकार हम देखते हैं आचार्य कुन्दकुन्द से लगाकर आज तक अध्यात्मरूपी गंगा की निर्मल पवित्र धारा बहाने में समय-समय पर हुए अनेक ऋषि महर्षियों ने मानव समाज को प्राण, त्राण दोनों ही प्रदान किये हैं। विद्यानंदि,आदि मुनिवर अध्यात्म के ज्ञाता या उपदेष्टा

नहीं थे। इन मुनिवरों द्वारा रचित अनेक महान् ग्रंथ मानव समाज के लिए कल्याणप्रद एवं मार्गदर्शक रहे हैं।

आज इस 20वीं शती में पूज्य कानजीस्वामी आध्याात्मिक क्रान्ति के प्रबल समर्थ प्रचारक, प्रखर उपदेष्टा एवं सुवक्ता है। आप इस युग के युगपुरुष माने जाते हैं। आनेवाला कल आप का इतिहास बनकर मानव समाज को आत्म कल्याण के लिये प्रेरणास्पद बना रहेगा। वर्तमान में आप आध्यात्मिक गगन में चमकते हुये दैदीप्यमान सितारे (नक्षत्र) हैं।

कानजीस्वामी की रचनात्मक कार्यप्रणाली एवं आध्यात्मिक क्रान्ति से भारत एवं भारतेतर अनेक देश परिचित है। आध्यात्मिक विषय से संबंधित जो कार्य किया वैसा कार्य आज के वर्तमान साधुसमाज एवं पंडितवर्ग (विद्वत्समाज) से न हो सका। यह कटु स्पष्ट सत्य है। कोई अन्यथा भाव न लायेगा ऐसा मेरा निवेदन है।

श्री कानजीस्वामी के संबंध में विस्तृत विवेचन पूर्वक लिखना समयाभाव एवं स्थानाभाव दोनों ही मुझे मजबूर करते हैं। पहिले हम देखते थे कि आज से 40/45 वर्ष पूर्व समयसार जैसे ग्रंथ केवल अलमारी की शोभा बढ़ाते थे। समयसार के ज्ञाता और उपदेष्टा ऊँगुलियों पर गिनने लायक विरल ही व्यक्ति थे। पर आज मंदिरों में समयसार का प्रवचन होता है।

अनेक नवयुवक और नवयुवतियाँ, बेटी, बहिन मंदिरों में समयसार पर प्रवचन करते हुये देखे जाते हैं। इसके मूल में पूज्य कानजीस्वामी का आध्यात्मिक प्रचार ही कर रहा है। कानजीस्वामी जन जागरण के प्रतीक है। उन्होंने सोते हुए मानवों को जगाया और उन्हें एक नवीन प्रेरणा, नवीन दिशा प्रदान की।

मानव ने अंगडाई लेकर करवट बदलना छोड़ दिया क्योंकि

सोता हुआ मानव ही करवट बदलता हैं। जो अंगड़ाई लेकर जागता है, वह फिर सोता नहीं। अगर जागने के बाद तत्काल ही सो जाये तो ऐसा व्यक्ति आलसी या प्रमादी माना जाता है। प्रमादी व्यक्ति अपने जीवन में कोई भी अच्छा कार्य नहीं कर सकता। कानजीस्वामी पहिले स्वयं जगे तब बाद में दूसरों को जगाया।

व्यक्तित्व के धनी कानजीस्वामी का अपना एक विशिष्ट व्यक्तित्व है जो जनता पर अपना प्रभाव छोड़ जाता है। वे जो कुछ कहते हैं, वह उनके अन्तरंग की आवाज होती है और कहते समय इतने तन्मय, तल्लीन एवं आत्मविभोर हो जाते हैं। जिसे सुनकर जनता गदगद हो जाती है।

25/30 हजार जनता के बीच आपके प्रवचन में अपूर्व शांति बनी रहती है। क्या मजाल कि कोई चूं चपाट भी कर सके। स्वामीजी का प्रवचन श्रोताओं के अन्तरंग को छूता है। एक सही दृष्टि प्रदान करता है। अध्यात्म की इतनी भीड़ अन्यत्र देखने में नहीं आयी। आपके प्रवचन के समय कई दशक टेपरिकार्डिंग यंत्र रख दिये जाते हैं। और अध्यात्म प्रेमी सज्जन चाहे जब टेपरिकार्डिंग के माध्यम से स्वामीजी के प्रवचन का लाभ लेते हैं।

सुगठित देहयष्टि, गौर वर्ण, उन्नत ललाट, देदीप्यामन् कान्तिमान, मुख, आजानु लटकती भुजायें, मृदुमुस्कान बखेरती हुयी मुखाकृति, वार्धक्य के भार से थका शरीर, ''समझन पड़े छै के नहिं'' शब्दों द्वारा आत्मीयता बखेरते हुये श्री कानजीस्वामी का अद्‌भुत व्यक्तित्व हैं। जिसने आज तक कानजीस्वामी को न देखा हो वह आपके टेप किये हुये प्रवचन को सुनकर आपके व्यक्तित्व का पता अच्छी तरह लगा सकता है।

युगनेता युग पुरुष :- जो युग (समय) के साथ चलते हैं या

युग में ढल जाते हैं, वे सामान्य मानव हैं। और जो नवीन दिशा बतलाकर मानव समाज को लेकर नेता साथ चलते हैं, वे युग-नेता हैं, और ऐसे पुरुष उस युग के युगपुरुष माने जाते हैं।

अध्यात्म विषय में कानजीस्वामी की सेवायें अभूतपूर्व एवं असाधारण (20वीं शती में) मानी गयी हैं। अतएव वे इस युग के युगपुरुष और युगनेता हैं।

तीर्थधाम सोनगढ़ :- प्रचीन युग में इसे सोनगढ़ कहते थे, सोनगढ़ का अपभ्रंश सोनगड़ हो गया है। सोनगढ़ का अर्थ होता है, स्वर्ण के अलंकार आभूषण बनानेवाला कुशल शिल्पी स्वर्णकार। जबसे स्वामीजी के सोनगढ़ में चरण पड़े या अपना निवास स्थान बनाया तब से सोनगढ़ स्वर्णपुरी हो गया। कानजीस्वामी भी एक कुशल शिल्पी स्वर्णकार की तरह हैं जिन्होंने अध्यात्म विद्या के अनेक अलंकार गढ़े है (श्री रामजीभाई, श्री खीमजीभाई, श्री बाबूभाई आदि)।

और आज सोनगढ़ एक तीर्थधाम के रूप हैं। गिरनार पालीताणा की, यात्रा करने लक्षाधिक यात्री सोनगढ़ अनिवार्य रूप से आते ही हैं। तीर्थ क्षेत्रों की यात्रायें तो ठण्ड के दिनों में की जाती हैं। पर सोनगढ़ तो प्रतिदिन शताधिक यात्री आते ही रहते हैं। इस दृष्टि से सोनगढ़ का महत्व एक तीर्थधाम से कम नहीं हैं।

दूसरी बात यह है कि यहाँ शताधिक परिवार अपने-अपने बँगले बनाकर स्थायी रूप से रहते हैं और धर्मसाधन करते हुए स्वामीजी के प्रवचनों का लाभ लेते हुए सुख शांतिपूर्वक जीवन यापन कर रहे हैं। यहाँ प्रतिदिन मेला सा रहता है।

सोनगढ़ के सन्त कानजीस्वामी सोनगढ़ के ही सन्त नहीं,अपितु

भारत देश के आध्यात्मिक सन्त हैं। यहाँ तो केवल एक ही चर्चा है वह है ''शुद्धात्मा'' की। ''शुद्धोऽसिबुद्धोऽसि'' की अलख जगाने में स्वामीजी का जबरदस्त हाथ है सोनगढ़ की घर के अणु-अणु में यही अलख गूँज रही है।

सन्त वह है जो अधिक से अधिक समाज को देता है और कम से कम समाज से लेता है। सन्त का स्वभाव सूर्य की तरह होता है जो सार पदार्थ को ग्रहण कर असार को छोड़ देता है। सन्त पुरुष निन्दा और प्रशंसा से बहुत ऊँचे उठा होता है। कानजीस्वामी का विरोध कम नहीं हुआ और वह आज भी हो रहा है। पर स्वामीजी की इस ओर अणुमात्र भी दृष्टि नहीं गयी। वे अपनी धुन के पक्के हैं, उन्होंने जो अनुष्ठान प्रारम्भ किया है, उसकी पूर्णाहुति की प्रतीक्षा में रहते हैं, समय की पाबन्दी यहाँ प्रमुख विशेषता है।

सोनगढ़ में क्या नहीं हैं? सभी कुछ हैं, सभी प्रकार की सुविधा सम्पन्न एक सुन्दर कस्बा है। रेलवे स्टेशन, बसों की सुविधायें, पोस्ट, तार फोन ऑफिस, बैंक, हाईस्कूल चिकित्शाला, धर्मशाला, बिजली, नल, जैन विद्यार्थी गृह, महिलाश्रम, पत्र, प्रेस प्रकाशन, मानस्तंभ, सीमंधर जिनालय, महावीर परमागम मन्दिर, स्वाध्याय मंदिर, बाजार, शुद्ध जलवायु, शांत वातावरण आदि सभी कुछ तो है।

रेलवे स्टेशन के सिवाय ये सारी व्यवस्थायें एवं नवीन निर्माण कार्य कानजीस्वामी के आगमन के कारण ही क्रमशः होते रहे हैं। भगवान महावीर की रजतशती निर्वाणोत्सव के उपलक्ष्य में आगमपथ मासिक पत्रिका दिल्ली की ओर से परम आध्यात्मिक सन्त कानजीस्वामी के लिए 'पत्रं पुष्पं फलं तोयं' रूप में अभिनन्दनांजलि समर्पित करने का जो प्रयास किया गया है, वह सुन्दर है। संतो का सम्मान करना ही आवश्यक है। ●

कौन जानता था कि उमरालानगर में श्री मोतीचंदभाई की धर्मपत्नी श्री उजमबाई की कोख से संवत् 1946 बैसाख सुदी 2 रविवार को ऐसा महान होनहार बालक का जन्म होगा ? तत् समय एक ज्योतिषी ने कहा कि यह बालक महापुरुष होगा। जिस प्रकार सूर्य प्रभात में खिलकर सारे विश्व में अपनी जगमगाहट द्वारा प्रकाशमान होता है। उसी प्रकार पूज्य कानजीस्वामी बाल अवस्था से सूर्य की किरणों की भांति दिन दूनी रात चोगुनी के अनुसार सारे देश में अध्यात्म ख्याति फैल रही है।

सम्यग्दर्शन के बिना जीवन व धर्म नहीं है ऐसा अकाट्य सिद्धांत जो लोग भूल रहे थे, उन्हें शाश्वत किया।

आप इतने शांत हैं कि जिसका वर्णन करना असम्भव है। प्रथम बार इन्दौर सर सेठ हुकमचन्दजी सा. के समय जब पूज्य स्वामीजी इन्दौर पधारे तब महू, उसके बाद सोनगढ़, इन्दौर, मक्सी, भोपाल, प्रतापगढ़, रतलाम में दो बार साक्षात्कार हुआ, परन्तु ऐसा अध्यात्मवेत्ता, महान् शांतमूर्ति कि जिनके मुखमंडल पर परम शांति देखी जो कि किसी पर देखने में नहीं आई।

अंत में पूज्य श्री कानजीस्वामी को अत्यंत विनम्रभाव से हृदयांजलि अर्पण करते हुए भावना करता हूँ कि ऐसा महान पुरुष चिरायु हों।

मोहनलाल छाबड़ा, रतलाम

एक दृढ़ व्यक्तित्वः श्री कानजी स्वामी

हेमचन्द जैन 'चेतन', जयपुर

'हम जैन कुल में पैदा हुए हैं इसलिए हम जैन है' ऐसा माननेवाले को तथा 'यह शास्त्र में लिखा है और शास्त्र जिनदेव की वाणी है, यदि हम इसमें शंका करेंगे तो हमारे निःशंकित अंग नहीं पलेगा' इस भय से प्रयोजनभूततत्वों में हेय उपादेय की और हिताहित की परीक्षा किये बिना ही जिनवाणी की आज्ञा मानते हैं, उन्हें माहपंडित टोडरमलजी ने मिथ्यादृष्टि कहा है। वह जैन कहलाने का पात्र नहीं है।

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी श्वेताम्बर कुल में जन्मे, पले-पुसे और उसी संप्रदाय में दीक्षित होकर बड़े आचार्य पदपर भी आसीन हुए। पुण्य तो जोरदार था ही साथ में ज्ञान का क्षयोपशम भी। अतः बहुत शीघ्र ही विद्वान आचार्य के रूप में ख्याति अर्जित कर लीं। इतना सब होते हुए भी उनका मन इस ओर रमा नहीं, जमा नहीं। वे जिस सत्य को पाना चाहते थे, वह सत्य वहाँ मिला नहीं।

वे सत्य की खोज में थे ही कि इसी बीच सौभाग्य से उन्हें 'समयसार' परमागम पढ़ने को मिला, उसे पाकर वह इतने प्रसन्न हुए कि मानो कोई बड़ी भारी निधि मिल गई हो। इसके कुछ दिनों बाद 'मोक्षमार्गप्रकाशक' ग्रंथ पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह ग्रंथ तो उन्हें इतना प्रिय लगा कि उसका सातवाँ अध्याय उन्होंने अपने हाथ से लिख लिया जिसे सदा अपने पास रखते थे। बस, क्या था, ये दोनों ग्रंथ अन्धे को दो आंखों जैसा काम कर गये। अब वे उन्हीं के अध्ययन-मनन में डूबने लगे। एकान्त में आकर सयमसार का अध्ययन करते।

धीरे-धीरे उन्हें उस सत्य की प्राप्ति होने लगी जिसे वे चाहते थे।

और इसी के साथ जिस असत्य का चोला धारण कर रखा था प्रति उसके विद्रोह जागृत होने लगा और वह दिन भी शीघ्र आ पहुंचा जबकि उन्होंने अपने आपको दिगम्बर जैन घोषित कर दिया। यह तो अनुमान सहज किया जा सकता है कि इस परिवर्तन में उन्हें कितने प्रलोभनों का और कितनी धमकियों का सामना करना पड़ा होगा, परन्तु सत्य के अन्वेषी उस महापुरुष के चरणों में वे सब प्रलोभनों और धमकियों भरे तोप के गोले ठण्डे पड़-पड़ गये। उन पर कोई असर न कर सका, असर करता भी कैसे उन्होंने यह निर्णय किसी के दबाव में आकर या बहकावे में थोड़ी ही लिया था, यह निर्णय तो उनकी अन्तरात्मा का दृढ़ निश्चय था। इस प्रकार हम देखते है कि सच्चे अर्थों में स्वामीजी ही जैन है।

हर्ष की बात तो यह है कि मात्र वे ही जैन नहीं बने, उनके उपदेश से, उनकी प्रेरणा से हजारों लोगों को नई दृष्टि मिली और वे दिगम्बर जैन बने। स्वामीजी ने दिगम्बर साहित्य का गहन अध्ययन किया। उनकी बुद्धि कुशाग्र, दृष्टि पैनी और अन्वेषणी तो थी ही फलत: जिस ग्रंथ को पड़ा उसका मर्म भी शीघ्र समझ में आ गया। उन्होंने जो पाया; उसे बाँटा भी दिल खोलकर। आज उन्हीं की प्रेरणा के फलस्वरूप घर-घर में आर्ष प्रणीत ग्रंथों का पठन-पाठन होता है। सौराष्ट्र व गुजरात में ही नहीं बल्कि बम्बई, राजस्थान, मध्यप्रदेश, बेंगलोर आदि में तथा नैरोबी (दक्षिण अफ्रीका) और अमेरिका में भी जिन जिन स्थानों पर जिन मंदिर नहीं थे, परन्तु आवश्यकता थी; वहाँ पर मंदिर बनवाये, जिनबिम्बों की स्थापना कराई, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराई, मुमुक्षु मण्डलों व पाठशालाओं की स्थापना हुई, सामूहिक नियमित स्वाध्याय की प्रवृत्ति जागृत हुई, यात्रासंघ निकाले, पूजा-पाठ-भक्ति आदि में स्वयं सम्मिलित होकर उत्साहित किया।

स्वामीजी के ऊपर अक्सर यह आक्षेप किया जाता है कि स्वामीजी व्यवहार का लोप करते हैं और निश्चय पर विशेष जोर देते हैं परन्तु आक्षेपक यह भूल जाते हैं कि उन्होंने निश्चय व्यवहारनय को यथावत् समझा है तद्नुसार वे विवेचना भी करते हैं, फिर भी जिस पूजा-पाठ-भक्ति, व्रत-उपवास आदि को वे व्यवहार कहते हैं, उस व्यवहार का पालन स्वामीजी और उनमें श्रद्धा रखनेवालों में पाया जाता है, उतना सम्भवत: उन आक्षेपकों में भी नहीं पाया जाता हो। इसका परिचय स्वयं सोनगढ़ जाकर पाया जा सकता है तथा उसका प्रारूप यत्र-तत्र मुमुक्षु बन्धुओं में दिखा जा सकता है।

'भगवान आत्मा.....।'' गुरुदेव में मुँह से प्रवचन में बार-बार यह शब्द दुहराया जाता है, इसे सुनकर भी कुछ लोगों को इसमें दिखावटी या बनावटीपन की गंध आती है। वे किसी पंथ व्यामोह के वश यह भूल जाते हैं कि यह बनावटी ढंग नहीं यह तो अन्तरात्मा की आवाज है। उन्होंने स्वभाव से सभी आत्माओं को भगवानवत् देखा है और अनुभव किया है। अत: उनके मुँह से आत्मा के प्रभावोत्पाक शब्द निकलते हैं तो क्या आश्चर्य।

वर्तमान में भगवान आत्मा की प्रभावना का पूर्णतया: श्रेय पूज्य गुरुदेव को ही है, नहीं तो इस भौतिक और कर्तावाद के युग में आत्मा लुप्त प्राय: हो गया था जिसका उद्घाटन कर पूज्य गुरुदेव ने हमारे ऊपर महान-महान उपकार किये हैं। वास्तव में हमने आत्मा के यथार्थ स्वरूप को समझा ही नहीं है, यदि समझा होता तो हम इस तथ्य से अपरिचित नहीं रहते कि जिस आत्मा की बात गुरुदेव कहते हैं तथा शास्त्रों में जिस आत्मा का उल्लेख है, वह चेतन तत्व मैं ही हूँ, वह ज्ञानानन्द स्वभावी, अजर-अमर अविनाशी, उत्पाद व्यय रहित ध्रुवतत्व, ज्ञाता दृष्टा स्वभावी आत्मा मैं ही हूँ।

निश्चय-व्यवहारनय, निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग, निमित्त-उपादान पुण्य-पाप की एकता, क्रमबद्ध पर्याय, समस्त द्रव्यों की स्वतन्त्रता की उद्घोषणा गुरुदेव की वाणी में निरन्तर हुआ करती है।

इन्हीं बातों को लेकर कुछ लोग अज्ञान से भ्रम उत्पन्न करते हैं। वे कथन का अभिप्राय तो समझते नहीं अथवा समझते भी हैं तो अपनी रूढ़ मान्यताओं को चोट लगती जानकर भ्रमित हो जाते हैं और पंथ व्यामोह में पड़कर अन्य अल्पज्ञों को नय कहते हैं। वाणी इतनी समर्थ नहीं है कि वह एक साथ ही वस्तु के अनेकान्त स्वरूप का कथन कर लें एक बार में वस्तु के एक अंग या गुण का ही कथन हो सकता है। वक्ता जब एक पक्ष को मुख्य करता है तब दूसरा पक्ष गौण होता है; अभाव नहीं। उदाहारणार्थ-मोक्षमार्ग के प्रकरण में पुण्य पाप को संसार का कारण होने से समान है, ऐसा कहने में सांसारिक अवस्था में पुण्य की अपेक्षा पाप हेय है, पुण्य उपादेय; यह स्वत: गौण हो जाता है। परन्तु लोग कुतर्क दे-देकर स्वयं पथभ्रष्ट होते हैं और दूसरों को करते हैं। कुछ लोगों को तो कानजीस्वामी, सोनगढ़, सोनगढ़ के विद्वान (जिसे वे सोनगढ़ी कहते हैं) सोनगढ़ द्वारा प्रकाशित और प्रचारित साहित्य से इतनी चिढ़ होती है कि वे उस नाम का स्वयं प्रयोग तो दूर रहा दूसरों के द्वारा सुनने पर भी मुँह फेर लेते हैं, उनके अपने प्रवचनों, भाषणों में, प्रचार का मात्र एक ही विषय है और वह है, सोनगढ़ का विरोध। वे न समझ जनता को इस प्रकार भ्रमित कर देते हैं कि उन्हें हेय-उपादेय का, हिताहित का निर्णय करने तक का अवसर नहीं देते हैं। अंध श्रद्धालु जनता ने भी उनके द्वारा दी हुई एकान्त पक्ष की पट्टी को ऐसी दृढ़ता से बाँध रखी है कि आसानी से खुलना संभव नहीं है। उन्हें कोई सदुपयोग देकर वस्तुस्वरूप का यथार्थ विवेचन करके उनकी वह पट्टी खोलना

चाहें तो वे तैयार नहीं क्योंकि उन्हें यह भय लगता है कि यदि हमें सम्यग्दर्शन प्राप्त हो गया और सम्यग्दर्शन अपनी प्रतिभा के अनुसार हमें जबर्दस्ती मोक्ष ले गया तो इस संसार में बचेगा कौन ?

कुछ ऐसे लोग भी हैं जो तत्वों के व द्रव्यों के नाम तक नहीं जानते हैं और कहते हैं कि तुम सोनगढ़ी हो, यह सोनगढ़ का शास्त्र है, ये सोनगढ़ विद्वान है—इत्यादि। अब हमारी समझ में यह नहीं आता उन्हें सोनगढ़, सोनगढ़ी विद्वान, और सोनगढ़ी शास्त्रों में ऐसी क्या दुर्गन्ध आती है, जो उन्हें असह्य हो जाती है।

पूज्यवर आचार्यों द्वारा रचित ग्रंथों का मात्र प्रकाशन, उन पर प्रवचन और उनका प्रचार-प्रसार सोनगढ़ से हो रहा है इसलिए वे सोनगढ़ी शास्त्र कहलाने लगे ? इसीलिए वे बहिष्कार के पात्र हो गये !! उनमें आग लगवाते हैं, मंदिर से बाहर फिकवाते हैं इत्यादि प्रकार उपद्रव करते हैं। उन उपद्रवियों ने कभी उन शास्त्रों को आचार्य प्रणीत मूलग्रंथों से मिलाने की कोशिश ही नहीं की। यदि कोशिश की होती तो उनका यह भ्रम कभी का दूर हो जाता और वे सही रास्ते पर आ गये होते, क्योंकि कहीं एक अक्षर की भी फेर-बदल नहीं हुआ है।

हमें विरोध की जगह इसका श्रेय गुरुदेव को देना चाहिए कि जिनके प्रताप से आज सर्वत्र उन पूर्वाचार्यों के ग्रंथों समयसार, नियमसार, गोम्मटसार आदि तथा श्रावकाचारों का पठन-पाठन, मनन-चिंतन प्रारंभ हुआ है। उन्हें घर-घर में पहुँचाया है, स्वाध्याय की प्रेरणा दी है, पाठशालाओं और स्वाध्यायशालाओं के माध्यम से उन शास्त्रों के मर्म समझने की योग्यता प्रदान की है; ऐसे महान उपकारी गुरुदेव का बहुत-बहुत आभार करना चाहिए, जिनके हम चिर ऋणी रहेंगे।

विरोध करनेवालों के पास विरोध करने का कोई ठोस आधार तो है नहीं और न कोई तथ्य या प्रमाण ही है। वे कहते हैं कि इन शास्त्रों को मत पढ़ाना, इन बालबोध पाठमालाओं, वीतराग विज्ञान पाठमालाओं को बच्चों को मत पढ़ना, इनकी पाठशालाओं में बच्चों को पढ़ने मत भेजना क्योंकि इन पुस्तकों में और इन शास्त्रों में विष भरा है; ऐसा सुनते-सुनते अब प्रबुद्ध पाठकों को, वह विष क्या है? यह जानने की इच्छा होती हो तो उसका उत्तर वे उन भड़कानेवालों से नहीं पा-पाते हैं, तब फिर पाठकों को स्वयं ही वह विष निकालने को मजबूर हो जाना पड़ता है और वे प्रयत्न करके भी उन शास्त्रों को और उन पाठमालाओं (जिनमें विरोधी लोग विष बताते हैं) को पढ़ते है, समझते हैं। तब उनको पता लगता है कि ओहो! इन शास्त्रों और पाठमालाओं में तो कहीं भी वस्तु स्वरूप के विरुद्ध कोई कथन है ही नहीं। इनमें तो वह परम औषधि परम अमृत भरा है, जिसका एक बार पान कर लेने पर अनन्त भाव भ्रमण का अन्त आ जाता है और यह भी समझ में आ जाता है कि उन भड़कानेवालों की वाणी में विष अवश्य भरा है जो ऐसे जन्म मरण के नाशक परम अमृत के पान करने से वंचित करा रही है। मैं अब भी दृढ़ता के साथ कहता हूँ कि कोई निष्पक्षभाव से उन्हें पढ़ें और निष्पक्षभाव से स्वामीजी के प्रवचन सुनें तथा निष्पक्ष भाव से समझें तो वे कहीं भी कोई वस्तुस्वरूप का विरोध नहीं पायेंगे।

विरोध तो तब हो जब उन्हें किसी का विरोध करने का उद्देश्य हो, परन्तु उन्हें तो किसी का विरोध करना ही नहीं; मात्र अपना अविरोध ही उनकी वाणी में प्रकट होता है।

स्वामीजी के प्रत्यक्ष या परोक्ष में जो भी संपर्क में आया वह प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका, चाहे वह कितना ही छोटा-बड़ा

व्यक्तित्व क्यों न रहा हो। परन्तु स्वामीजी की यह विशेषता रही है कि वे उन सबसे अप्रभावित ही रहे। उनका लोग कितना विरोध करते हैं किन्तु उन्होंने किसी विरोध का प्रतीकार नहीं किया; इसी प्रकार प्रशंसक भी उनके कम नहीं है परन्तु अपने प्रशंसकों को उन्होंने कभी प्रोत्साहन नहीं दिया; बल्कि विरोधियों का मुकाबला करनेवाले प्रशंसक भी उनकी दृष्टि में अच्छे नहीं हैं। ऐसे व्यक्तित्व के धनी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के शताधिक जीवन की कामना करते हैं। ●

श्री गुरुदेव पधारे.....

-लालचन्द्र जैन 'राकेश' रायसेन (म०प्र०)

(राजस्थान के कोटा नगर में दि. 24-5-75 से 8-6-75 तक ''जैन दर्शन शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर'' का आयोजन किया गया था। इस आयोजन के मध्य 1-6-75 को श्री गुरुदेव कानजीस्वामी भी पधारे थे। प्रस्तुत गीत उस अवसर पर स्वागत-गान के रूप में रचा गया था।]

धन्य धरा है, गगन है, धन्य हैं भाग्य हमारे।
आज श्री गुरुदेव पधारे, कोटा नगर हमारे॥

(1)

''बाहर भोगों के अंगारे, भीतर रगों की ज्वाला।
पीकर मिथ्यात्विक मदिरा, ये सारा जग है मतवाला॥
भूल रहा है निज वैभव को, दर्शन-ज्ञान बिसारे।''
उसे आत्म-रस पान कराने, श्री गुरुदेव पधारे॥ धन्य..... हमारे॥

(2)

स्वर्णपुरी में बैठ आपने, शिवपुर मार्ग बताया।
पर दुर्भाग्यवशात् सकल जग, लाभ न लेने पाया॥
अत: लिये जिनवाणी गंगा, देने जगत किनारे।
नगर-ग्राम में अलख जगाते, कोटा नगर पधारे॥ धन्य..... हमारे॥

(3)

अगम, अपार, गूढ़ अर्थों को, रखती है जिनवाणी।
सही रूप में तुम ही समझे, महावीर की वाणी॥
''यह आतम है शुद्ध सदा ही'' जग-हित वचन उचारे।
''कर्त्ता-धर्त्ता स्वयं आपका, किसको कौन उबारे॥ धन्य..... हमारे॥

(4)

भटका रहा जग पर परिणति में, निज आतम को भूला।
धन-दौलत को पाकर ऐंठा, फिरता फूला-फूला॥
कहा इसे सत्पथ दर्शाते, ''ये कुछ भी नहीं हमारे।''
''करें परम उपकार जगत् का, जब तक रवि-शशि तारे॥ धन्य.... हमारे॥

जैन जगत के अद्वितीय सूर्य

उग्रसैन बण्डी, उदयपुर

अध्यात्म सन्त, समयसार मर्मज्ञ, परम आदरणीय पूज्य गुरुदेव काठियावाड़ में श्री मोतीचन्दभाई की सहधर्मिणी माता उजमबाई के गर्भ से वि. सम्वत् 1946 को वैशाख शुक्ला 2 को अवतरित हुए। आपका कौटुम्बिक धर्म स्थानकवासी श्वेताम्बर सम्प्रदाय था। बाल्यकाल में ही आप विवेकी एवं तीक्ष्ण बुद्धि के थे। व्यवसाय काल में भी वैराग्यमयी साहित्य का अध्ययन करना आपका लक्ष्य था। पिता श्री को आपने स्पष्ट व्यक्त किया था कि यह मनुष्य पर्याय पाँच इन्द्रियों का भोग भोगने को नहीं वरन् जन्म मरण का अन्त करने को है। ब्रह्मचर्य को अपना भूषण बना स्वामीजी सदैव विकथाओं से विरक्त एव सतसंग में अनुरक्त रहे।

वैराग्य रंग लाया और परिणामस्वरूप आपने श्वेताम्बर स्थानकवासी सम्प्रदाय के साधु पद की दीक्षा ग्रहण की। आपकी पावन, प्रखरबुद्धि एवं अद्वितीय प्रवचन शैली ने हजारों श्रावक-श्राविकाओं को प्रभावित किया। आचारित एवं संयमित जीवन बिताते हुए आपने सम्प्रदाय के साधुओं में गरिमा भरा पद प्राप्त किया। परन्तु वीतरागता के अनुसन्धान में रत स्वामीजी को सन्तोष नहीं हुआ।

आखिर ''जिन खोजा तिन पाईया'' का मुहावरा चरितार्थ हुआ और आपको आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा प्रणीत परम आध्यात्म ग्रंथ ''समयसार'' प्राप्त हुआ। आपने इस ग्रंथ का अध्ययन वन, गुफाओं में गुप्त रह कृतकृत्य हो किया। समयसार की प्रत्येक पंक्ति को आप हृदयागम करते रहे और इस ग्रंथ को मनन, चिन्तन एवं आराधना का केन्द्र बना लिया। मनन, साधना में रत स्वामाजी को आचार्यकल्प

पंडित टोडरमलजी द्वारा रचित मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रंथ भी मिला, उसका गंभीरता से अध्ययन करने पर आपका निर्णय रहा कि अब निजात्मा से धोखा नहीं किया जा सकता। सर्वज्ञ के ज्ञान में झलकते हुए सत्य को ही वे अपना जीवन समर्पण करना चाहते थे। अत: आपने स्वकाल कहें या काललब्धि, भाग्य का उदय कहें या पुरुषार्थ की प्रबलता से सं. 1991 चैत्र सुदी 13 भगवान महावीर के जयन्ती दिवस पर दृढ़ विश्वास एवं अडिग श्रद्धा पूर्वक जर्जरित चोला छोड़कर अनादि सनातन दिगम्बर जैन धर्म को अन्तरत्तम से स्वीकार किया।

इस अद्वितीय परिवर्तन से समाज भौचक्का हो, बौखला उठा। आपकी दोनों ही पक्षों में निन्दा, स्तुति होने लगी। नाना प्रकार के भय उत्पन्न करने पर भी आप सुमेरू पर्वत की तरह निश्चल, मौन अपने द्वारा प्रणीत विश्वास की साधना से अनुरक्त रहे। दिगम्बर समाज के जन्मजात त्यागी, वृत्ति, पंडित एवं एवं समाज के ठेकेदारों ने भी आपकी भरसक आलोचना की। परन्तु आपने अपने द्वारा गम्य मर्म का 50 वर्षों से धाराप्रवाही चहुँमुखी वाणी से देश के विभिन्न क्षेत्रों में फैले अज्ञान अंधकार को नष्ट किया। आत्महित की वाणी ज्ञान गंगा की तरह तरंगित हो मुमुक्षुओं के उपकार का कारण बनी। आप स्वतंत्र रूप से आध्यात्मिक ग्रंथों का मर्म निकाल कर मुमुक्षुओं को परोसने लगे और उसके परिणामस्वरूप लाखों की तादाद में ग्रंथ छप कर जिज्ञासुओं को उपलब्ध होने लगे। पंडितों व साधुओं की धरोहर अब श्रावकों की धरोहर बन गई। पठन पाठन प्रारम्भ हुआ और बहती हुई गंगा से जड़ चेतन मंदिर प्रक्षालित हुवे।

स्याद्वाद अनेकान्त, निमित्त-उपादान, निश्चय-व्यवहार, ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय, स्वपर, द्रव्य-गुण-पर्याय की स्वतन्त्रता आदि बिन्दुओं को आपने युक्ति, प्रमाण एवं अनूठे ढंग से स्पष्ट करते हुए सम्यग्दर्शन की

महिमा बतलाई। आपके प्रवचनों के प्रभाव से नगर-नगर में नवीन भव्य जिनालय, स्वाध्याय भवन आदि निर्मित हुए, स्वाध्याय मण्डलों की स्थापना के साथ पंच कल्याणक एवं शिक्षण, प्रशिक्षण, शिविरों की व्यवस्थाएँ हुईं। जिससे हजारों की संख्या में समाज के वृद्ध, स्त्री, पुरुष एवं बालक-बालिकाओं ने प्राप्त किया। मानो आध्यात्मिक चेतना का घर-घर में जागरण हुआ जिससे क्रियाकाण्ड व राग की कर्तृत्व बुद्धि की जड़े खोखली हुईं।

पूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी से पंचम काल भी धर्मकाल सा प्रतीत होने लगा हैं।

आपके सतत् सोनगढ़ विराजने से आप सोनगढ़ के क्रान्तिकारी सन्त के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। आपके सानिध्य से सोनगढ़ का कण-कण पवित्र हो गया है। जिनालय, स्वाध्याय भवन, मानस्तम्भ एवं परमागम मंदिर की रचना ने सोनगढ़ को पावन, प्रसिद्ध तीर्थ बना दिया है। इन भवनों की कलाकृतियाँ बहुत अनूठी हैं। ऐसा लगता है कि यहाँ साक्षात् समोशरण लगा हो। ज्ञानार्जन की दृष्टि से वर्ष भर में शैक्षणिक कक्षाएँ भी आयोजित की जाती हैं, जिसमें सैकड़ो मुमुक्षु भोजन, निवास आदि की सुविधा सहित कुशल शिक्षण, प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं।

गुरुदेव की अंतरंग एवं बाह्य लक्ष्मी का स्पष्ट दिग्दर्शन इन नगरी दृष्टिगत है। बाह्य लक्ष्मी तो सबको नजर आती है पर अंतरंग लक्ष्मी का सानिध्य भाग्यशाली, वीतराग मार्गी विरले ही भव्य जीवों को प्रतीत होती है।

आलौकिक बात तो यह है कि यहाँ 90 प्रतिशत सशक्ति गौतम गणधर जैसे जीवों की शंका का समाधान युक्ति, न्याय एवं तर्क द्वारा होता है। जिससे वे विरोधी न रहकर आतमरस के रसिया के ज्योतिर्मयी

प्रभावशाली वाणी से लाभान्वित हो अपने आपको कृत्य मानते हैं।

स्वामीजी स्व-पर कल्याणकारी मार्ग पर प्रशस्त हो, दिगम्बर शासन एवं मनुष्य जीवन की सार्थकता में चार चाँद लगा रहे हैं।

ऐसे महान् सत्पुरुष स्वामीजी के जीवन के सम्बन्ध में मूढ़ अल्पज्ञ द्वारा जो भक्ति के वशीभूत श्रद्धासुमन समर्पित हैं, वे पाठकों के हृदय का हार बनें। ●

चारित्रमय मुनिदशा की अचिंत्य महिमा

गुरुदेव अपने प्रवचन में अनेक बार दिगम्बर सन्त मुनिवरों के प्रति भक्तिपूर्ण उद्गार निकलते हैं। ''णमो लोए सव्वसाहूणं'' पद का जब आप विवेचन करते हैं, तब श्रोतागण मुनिवरों की भक्ति से गद्गद् होकर रोमांचित हो उठते हैं। भगवाद कुन्दकुन्दाचार्यदेव, अमृतचन्द्राचार्यदेव, धरसेनाचार्यदेव, पद्मनन्दी आचार्यदेव, वीरसेनाचार्यदेव, समन्तभद्राचार्यदेव, नेमिन्द्राचार्यदेव इत्यादि दिगम्बर सन्तों का स्मरण करके जब आप भक्ति से कहते हैं कि अहो! छट्ठे-सातवें गुणस्थान में आत्मा के आनन्द में झूलनेवाले और वन जंगल में बसनेवाले उन वीतरागी संत मुनिवरो की क्या बात करें!! हम तो उनके दासानुदास हैं। अभी हमारी मुनिदशा नहीं अभी तो उसकी भावना भाते हैं। उस मुनिदशा की क्या बात!! उनका दर्शन होना भी बड़ा धन्यभाग्य है। ●

श्री कानजीस्वामी- एक आध्यात्मिक पुण्यशाली व्यक्तित्व के धनी

जिन खोजा तिन पाईयां गहरे पानी पैठ
मैं बोरी ढूँढ़न गई रही किनारे बैठ।।

दशरथलाल जैन, रिटा. हे. मा., सिवनी, म.प्र.

अद्यावधि मेरी धारणा यही बद्ध भूल रही कि रोज सबेरे मंदिर जाना, दर्शन करना, पूजा करना, सूत्र जी भक्तामर का पाठ करना, व्रत नियम लेना आदि पुण्य कार्य धर्म है और ऐसा करते-करते परम्परा से आत्म कल्याण हो जायेगा। यह रूढ़ी प्राय: आज सर्वत्र मान्य चली आ रही है परन्तु वर्णी द्वय और प्रसिद्ध विद्वानों को छोड़कर हमारे किन्हीं विद्वानों के मुख से आज तक प्रवचन न सुना कि मात्र पुण्य की दृष्टि से किया कार्य संसार भोग कामना की दृष्टि है, मोक्ष तो आत्म दृष्टि से प्राप्त है, छ: द्रव्यों का सामान्य और विशेष गुण क्या होते है और उनकी क्या उपयोगिता है सात तत्त्वों में भूल कैसी और किस तरह होती है, निश्चय और व्यवहार किसका नाम है और उसको बिना जाने धर्म में कैसा अंधविश्वास चलता है तथा अगृहीत मिथ्यात्व किस तरह जैनियों में चिपका रहता है, कथनशैली को किस तरह समझकर किसका क्या भाव लेना आज तक समझ नहीं पा रहे थे, वाचना-पृच्छना-आगम-आम्नाय-धर्मोपदेश का क्या क्रम है, शब्दार्थ-नयार्थ-मतार्थ-आगमार्थ के बाद भावार्थ कैसे ग्रहण किया जाता है, व्याप्य-व्यापक भाव, निमित्त-नैमित्तिक संबंध द्रव्य-गुण-पर्याय की स्वतंत्रता सम्यक् मिथ्या, अनेकान्त आदि अनेक इस मनुष्य भव दुलर्भ तत्त्वज्ञान और उसके निर्णय की आवश्यकता आदि सबका गूढ़तम आगम मंथन जिस सत्पुरुष के अलौकिक दिव्यज्ञान से जनसाधारण के लिये सुलभ हुआ, वह उनकी अनुपम सूझ की देन है।

हम नास्तिरूप से जो कहते हैं और आचार्य ने भी व्यवहार से उपदेश में कहा है कि क्रोध, मान, माया, लोभ मत करो, राग-द्वेष मत करो, पाँचों इन्द्रियों के विषय में रत मत होओ, पर इससे और ऐसे हजारों उपदेशों से कुछ हुआ नहीं और कुछ हो सकता नहीं। कारण ऊपर से नियम लेकर अंतर में नियत साफ नहीं होने से भाव शून्य क्रिया व्यर्थ ठहरती है क्योंकि जैन धर्म में भावों से पुण्य-पाप बंध माना गया है। स्वामीजी ने सच्चे धार्मिक बनने की युक्ति सुझाई कि भाई अस्तिरूप से अपनी आत्मा की शुद्ध वीतरागी परिणति-अरागी अकषायी स्वभाव की प्रतीति श्रद्धा करो, उसके सन्मुख होओ, उसे पकड़ो तो आत्मा के शुद्ध स्वभाव की प्राप्ति-धर्म में प्रवृत्ति चर्या हो तो विषय-कषाय स्वयं छूट जायेंगे। उसे व्यवहार में विषय-कषाय छोड़ा कहा जावेगा। बलात् छुड़ाना न पड़ेगा और वह कार्यकारी भी नहीं है। जैसे प्रकाश करने से अन्धकार स्वयं भाग जाता हैं, अन्यथा अन्धकार के पीछे कितना भी लठ लेकर पीछे पड़ो, वह भागेगा नहीं। धर्म के क्षेत्र में हमारी पुरानी रूढ़ीवादी समाज के नगर-नगर और जन-जन में यह रहस्य कर्णगोचर होते जा रहे हैं, यह उनके उत्कृष्ट पुण्य का निमित्त ही मानना चाहिये। सूर्य की किरणों को पृथ्वी तक लाने में जिस तरह ईथर (Eather) माध्यम है, उसी तरह उस आध्यात्मिक पुण्यशाली पुरुष का आध्यात्मिक कल्याणकारी पुण्य माध्यम (medium) है।

हमारे धर्म के मृत शरीर में आचार्य कुन्दकुन्द के वचनानुसार आत्मा धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझ कर धर्म में स्थितिकरण किया जा रहा है। वर्तमान में प्रचलित धर्म क्रिया और रूढ़ी से त्रस्त हो आज का पढ़ा-लिखा युवा वर्ग कहने लगा है कि मंदिर जाने में क्या रखा है। इसलिये मंदिर जाना वे लोग बंद करते जाते हैं। क्या

वह भयावह (Alarming) स्थिति समाज को सचेत करने के लिये पर्याप्त नहीं है? क्या किसी कवि के शब्दों में हमारी यह स्थिति नहीं है?

आत्म की चिन्ता नहीं किसी को,
तन पर चन्दन मला जा रहा।
अर्थ हीन सरगम के बल पर,
भावुकता को छला जा रहा॥ इसे क्या कहूं?
भूखी है भावना भोग,
दुनियां मंदिर को लगा रही है।
टूटे हुए स्वप्न की काया,
पर रेशम जगमगा रहा है॥ इसे क्या कहूं?
मेरे युग के पहरेदारों,
पूँछ रहा तुम से उत्तर दो।
लुप्त कर दिया आत्म धर्म को,
और व्यवहार अमर कर दिया॥ इसे क्या कहूं?
जो उजयाले के विरुद्ध है,
उनसे बात कोई क्या कहे?
जब वे अंधकार के स्वागत,
में अभिनन्दन पत्र पढ़ रहे॥ इसे क्या कहूं?

पुरानी परिपाटी के स्थिति पालक लोग उन्हें बदनाम करने को टिके हैं कि ये व्यवहार धर्म को नहीं मानते। क्या यह गुजरात के सैकड़ों मंदिरों के निर्माण से आज झूठ सिद्ध नहीं हो रहा है? पर क्या करें फूटी आँख विवेक की कहा करे जगदीश। दूसरे यह कहना कि ये चारित्र पालने का उपदेश नहीं देते तो कोई इनसे पूछे कि ये तुमसे चारित्र में कितने भ्रष्ट है और तुम चारित्र की बात करनेवाले चारित्र के किस शिखर तक पहुँच गये मंदिर में गा बजाकर पूजा कर लेने

मात्र से अपने को श्रेष्ठ मान बैठना तो अपने चांटे गोरे बनने जैसा है, मंदिर के बाहर आज भी हम अधर्मी जैसी प्रवृत्ति में हैं, उनसे किस बात में श्रेष्ठ हैं, कभी अपने आस्तीन में मुँह डालकर देखा ये तो हमारी घोर आत्म वंचना है, दूसरों और खुद को बड़ा धोखा है, समाज को धोखे में रखकर, उसे वैसे ही गुमराह करना है जैसा कि किसी कवि ने कहा है—''कुछ अंध असूझन की आखियांन में झौंकते हैं, रज राम दुहाई।''

धन्य है स्वामीजी को और उनके सहयोगी वयोवृद्ध श्रीरामजीभाई, खेमजीभाई, बाबूभाई, नेमचंदभाई, चिमनभाई, जिनके सहयोग से वर्ष में ग्रीष्म, वर्षा और शीत ऋतु में धर्म शिक्षण शिविर का सफल आयोजन होते रहता है। पं. हुकमचन्दजी, पं. नेमीचन्दजी, श्री युगलजी, प. धन्नालालजी आदि जयपुर टोडरमल स्मारक भवन के कर्णधारों के सहयोग से मिशिनरी स्प्रिट से निष्पृह आध्यात्म का अच्छा खासा ठोस प्रचार हो रहा है। हमारे आज के नाटकीय ढंग पर होनेवाले गजरथ और पंचकल्याणकों को देखते हुए और सोनगढ़ और जयपुर से आयोजित धर्म-शिक्षण शिविरों में आत्महितकारी तत्त्वज्ञान का प्रचार और प्रसार देखकर कहना पड़ता है कि हमारे और इनके धार्मिक क्रिया में कितना अन्तर है; इन शिविरों में जीवित इंसानों में कैसे धर्म की प्राण प्रतिष्ठा की जाती हैं और हमारे यहाँ हजारों प्रतिमाओं के रहते निर्जीव प्रतिमाओं में प्राण प्रतिष्ठा कर धर्म की इतिश्री मान ली जाती है। हमारे और इनके कार्यों में कितना जमीन आसमान का अन्तर है? हमें दुख है कि पुरानी परिपाटी के कतिपय विद्वान और समाज के कुछ कर्णधार अध्यात्म की इस श्री वृद्धि को न देख सकने और न समझ पाने के कारण इस प्रवाह को रोकने का असफल और हास्यापद प्रयत्न कर रहे हैं। अनेकान्त दृष्टि और अमितगति आचार्य

के ''माध्यस्थ भावं विपरीतवृक्षों'' को भुला कर यदातदा हिंसक तरीके तक अपनाने से नहीं चूकते स्वयं रूढ़ी को धर्म मानकर एकान्ती व्यवहाराभासी हैं पर दूसरों को निश्चयाभासी एकान्ती कहकर घृणा और कलह के बीज बो रहे हैं और हर तरह से आध्यात्मिक प्रचार के आड़े आ रहे है, यह तो अब ऐसा ही प्रयत्न है जैसे एक बुढ़िया झाडू से समुद्र को पीछे ढकेलने का प्रयत्न करे आध्यात्म का यह प्रबल प्रवाह तो रुकनेवाला नहीं है कुछ काल तक ये संघर्ष यत्र तत्र भल ही चलें पर अंत में शांत होना पड़ेगा दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता से समाज ने इस प्रवाह को आत्मसात करने की क्षमता न दिखाई तो व्यवहाराभासी रूढ़ीवादी स्थितिपालक दल और अधात्मवादी दल इन विरोधियों की कृपा से निश्चित बन जावेंगे। समाज नीति में और राजनीति में बहुमत का सिद्धान्त भले ही मान्य हो पर धर्म क्षेत्र में यह सिद्धान्त अमान्य ही रहेगा। इसे लोगों को खूब समझ लेना चाहिये। हम तो कहते हैं:-

तुम भी रहो रहेंगे हम भी,
नहीं हमें तुम हटा सकोगे।
तुम आये बनकर तूफान,
यहां बिछाने को अवसान।
बैठ गये हम पृथ्वी तल पर,
अचल अटल बनकर चट्टान।
निकल गये तुम कैचुल अपना छोड़,
अपनी ही कुछ सुन्दर प्रकृति मरोड़।
क्या जीवन आयाम हमारा,
थोड़ा भी नहीं पटा सकोगे।
तुम आये बनकर भूडोल,

हिले हिलाते अखिल खगोल।
लेट गये हम मृतवत् क्षण को,
निकल गये तुम हृदय टटोल।
हिले डुले तुम भय से अपने आप,
चले गये तुम वन अपने अभिशाप।

तोड़ फोड़ अपनी सीमाऐं,
क्या तुम हमसे बढ़ा सकोगे।
हम है चेतन तुम निष्प्राण,
कुण्ठित सभी तुम्हारे बाण।
गये सदा तुम कर कितना उत्पाद,
गये हिला तुम अपने ही तरुपात।
रह न सकोगे तुम भी जो तुम,
बात न हमे पटा सकोगे।

''दिव्य''

कोई माने या न माने स्वामीजी का अखिल जैन-संसार पर आत्म-जागृति का अभूतिपूर्व उपकार है। उनकी कीर्ति दिगदिंगत व्यापनी अक्षुण्ण और चिरस्मरणीय है। यह कानजी युग के नाम से इतिहास के पृष्ठों में अमिट छाप बनके रहेगा।

आत्म-दर्शन

दानियों को देखना तो तीर्थों पर जाइये,
संगमर्मर पर खुदे हैं नाम खुद पढ़ आइये,
धर्म और धर्मात्मा ऐसे बहुत मिल जायेंगे,
आत्मा को देखना तो सोनगढ़ में जाइये,

- हजारी लाल 'काका'

संस्मरण

उदासीन ब्रह्मचारी

डॉ. राजेन्द्रकुमार बंसल, शहडोल (म.प्र.)

घटना उस सयम की है जबकि मैं सन् 1957 में श्री दिगम्बर जैन छात्रावास जबरीबाग नासिया इन्दौर में रहकर बी. काम. अध्ययन कर रहा था। श्री कानजीस्वामी अपने संघ सहित इन्दौर में एक सप्ताह हेतु आ रहे हैं। इस समाचार ने वहाँ के जैन समाज में खलबली मचा दी। कुछ तत्व प्रेमी बन्धु जहाँ उनके निवास, भोजन एवं प्रवचन हेतु पंडाल आदि व्यवस्था कर रहे थे तो कुछ विरोधी विद्वान उनका संगठित विरोध करने हेतु योजनायें बनाने में तत्पर थे। पक्ष-विपक्षवालों ने अपने-अपने समर्थन में ऐसा धुआँधार प्रचार किया जैसा कि चुनाव के समय भी दृष्टिगोचर नहीं होता। दोनों पक्षों के स्थानीय एवं बाहरी मूर्धन्य विद्वान भी वहाँ यथा समय इन्दौर पहुँच गये। इस वातावरण के बीच में अन्ततः श्री कानजीस्वामी अपने संघ सहित इन्दौर पहुँचे और उन्हें जबरीबाग में ही ठहराया गया।

प्रारम्भ से ही धर्म भीरू होने के कारण मेरी भी रुचि श्री कानजीस्वामी के पक्ष एवं विपक्षवालों के विचारों को जानने में हुई। विद्वानों से भी सम्पर्क किया। चर्चा के मध्य विरोध के कारणों से अवगत हुआ। वहाँ पर यह बात फैला दी गयी थी कि श्री कानजीस्वामी किसी से चर्चा नहीं करते, और न किसी की शंका आदि का समाधान ही करते हैं। व्यर्थ के विवाद से अपनी शाक्ति को बचाये रखने का यह तरीका भी अपने में अनूठा है। मेरा मन उद्वेलित हो उठा और निश्चय किया कि अवश्य ही एक बार स्वामीजी से चर्चा करूँगा। यह विचार आते ही मैंने एक प्रश्न सूची बना डाली। जिसका प्रथम प्रश्न यह था कि साधक की दृष्टि से आपकी भूमिका क्या है ? इसी प्रकार

से उनके व्यक्तिगत तथ्यों से सम्बन्धित 8-10 प्रश्न और थे। तत्वज्ञान न पहले था और न अब है। अत: उस सम्बन्ध में शंका उठने का प्रश्न ही नहीं था।

मैंने स्वामीजी की निजी परिचर्या करनेवाले महानुभाव (जिनका नाम स्मरण नहीं है) से सम्पर्क स्थापित किया और प्रश्न सूची दिखाकर उनसे निवेदन किया कि वह 5 मिनट के लिये स्वामीजी से भेंट करवा दें। कुछ संयोग की बात थी कि उनके प्रयास से दूसरे दिन प्रात: काल मेरा स्वामीजी से मिलने का समय निश्चित कर दिया गया। छात्रावास में यह बात द्रुतगति से फैल गयी कि मुझे स्वामीजी ने मिलने हेतु समय दिया है। मेरे अनुमान से वहाँ मैं ऐसा प्रथम व्यक्ति था, जिसे अवसर मिला। मैं इसमें बड़प्पन महसूस कर रहा था। रात्रि का समय काटना मेरे लिये दुष्कर हो रहा था। करवटें बदलते अंतत: सुबह हुआ और मिलने का समय निकट पहुँचा।

बड़ी ही श्रद्धाभाव से मैंने स्वामीजी की चरणरज अपने मस्तिष्क पर लगायी और उनसे पूछा कि धार्मिक भूमिका में आपका क्या पद है? उन्होंने प्रसन्न मुद्रा में कहा कि मैं उदासीन ब्रह्मचारी हूँ। लोग आज्ञन में ही मुनि के सादृश्य मेरी तुलना करते हैं। मैं तो अव्रती सम्यक्त्वी हूँ। मेरा दूसरा प्रश्न था कि आप लोगों की शंकाओं का समाधान क्यों नहीं करते इससे भ्रम एवं विरोध बढ़ता है। उन्होंने कहा कि यदि शंका हो तो उसका समाधान किया जा सकता है। तुम भी अपनी शंका का निराकरण कर रहे हो न। जब चर्चा का उद्देश्य टीका टिप्पणी, एवं कीचड़ उछालना ही हो तो उसमें समय एवं शक्ति बर्बाद करने में क्या लाभ यह उनका अज्ञान भाव है। एक के बाद एक मेरी सम्पूर्ण शंकाओं का समाधान हो चुका था। घड़ी की सुई भी पाँच मिनट पूर्ण होने का संकेत दे रही थी। मैंने कृतार्थ भाव से

उनके पुनः चरण छुये तो उन्होंने आशीर्वाद देते हुए मुझे सोनगढ़ आने का निमन्त्रण दिया। मैं अपने को गौरवान्वित अनुभव करता हुआ, उनके सानिध्य से दूर होता हुआ किंचित दुख महसूस करता रहा। बाद में ज्ञात हुआ कि उन्होंने जैन समाज के मूर्धन्य विद्वानों से चर्चा करने हेतु एक घंटे समय इस शर्त पर दिया है कि वह टीका टिप्पणी रहित अपनी समुचित शंकाओं का समाधान सहृदयभाव से करेंगे। इस घटना को व्यतीत हुए 18-19 वर्ष हो गये किन्तु उनसे मिलने का जो अपूर्व आनन्द था एकान्त क्षणों में स्मृतिपटल का विषय बनकर आह्लादित करता रहता है। दुर्भाग्य का विषय है कि मैं अभी तक उनके निमंत्रण को साकार नहीं कर सका, यद्यपि उनके उपदेशों का लाभ अप्रत्यक्षरूप से ले रहा हूँ।

ऐसे हैं श्री कानजीस्वामीजी तत्त्वज्ञान एवं प्रसिद्धि की परकाष्ठा पर पहुँचकर भी व्यक्तिगत व्यवहार में सरल, स्पष्ट, निर्मल निरहंकारी, विनम्र, निस्पृही एवं सहृदय हैं और शुद्धोपयोगरूप उच्च चारित्रिक भूमिका सम्बन्धित अपनी अशक्यता को स्वीकारने में किंचित भी संकोच नहीं करते और विरोधियों के कटुवाक् प्रहारों की चिन्ता किये बिना आत्मसाधना में लीन रहते हैं। आधुनिक जैन जगत के अध्यात्मिक आन्दोलन के प्रणेता मूक आत्मयोगी स्वामीजी को यदि कोई अपनी अज्ञानता से उनके पद एवं भूमिका को अन्यथा समझकर उन्हें अपनी दुर्भावनापूर्ण एकान्तिक आलोचना का विषय बनाये तो इसमें किसकी बुद्धि का दोष ? प्रत्येक विवेकवान व्यक्ति को पूर्वाग्रह एवं दुराग्रह छोड़कर इस प्रश्न का उत्तर देना है। ●

सन् 1948 में मैं बुरानपुर में सिविल जज था। गिरिनारजी की यात्रा के लिये गया था। रास्ते में सोनगढ़ ठहरने का प्रोग्राम बना। प्रथम ही अवसर पर परम पूज्य स्वामीजी के दर्शन हुए। उनका प्रवचन सुनने का अवसर प्राप्त हुआ। उसके बाद सोनगढ़ से प्रकाशित साहित्य के अध्ययन का अवसर मिलता रहा।

आपके प्रवचनों में सदैव भेद-ज्ञान कराने की मुख्यता से निश्चय-व्यवहार, निमित्त-उपादान, कारण-कार्य की स्वतंत्रता का विशद विवेचन रहना है। इनके प्रवचन से तथा उनके समागम से मेरा सारा जीवन बदल गया। वस्तु की स्वतंत्रता का भान हुआ। मुझे सच्ची शांति इनके चरणों में ही मिली। आपका मुझ पर महान उपकार है। मैं कभी भी नहीं भूल सकता।

—फूलचन्द्र जैन,
अवकाश प्राप्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश

समयसार एवं कहान गुरुदेव

-मधुभाई जैन, जलगांव

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावांतरच्छिदे॥
जो स्वरूप समझे बिना, पाये दुःख अनंत।
समझाया वह पद, नमूं श्री सद्गुरु भगवंत॥

'समयसार' अर्थात् द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म से रहितचेतनागुणरूप शुद्ध आत्मा कि जो अपनी ही अनुभवनरूप क्रिया से सदा प्रकाशमान है, शुद्ध सत्तास्वरूप है और स्वतः अन्य सर्व जीवाजीव, चराचर पदार्थों को सर्व क्षेत्र, काल, संबंधी सर्व विशेषणों के साथ एक ही समय में जाननेवाला है; उसे मेरा त्रिकाल नमस्कार हो।

ऐसे अतिशय महिमावन्त आत्मस्वभाव को समझे बिना हे प्रभु! मैंने अनंत दुःख पाये हैं। परन्तु हे परमकृपालु गुरुदेव आपने ऐसे अचिंत्य आत्मस्वभाव को समझाकर इस दास पर अकारण करुणा की है। अतः हे कहान गुरुदेव! आपके पुनीत चरणों में बारम्बार नमस्कार हों।

आज केवल भारतवर्ष में ही नहीं विदेशों में भी पूज्य स्वामीजी के द्वारा वीतराग धर्म की महती धर्म प्रभावना हो रही है। अफ्रीका, आदि देशो में भी मुमुक्षु मंडल है और जहाँ नित्य प्रतिदिन स्वाध्याय—तत्त्वचर्चा आदि विभिन्न कार्यक्रम होते हैं और वीतराग वाणी का प्रचार.... प्रसार होता है; जिसका सारा श्रेय पू. गुरुदेव को ही है।

पूज्य गुरुदेव के जीवन में उथल-पुथल मचा देने वाली महान क्रांति तब हुई जब उन्हें सं. 1978 में श्रीमद् भगवत कुन्दकुन्दाचार्य विरचित श्री समसार नामक महान आध्यात्मिक एवम् अलौकिक

ग्रंथ की प्राप्ति हुई थी। समयसार पढ़ते समय उनके आनंद की कोई सीमा नहीं थी। जिसकी खोज में आप थे, वह आपको समयसार में मिल गया। श्री समयसारजी में लहराते हुए अमृत सरोवर को स्वामीजी के अंतचक्षु ने देखा। एक के बाद एक गाथा पढ़ते समय महाराजश्री ने उस अमृत के अनेक घूँट पिये और उनकी आत्मा मानों तृप्त तृप्त हुयी।

ग्रंथाधिराज श्री ''समयसारजी'' ने स्वामीजी के ऊपर अपूर्व और अनुपम उपकार किया है। महाराजश्री के अन्तरंग जीवन में परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली हुयी परिणति ने निज घर देखा, स्वसत्ता में स्वस्वामीपना आया, निज आत्म वैभव का ताबा (कब्जा) लेकर पर्याय की पामरता को सदा-सदा के लिये मिटा दिया। मिथ्यात्व-अज्ञान का घोर अंधेरा 'सम्यक्त्व सूर्य' के उदय होते ही दूर हुआ। उपयोगरूपी झरने में अब शीतल अमृत का मीठा प्रवाह बहने लगा।

पूज्य स्वामीजी को श्री ' समयसारजी' के प्रति अतिशय शक्ति है और क्यों न हों ? जबकि इसमें संपूर्ण ब्रह्माण्ड के भाव समाये हुए हैं। जिस समयसार के पठन मात्र से मिथ्यात्व के मजबूत बंधन ढीले पड़ने लगते हैं, अनादिकालीन मूर्च्छा शीघ्र ही दूर हो जाती है और निज परिणति विभावों से रुककर स्वभाव की ओर दौड़ने लगती है। जो समयसार राग और ज्ञान की अतिसूक्ष्म संधी को छेदने के लिये प्रज्ञाछैनी है, जो साधक संतो का साथी है, जगत का सूर्य है, भगवान महावीर और सीमंधर परमात्मा का साक्षात् संदेश है; भवभ्रमण से थक्ति जीवों का जो विश्रामधान है उसके प्रति इतनी निष्ठा, भक्ति, विनय और बहुमान का होना स्वाभाविक ही है।

इस पर पावन समयसार शास्त्र को स्वामीजी ने सैकड़ों बार पढ़ा है और प्रतिदिन ही पढ़ते रहते हैं। पूज्य स्वामीजी 'समयसार' शास्त्र को उत्तमोत्तम शास्त्र मानते हैं। सं० 1994 में स्वाध्याय मंदिर में श्री

'समयसारजी' की मंगल प्रतिष्ठा करने में आयी। तब से आजतक जाहीर प्रवचन सभा में एक समय श्री समयसारजी पर प्रवचन नित्य प्रतिदिन होता ही है और अब 17वीं बार सामुदायिक सभा में स्वामीजी द्वारा समयसारजी का विशद् प्रवचन हो रहा है।

'समयसार' पर प्रवचन करते स्वामीजी को अतिशय उल्लास आ जाता है। पढ़ते-पढ़ते क्षण भर के लिये तो आप स्व में स्थिर हो जाते है। तब ऐसा लगता है कि आप शास्त्र प्रवचन नहीं, परन्तु अपने अनुभव की बात कर रहे है। अभी क्षणभर पहिले.... आपके अनुभव में क्या आया.... उसी को आप वचनों द्वारा प्रगट करते हैं। आपका कहना है कि समयसारजी की प्रत्येक गाथा मोक्ष की प्राप्ति करा दे ऐसी है। 'समयसार' में तो ज्ञानियों का हृदय खोलकर रख दिया गया है। जिसे एक बार 'स्व समयसार' की रुचि हो जाये उसे फिर जगत के किसी भी पदार्थ में रुचि नहीं रहती है।

निज शुद्धात्म तत्त्व ही रुचिकर है, सुंदर है, अलौकिक है, महा महिमावन्त पदार्थ है। अतिशय अद्‌भुत आश्चर्यवन्त पदार्थ यदि कोई है तो वह निज शुद्धात्म तत्त्व ही है। उसकी तुलना में जगत के सारे पदार्थ तुच्छ है, हेय है।

श्री 'समयसार' शास्त्र आत्म-स्वभाव का अद्वितीय ढंग से सम्पादन करता है। देखिये.....

अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूवी।
णवि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमित्तिपि. ॥

तथा

जो पस्सदि अप्पाण अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेइं।
अपदे स सन्तमज्झं पस्सदि जिणसाणं सव्वं॥

जो पुरुष अपनी आत्मा को अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, अविशेष, नियत और असंयुक्त देखता है, वह सर्व जिनशासन को देखता हैं। अर्थात् जो अपनी आत्मा को इन पाँचों विशेषणों सहित अनंत गुण युक्त, अभेदरूप से जानता है और अनुभव करता है, उसने जिनशासन के सारे रहस्य को समझ लिया। हाँ भाई! करना भी तो यही है.... अपनी आत्मा में.... अपनी अनुभूति.... यह जिसने कर ली उसने जिनवाणी के मर्म को पा लिया।

'समयसार' शास्त्र में 9 तत्त्वों का वर्णन करने के साथ-साथ कर्ताकर्म का वर्णन करके तो कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने कमाल ही कर दिया। मिथ्यादृष्टि जीव की पर पदार्थ के साथ की एकबुद्धि है उस पर तो कर्ताकर्म अधिकार ने कुठाराघात करने जैसा काम किया है। वास्तव में जबतक पर पदार्थ के साथ की एकत्वबुद्धि और कर्तृत्वबुद्धि टूट नहीं जाती, तब तक मिथ्यात्व का अभाव नहीं होता और सम्यक्त्व का अविर्भाव नहीं होता है। अधिकार के द्वारा कुन्दकुन्दस्वामी ने तो हमें नई दृष्टि प्रदान कर सम्यक् ज्ञान के प्रकाश में लाकर खड़ा कर दिया है। ''आत्मा'' शरीर, मन, वाणी की क्रिया का कर्ता तो है ही नहीं क्योंकि उसके साथ तो अत्यन्त अभाव हैं। परन्तु अज्ञान दशा में होनेवाले रागादिक परिणमों का भी कर्ता नहीं है। इतना ही नहीं आत्मा को शुद्ध परिणमों का कर्ता भी उपचार से कहा गया है। पर्याय का कर्ता पर्याय हैं द्रव्य नहीं; पर्याय की तत्समय की योग्यता ही उस पर्याय की उत्पादक हैं। इतनी परम निरपेक्षता की, स्वतंत्रता की ओर स्वाधीनता की बात कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने की है।

भगवान अमृतचंद्राचार्यदेव ने भी आत्मख्याति टीका के अंत में परिशिष्ट लिखकर आत्मा की अनंत शक्तियों में से 47 असाधारण शक्तियों का अद्‌भुत विवेचन कर आत्मा की ख्याति एवं महिमा को

स्पष्ट करने का सफल प्रयास किया है। यदि भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने समयसाररूप भव्य प्रासाद का निर्माण किया है तो अमृतचन्द्राचार्य ने भी उस पर कलश चढ़ाकर ध्वजा फहराने का कार्य किया है। 47 शक्तियों पर प्रवचन करते समय तो स्वामीजी का अंत:करण गद्-गद् हो जाता है; आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव का रंग चढ़ जाता है कि बस देखते ही बनता है। अपने साथ-साथ श्रोताओं को भी वे मंत्रमुग्ध कर आत्मा की मस्ती में डुबो देते हैं।

श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव, अमृतचंद्राचार्यदेव, समन्तभद्राचार्य, उमास्वमी, योगीन्दुदेव आदि अनेक आचार्यों के रचे हुए सहस्त्रों शास्त्र आपने पढे है, चारों अनुयोगों के ग्रंथ पढ़े हैं और उन्हीं ग्रंथों में से आपने हजारों न्याय निकाले हैं.... जिन भावों से तीर्थंकर नामकर्म बँधता है, वह भाव भी हेय है। शरीर के रोम रोम से तीव्र रोग होना, वह दु:ख ही नहीं है; दु:ख का स्वरूप तो अलग ही है। मेरे प्रवचनों को बहुत से जीव समझें तो मुझे लाभ हो ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि उपदेशक हैं। इस दु:ख को समतापूर्वक सहन नहीं करूँगा तो नवीन कर्म बँधेंगे इस अभिप्राय से समता रखना वह भी सच्ची समता नहीं है। पंचमहाव्रत के पालन का जो शुभ विकल्प है, वह पुण्य बंध का कारण है।

प्रत्येक प्रवचन में स्वामीजी सम्यक् दर्शन पर बहुत जोर देते है। वे कहते है कि शरीर की चमड़ी निकालकर उस पर नमक छीटनेवाले पर भी क्रोध नहीं किया, इस प्रकार का व्यवहार चरित्र इस जीव ने अनंत बार पालन किया हैं। परन्तु सम्यग्दर्शन एक बार भी पाया नहीं। लाखों जीवों को हिंसा से मिथ्यात्व का पाप अनंत गुणा अधिक है। लाखों-करोड़ों जीवों में सम्यग्दृष्टि जीव विरले ही होते है। सम्यग्दर्शन इतना सरल नहीं है जितना कि अज्ञानी समझता है।

मोक्ष अर्थात् परम सुख का कारण सम्यक् चरित्र है,सम्यक् चरित्र का कारण सम्यग्दर्शन है, सम्यग्दर्शन का कारण तत्त्वज्ञान व तत्त्वविचार है और तत्त्वज्ञान का कारण सर्वज्ञ वीतराग कथित आगम का अभ्यास है। इसीलिए मोक्षमार्ग में पहला उपाय आगम का अभ्यास है। इसीलिये मोक्षमार्ग में पहला उपाय आगम-अभ्यास कहा है; अत: यथार्थ बुद्धि द्वारा निर्णय सहित आगम का अभ्यास करना हमारा प्रथम कर्तव्य हैं।

कहते है गुरु बिना ज्ञान नहीं और ''गम पडया बिना आगम पण अनर्थकारक थइ पड़े''। आगम के आर्ष वचन तो है परंतु उनका रहस्य तो ज्ञानियों के हृदय में होता है शास्त्रों के अर्थ करने की प्रद्धति का सही ज्ञान न हो तो अज्ञानी जीव शास्त्र को भी शस्त्र बना लेता है और स्वच्छंदी बन आत्मघात करता रहता हैं। आज के समय में स्वामीजी सही मायने में ''आगमपथ प्रदर्शक'' है; मोक्षमार्ग के प्रणेता एवम् तत्पथानुगामि भी है।

पूज्य स्वामीजी को वीतरागी जैनधर्म पर अनन्य श्रद्धा है। अपने अनुभव के बल पर निकलती हुई उनकी न्याय से भरपूर वाणी अच्छे-अच्छे नास्तिकों को भी विचार करने पर मजबूर कर देती है। आपका कहना है.... ''जैनधर्म को संप्रदाय नहीं है, यह तो विश्वधर्म है। वस्तुस्वरूप का सच्चा दिग्दर्शक तो केवल जैनधर्म ही है। सनातन दिगम्बर जैन धर्म ही सच्चा जैन धर्म हैं अंतरंग और बहिरंग दिगम्बरता (अपरिग्रहता) के बिना कोई भी जीव मोक्ष नहीं पा सकता'' यह उनकी दृढ़ मान्यता है।

स्वामीजी कहते हैं ''मुझ पर भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव का और उनके रचे हुए समयसारादि शास्त्रों का महान उपकार है। मैं तो उनका दासानुदास हूँ।'' ऐसा तो वे भक्तिभरे हृदय से अनेक बार

कहते है। स्वामीजी सच्ची समझ पर भी बहुत भार देते है, प्रथम समझो, यथार्थ ज्ञान बिना व्रत, नियम, संयम, आदि निष्फल हैं।

गुरुदेव को 'समयसार' अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय है। अजी क्या कहूँ समयसार ही स्वामीजी का जीवन है। उनकी वाणी में समयसार है, श्वासोच्छवास में समयसार हैं। उनकी हृदय वीणा के तार 24 घंटे समयसार के सुर सुनाते हैं, गीत सुनाते हैं। उनके रोम-रोम में समयसार समाया हुआ है। समयसार उनकी अंतरात्मा है। उन्हें निशदिन धुन रहती है तो वह समयसार की ही। उनकी दृष्टि सदा समयसार पर ही रहती है। 'समयसार' तो उनका जीवन साथी है। अहो! समयसार' तो मोक्षधाम में चलने के लिये एक रोशनी है। यही 'समयसार' आपको शीघ्र ही 'समयसार' (द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्म से रहित शुद्ध आत्मा तीर्थंकर पदवी सहित परमात्मा) बना देगा, इसमें दो राय नहीं है।

पूज्य कानजीस्वामी भारत की महान प्रतिभाशाली विभूति है। बालब्रह्मचारी कहान गुरुदेव एक अध्यात्ममस्त आत्मानुभवी पुरुष हैं। आत्मानुभव उनके प्रत्येक शब्द में प्रतिबिंबित होता है। स्वामीजी भारत के अद्वितीय नर रत्न हैं। अधिक क्या कहें भारतभूमि के आंगन में शीतल छायायुक्त वाँछित फलदाता कल्पवृक्ष फलित हुआ है।

अंत में.... हमारा जीवन भी स्वामीजी के जीवन सदृश ही 'समयसारमय' बन जावे ऐसी भावनासहित 'समयसार स्वरूप' कहान गुरुदेव को..... सविनय प्रणाम। ●

'दिव्य प्रकाश रश्मि'

डॉ. राजेन्द्रकुमार बंसल

धर्म जब भावहीन शरीरादि क्रियाओं तक ही सीमित रह जाता है तो उसके द्वारा आत्म कल्याण की आशा करना तो दूर रहा वह स्वयं रूढ़ि एवं परम्परा के जाल में उलझकर इतना विकृत हो जाता है कि कालान्तर में वह अपना स्वरूपात्मक अस्तित्व खो बैठने की स्थिति में पहुँच जाता है। 'धर्म' यदि वह सच्चे अर्थ में 'धर्म' अर्थात् 'स्वभाव' रूप है तो वह कदापि विभावरूप विकृतियों में अपने को परिणत नहीं होने देगा। ऐसी स्थिति में धर्म के बाह्य क्रियात्मक रूप जितने भी होंगे वह सब स्वरूप प्राप्ति के साधक एवं सहयोगी होंगे न कि बाधक। जब हम मुक्ति, कल्याण या मोक्ष की चर्चा करते हैं, तो हमारा तात्पर्य सदैव आत्मा के सम्बन्ध में होता है न कि शरीर के जिन शासन में आत्म कल्याण के शाश्वत् पथ को वीतराग विज्ञान या आत्म-विज्ञान के रूप में सम्बोधित किया गया है। जिस प्रकार जड़ पदार्थों का विश्लेषण एवं व्याख्या आदि का कार्य भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान एवं वनस्पति आदि अन्य विज्ञान करते हैं। उसी प्रकार आत्मा की शुद्धि का विश्लेषण एवं व्याख्या आत्मविज्ञान या वीतराग-विज्ञान करता है। विज्ञान शब्द विशिष्ट, क्रमबद्ध एवं कार्य-कारण सहित अध्ययन एवं अन्वेषण का सूचक है। वीतराग-विज्ञान आत्मा का धर्म अर्थात् स्वरूप को बताकर उसकी वर्तमान अशुद्ध अवस्था का अनुसंधान करता है, अशुद्धता का कारण खोजता है, और शुद्धता हेतु मार्ग दशार्ता है। यह अनुसंधान एवं आत्म शुद्धिकरण की प्रक्रिया एक साधक ही दृष्टि से तब तक चलती है, जब तक कि वीतरागता का लक्ष्य प्राप्त नहीं हो जाता ।

वीतरागता का लक्ष्य सम्यक् दर्शन-विज्ञान-चरित्ररूप मुक्ति पथ के अवलम्बन द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। चूँकि प्रश्न आत्म कल्याण का है। अत: संक्षेप में आत्म के धर्म एवं गुणों के प्रति आस्था एवं श्रद्धा, आत्म का ज्ञान तथा आत्मलीनता यही मोक्षमार्ग है। यह बात बहुत सीधी एवं सरल है। जब हमारी रुचि धनोपार्जन की होती है तो हम धन प्राप्ति के साधनों का ज्ञान करते हैं और फिर उनका उपयोगकर धनार्जन करते हैं। इसी प्रकार आत्म शुद्धि की उत्कृष्ट इच्छा होने पर सर्वप्रथम यह आवश्यक हो जाता है कि हम यह जाने कि आत्मा क्या है? और किसकी हम शुद्धि करना चाहते है? आत्मा का साक्षात्कार किये बिना हम उसके प्रति श्रद्धावान नहीं हो सकते। आत्मा का साक्षात्कार शरीरादिक व बाह्य जड़ क्रियाओं के माध्यम से सम्भव नहीं है क्योंकि वह अतिइन्द्रिया है। शरीरादिक स्वयं अचेतन होने के कारण चेतन के ज्ञान का कारण कैसे बन सकते हैं? इसके लिये तो हमें अपने प्रकट सम्पूर्ण ज्ञान शक्ति को बाह्य ज्ञेय पदार्थों की ओर से खीचकर अंतर्मुखी करना होगा और इस प्रकार उसे आत्म केन्द्रित कर आत्म साक्षात्कार करना होगा। अब आत्मा से एक बार साक्षात्कार हो जाता है तभी हमारी आत्मा के प्रति सच्ची श्रद्धा होती है। यह आत्म श्रद्धान ही सम्यक् दर्शन है। यही प्रक्रिया प्राथमिक आत्म अनुसंधान की है जहाँ से धर्म प्रारम्भ होता है।

आत्म साक्षात्कार या आत्म अनुसंधान की यह प्रक्रिया अनेक स्तरों से पार होती हैं। इसमें तीर्थंकरों के माध्यम से आत्मा के अनंत ज्ञान, आनन्द, सुख एवं शक्ति के प्रति श्रद्धा-भक्ति आत्म साक्षात्कार युक्त सच्चे गुरुओं का सानिध्य, आत्म शुद्धि परक शास्त्रों का पठन, तत्व अभ्यास एवं आत्मचिंतन आदि ऐसे प्रमुख चरण हैं जिनका अवलम्बन लेकर आत्म साधक आत्म साक्षात्कार करता है। आत्मा

साक्षात्कार करने के पश्चात् जो हमारा ज्ञान होता है वही सच्चा ज्ञान बन जाता है जिसे सम्यक्ज्ञान कहा जाता है। इसके उपरान्त ज्यों-ज्यों साधक आत्म साक्षात्काररूप शुद्धोपयोग में लीन होता हुआ आत्म शुद्धि में वृद्धि करता जाता है, आत्मविकारों से उसकी मुक्ति होती जाती है और वह क्रमिकरूप से समस्त विकार-विभावरूप कर्म-मल से अपने को पृथक् करता हुआ अपने अनंत ज्ञान-आनन्द आदि दिव्य गुणों को प्राप्त कर लेता है। यह शुद्धोपयोगरूप आत्मलीनता ही सम्यक्चारित्र है। इस प्रकार आत्मा अपनी शुद्धता के चरम लक्ष्य, मुक्ति या परमात्मा पद को उक्त पद्धति द्वारा प्राप्त करता है।

आत्म शुद्धि की प्रक्रिया में संलग्न आत्म साधक मुख्यत: गृहस्थ एवं श्रमण मुनि के रूप में पाये जाते हैं। यह दोनों साधक आत्म श्रद्धान एवं ज्ञान की दृष्टि से समान स्तर के होते हैं किन्तु आत्मलीनता या चारित्र की दृष्टि से दोनों में अंतर होता है। गृहस्थ श्रावक को आत्म साक्षात्कार या आत्मानुभव विशेष-विशेष काल के अन्तर से कभी-कभी ही होता है किन्तु श्रमण मुनि को ऐसा आत्मानुभव अल्पकाल के अंतर से बार-बार होता है। मुनि दशा के आस्तित्व के लिए तो यह अनिवार्य है कि उन्हें प्रत्येक अंतर्मुहुर्त अर्थात् प्रति 48 मिनिट के अन्तराल पर एक बार आत्मानुभव निश्चित ही हो। यदि ऐसा सम्भव नहीं होता तो भावदृष्टि से मुनि दशा ही खंडित हो जाती है यद्यपि बाह्य भेष मुनिरूप ही दिखता है। आत्मानुभवहीन ऐसे मुनि वेष से अव्रती सम्यक्त्वी गृहस्थ निश्चित ही उत्कृष्ट होंगे जो मिथ्यात्व एवं अज्ञान से अपने को बचाये हुये हैं। गृहस्थ एवं श्रमण मुनि के मध्य बाह्य आचार में भी अन्तर है। जो व्रत एवं क्रियाओं पर आधारित है। गृहस्थ मद्य-मांस-मधु के त्यागी एवं पांच अणुव्रत के धारी होते हैं। जबकि मुनि पांच महाव्रत युक्त 28 मूलगुणों का पालन करते हैं।

यह है वीतराग विज्ञान या आत्म-विज्ञान का पथ एवं पाथिक का संक्षेपसार जो अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर की दिव्य ध्वनि से प्रतिपादित एवं अनुभवगम्य है।

आधुनिक संदर्भ में जब हम आत्म साधकों का विश्लेषण या अवलोकन करते हैं तो हम अपने को निराशा के गहन गहर में पाते हैं। कितने ऐसे गृहस्थ साधक हैं, जिन्होंने आत्म साक्षात्कार करके आत्म के प्रति श्रद्धान किया है? या इसकी वास्तविकता को समझकर उसका प्रयास कर रहे हैं? एवं कौन ऐसे प्रातः स्मरणीय परम श्रद्धेय श्रमण मुनि हैं जो हर अंतर्मुहुर्त में आत्मानुभव करते हुए शुद्धोपयोग में लीन रहते हैं? इस प्रश्न का उत्तर भगवान महावीर के प्रत्येक कथित अनुयायी या आत्मसाधक को अपने वर्तमान पद एवं भूमिका के संदर्भ में देना है। आत्मा, आत्मानुभव एवं शुद्धोपयोग की चर्चा करते ही जिनका मन उद्धिग्न हो जाता है एवं मानसिक संतुलन भंग हो जाता है। वह किस सीमा तक अपने को छल रहें हैं (समाज को तो भ्रमित कर ही रहे हैं) और अपना भव-भ्रमण बढ़ा रहे हैं, यह प्रश्न विचारणीय है। इनकी बाह्य व्रतादिक क्रियाओं का भी रूप कम विकृत नहीं है। गृहस्थ जीवन त्यागनेवाले उत्कृष्ट आत्म साधकों की दैनिक चर्चा लौकिक पत्र-पत्रिकाओं के गठन से प्रारम्भ हो, भवन-मन्दिरों के निर्माण, स्व साहित्य प्रकाशन एवं यशकीर्ति के कार्यों में जिनका अधिकांश समय व्यतीत हो, गृहस्थावस्था के त्यागे परिग्रह से अधिक परिग्रह जिनके बाहर काल में साथ चले तथा वीतरागी महापुरुषों के कथानकों में अवीतरागता के पोषक साहित्य के प्रति जिनका अनुराग एवं समर्थन हो, ऐसे आत्म साधक कहाँ तक निज कल्याण एवं समाज का पथ प्रदर्शन करेंगे यह भी कम विचारणीय नहीं है। गृहस्थ साधकों का बाह्यचार भी कम विकृत नहीं है।

असत्याचरण, अनीति, शोषण एवं कानून उल्लंघन की भ्रष्ट क्रियाओं से धनोपार्जन, असंयमित एवं अमर्यादित जीवन, भोग-यश कीर्ति एवं बाह्य प्रदर्शन की उत्कृष्ट लालसा, मिथ्या मान्यता युक्त पाप-पुण्य के भावों में झूलता हुआ हिंसा-परिग्रही आचरण आदि विकृतियाँ उनके जीवन में सहज ही दृष्टव्य हैं, जो व्यक्ति के साथ समाज व्यवस्था को भी कलुषित कर रही हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि काल के प्रवाह में धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं की परम्परा एवं प्रथाओं में जड़ता आती हैं। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि जड़ता इस सीमा तक पहुंच जाये कि वह संख्या अपना अस्तित्व ही गवाँ बैठे। आत्मकल्याण परक धर्म के ऊपर शरीरादिक जड़ क्रिया का वर्चस्व हो जावे; आत्म शुद्धि का लक्ष्य धन, पुत्र, वैभव एवं शरीरादिक भोगों में परिणत हो जावे; प्रवृतित मूलक आत्मोन्मुखी शुद्धि की प्रक्रिया निवृत्ति मूलक शरीरोन्मुखी जड़ हो जावें; अज्ञान, राग-द्वेष-मोह तथा असंयम को दूर करनेवाला धर्म इनके भी बाहुपाश में जावें तथा विश्वकल्याण परक कल्याण मार्ग जन्मजात कुछ व्यक्तियों द्वारा कैद कर पंगु एवं प्राणहीन कर दिया जावें ? यह कैसी विडम्बना हैं। दुर्भाग्य से, भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित आत्म-विज्ञान की वर्तमान अवस्था कुछ इसी प्राकर प्रतीत हो रही है।

आत्म विज्ञान के पराभव के ऐसे काल में अंधकार में प्रकाश ही एक किरण तब प्रस्फुटित हुई जब आज से लगभग 55 वर्ष पूर्व अर्थात् सन् 1920 में स्थानकवासी आचार्य बालब्रह्मचारी श्री कानजीस्वामी को जब ''समयसार'' नामक ग्रंथ की एक प्रति संयोग से प्राप्त हुई। यह ग्रंथ लगभग दो हजार वर्ष पूर्व श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा लिखा गया और जिसकी आत्मख्याति नामक संस्कृत टीका

लगभग एक हजार वर्ष पूर्व श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेव ने की थी। इस ग्रंथ ने उनके मन की पूर्व आस्थाओं को हिला दिया और उन्हें ऐसा अनुभव हुआ कि वह अश्रद्धान एवं अज्ञान के ऐसे समुद्र में गोते लगा रहे हैं जिसका कोई किनारा ही नहीं है। उनका निष्कपट दुराग्रह एवं पूर्वाग्रह रहित मन व्यथित हो उठा जिसकी चरम परिणति अनेक साथियों सहित उनकी दिगम्बर जैन दीक्षा के रूप में हुई। अब तक वह अहर्निश अध्यात्म शास्त्रों के पठन, मनन, आत्म चिंतन तथा आत्म साक्षात्कार के कार्य में लीन रहते हुये वीतराग-विज्ञान का उपदेश देकर पामर अज्ञानियों को मुक्ति का मार्ग दर्शा रहे हैं। उन्होंने श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा रचित अन्य ग्रंथों सहित ''समयसार'' ग्रंथ पर 17 बार प्रवचन किये। इस प्रकार श्री स्वामी ने एक हजार वर्ष के अन्तराल से अपनी प्रवचनरूपी ध्वजा का आरोहण श्रीअमृतचन्द्राचार्यकृत आत्मख्याति नामक समयसार की संस्कृत टीका एवं समयसार कलशरूप उस कलशबद्ध शिखर पर किया जिसका निर्माण ''समयसार'' ग्रंथरूप परमागम भवन पर किया गया था। हजार वर्षों के क्रमिक व्यवधान के उपरान्त भी आत्मतत्त्व का स्वरूप एंव उसके निरूपण में भावनात्मक एवं तथ्यात्मक समानता अद्धितीय एवं अद्‌भुत हैं, जो इन तीन महान पुरुषों की, भूमिका में भेद होते हुए भी, एक कड़ी में पिरोकर सम्बद्ध करता है। ठीक भी है सत्य काल के प्रवाह से अप्रभावित, कालातीत तथा त्रैकालिक होता हैं। यही उसकी विशेषता है।

श्री कानजीस्वामी के तत्त्व चिंतन की गहराई, सरलता, निश्छलता, आत्मोन्मुखी वृत्ति तथा तत्त्व प्रेमी बन्धुओं के प्रति प्रगाढ़ स्नेह का परिणाम है कि सहस्त्रों जैन-जैनेतर वृत्ति तथा तत्त्व प्रेमी बन्धुओं ने आत्म-विज्ञान को समझा, जाना, श्रद्धान किया और उसका अनुसरण

कर रहे हैं, जबकि भावहीन शरीर क्रिया परक बुद्धि के धनी महानुभावों की ऐसी दयनीय स्थिति है कि वह अपनी संतति से, तत्त्व ज्ञान तो दूर, कथित धार्मिक क्रियाओं का अनुसरण करवा पाने में अपने को असहाय पा रहे हैं। आध्यात्मिक पथ प्रदर्शक श्री कानजीस्वामी ने आत्मा के गूढ़ रहस्य को जन-जन के मन का विषय बनाकर जैनधर्म को ''जैनधर्म'' के रूप में प्रतिष्ठापित किया है। उन्होंने जन्मजात पैत्रिकता में कैद धर्म को प्रचार परक स्वरूप प्रदान किया है। उनके सद्प्रयास एवं सतत् साधना से तत्त्व प्रचार की अद्भुत तरंगे जन-मानव को आर्विभूत किये जा रही हैं। जिनमें अज्ञान, अश्रद्धान, अंधविश्वास, असंयम एवं अमर्यादित आचार तिरोभूत हो रहा। इसे एक महान धार्मिक क्रान्ति के रूप में प्ररूपित किया जा सकता है, जिसका सम्पूर्ण श्रेय श्री कानजीस्वामी के निष्ठावान दृढ़, निर्मल अनेकांतिक तथा पुरुषार्थी आत्मस्वभावोन्मुखी व्यक्ति को है, जो विरोधों के झंझावतों में भी अकंप-निश्चल एवं अडिग रहा। आवश्यकता है समय रहते हम उनके कर्तृत्व के महत्त्व को समझें, प्रेरणा लें और आत्मविज्ञान के प्रचार-प्रसार में उनका सहयोग करें। यदि हमने अपने दृष्टिकोण को विशाल नहीं बनाया तो निश्चित ही इतिहास हमें क्षमा नहीं करेगा। अध्यात्मवाद के ऐसे निमोर्ही महान आत्मसाधक को मेरा कोटिश: प्रणाम जिसके सद्प्रभाव के कारण मुझमें उक्त पंक्तियां लिपिबद्ध करने की सामर्थ्य हुई। ●

मोक्ष-पथ के राही

- पं. ज्ञानचंद जैन, जबलपुर (म.प्र.)

अध्यात्म मनुष्य जीवन की आश्यकता है, सहजता है, शान्ति है, सुख है और संतोष है। अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मनुष्य अडोल और अकम्प बना रह सकता है तो केवल अध्यात्म की वृत्ति द्वारा, आत्मा की चिरन्तन आराधना द्वारा धर्म का मूल तत्त्व यानी अध्यात्म अर्थात् आत्मतत्त्व की यथार्थ जानकारी कुछ दिनों से जैनियों में भी विस्मृत हो चली थी और केवल धर्म के नाम पर कुछ रूढ़ियों का पालन ही शेष रह गया था। परन्तु धर्म के मूलभूत तत्त्व और रहस्य के अनुभवन का जो वातावरण आध्यात्मिक संत प्रवर कानजीस्वामी ने कुछ दिनों से पुन: उद्धत किया है, वह अत्यंत संतोष और हर्ष की बात हैं। लोगों को सहज धर्म के स्वरूप का सहजतया वर्णन और अवधारण करा देने के यश:कार्य में स्वामीजी का जो बहुमान किया जाय वह थोड़ा है। स्वामीजी ने, मनुष्यों को अपने जीवन में धर्म का धारण करना कठिन है, धर्म का पालन करना कठिन है इत्यादि भ्रान्त धारणाओं को जड़ मूल से उखाड़ दिया है। उनका प्रचण्ड उद्घोष है कि आत्मा का धर्म आत्मा धारण न कर सके यह सर्वथा असंभव है। सीधे-सादे नपे तुले शब्दों में वे तत्त्व की बात कहते हैं कि भाई यदि हलुवा बनाना हो तो पहले आटे को घी में सेंकना पड़ेगा और बाद में उसमें शक्कर का पानी डालना पड़ेगा ऐसे तो हलुवा बन सकता है, परन्तु कोई शक्कर का पानी आटे में डाल दें और बाद में घी डाले क्योंकि उसे ऐसा लगता है कि पहले घी आटे में डालने से दिखता तो है नहीं और खर्च ज्यादा हो जाता है यदि बाद में डाला जावे तो खर्च कम होगा और दिखेगा अधिक, परन्तु ऐसा करने से हलुवा बनना तो दूर रहा कूपरी भी अच्छी तैयार नहीं हो

सकेगी। इसी प्रकार आत्मा में धर्म का स्वरूप प्राप्त करने को पहले सम्यग्दर्शन रूप घी डालना पड़ेगा। बाल सुलभ भाषा में वे नारियल का भी उदाहारण देते हैं कि आत्मा का स्वरूप तो नारियल के खाद्य शुक्कोश के समान अंत में सुरक्षित है। बाहर के जटा जूट नरेटी और शुक्कता के ऊपर लालिमा की परत वह नारियल नहीं, नारियल के साथ पाये जानेवाले नारियल से पृथक् विकार हैं शरीर आत्मा नहीं, ज्ञानावरणदि कर्म आत्मा नहीं और रागद्वेषादि भाव भी आत्मा नहीं। इतना ही नहीं आत्मा में उत्पन्न होनेवाली आत्मा का शुद्ध पर्याय भी आत्मा नहीं क्योंकि वह क्षणिक है और त्रैकालिक। अनादिकालीन भ्रम और भ्रान्त धारणाओं को समूल उन्मूलन करने में सक्षम कानजीस्वामी की इस वाणी का हमारी परंपरा के ही कुछ व्यक्तियों द्वारा विरोध किया जाना कहाँ तक संगत है और उचित है हमारी समझ में न आ सकने योग्य बात है परन्तु ऐसे समय और प्रसंग में हम सबको ध्यान देकर विचारना है कि कानजीस्वामी के विरोध के धोखे में हम वीतराग भगवान के तत्त्वदर्शन की ही विराधना तो नहीं करने लग गये हैं। मनुष्य को अपनी वर्तमान स्थिति से ऊँचा उठाने के लिए लौकिक दृष्टि से भी उसमें अविद्यमान ऊँचाइयों और अच्छाइयों का गुणगान किया जाता है, जिससे कि वह प्रगतिशील कदम उठा सके। फिर कानजीस्वामी तो हमेशा ही आत्मा में विद्यमान गुणों की महिमा का ही मंगलमयगान करते हैं, उनसे हमारा विरोध क्यों और कैसे उचित हो सकता है।

कानजीस्वामी ने तो अपनी कुल परम्परा से प्राप्त कुसंस्कारों को और विपरीतताओं की तिलांजलि दी है। हम अंध विश्वास की कारा से निकलें यथार्थ को पहिचानें तो कानजीस्वामी के संबंध में जो विपरीत धारणायें मन में विद्यमान हैं, वे समाप्त हो जावेगी। हम

अपनी अपने धर्म की ही बात कानजीस्वामी के मुख से सुनते हैं, कोई निराला और बेहूदा सत्य नहीं। धर्म की नींव पर आधारित वस्तु तत्त्व का प्रखर विश्लेषण करनेवाले महापुरुष श्री कानजीस्वामी चिरायु हों।

मंगल कामना

''आत्म धरम जिन ज्योति जगा शुभ
मिथ्या तम हर, दे उपदेश।
वीतराग दर्शन फैलाया प्रवचन-मंदिर
बात जिनेश॥
सोन सुगढ़ सौराष्ट्र केसरी
बाल-ब्रह्मचारी विद्वान्—
समयसार के कुशल प्रवक्ता,
चिरजींवी हो श्री मद् कहान''

सौभाग्यमल दोशी, अजमेर (राज.)

महान् सन्त श्री कानजीस्वामी

- बसन्तलाल नरसिंहपुरा (बम्बई)

भारतीय संविधान की 26वीं धारा के अनुसार किसी भी नागरिक विधि के अनुसार किसी भी तरह से धार्मिक उपासना कर सकता है। उसी के अनुसार कानजीस्वामी द्वारा जैन धर्म का प्रचार हो रहा हैं। जैन समाज में, विशेषत: सौराष्ट्र में, आज घर-घर की बात हो गया है। कहा जा रहा है—''सोनगढ़ से चला एक जैन संत। अहिंसा का व्रतधारी, आइये हम सब उसके सत् मार्ग का अध्ययन करें।''

संत श्री कानजीमहाराज का जन्म सौराष्ट्र के ऊमराला ग्राम में वैशाख शुक्ल पक्ष की द्वितीय को संवत् 1946 में हुआ था। साधु-संतों के समागम और कौटुम्बिक धार्मिक प्रवृत्ति के कारण आप में बचपन से ही धर्म के प्रति श्रद्धा जाग्रत हुई और आपका समय सांसारिक विषय में न लगकर पाप, पुण्य, कर्ता, कर्म और उपादान को समझने में ही लगा रहता था। इतने से ही आपको संतोष नहीं हुआ। श्रद्धा और जिज्ञासा का अविरत 'युद्ध' आपके मन में हमेशा रहा। इस तरह इस महान आत्मशोधक का चित्त सांसारिक विषयों से बिल्कुल दूर रहने लगा। अंत में 24 वर्ष की आयु में ज्ञान—उपासना के लिये गृहत्याग कर, दीक्षा ग्रहण की और स्थानकवासी साधु बने।

दीक्षा के बाद

आपने साधु-दीक्षा अवश्य धारण की, परन्तु मन की कशमकश अर्थात् श्रद्धा और जिज्ञासा के भावों की लड़ाई ने आपको अनेकानेक शास्त्रों के पठन-पाठन में ही लीन रखा और इस तरह इनका आत्मशोधन कार्य निरन्तर चालू रहा। जैन धर्मावलंबी संत होने के नाते आपका शरीररूपी इस पुद्गल को ईंधन देने में बाधा महसूस नहीं हुई, परन्तु मन की शांति प्राप्त करने के लिए, जितने भी शास्त्र

आपके हाथों में आये, पढ़ डाले। फिर भी पुण्य, पाप ,कर्त्ता, कर्म और उपादान का झगड़ा मन में वैसा का वैसा ही बना रहा। अंत में श्री दिगम्बर जैनाचार्य श्री कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा लिखित श्री समयसार ग्रंथ आपके हाथों पड़ा और मनन के बाद श्रद्धा और जिज्ञासा की मैत्री हुई अर्थात् समाधान होने पर वास्तविक मार्गदर्शन मिला।

संवत् 1991 में आपने दिगम्बर जैन धर्म के संप्रदाय को अपनाया। दिगम्बर जैन पंथ का साधु होना आसान नहीं है। इस पंथ को अपनाने के लिए एक साधु की 11 प्रतिमाएँ धारण करनी पड़ती हैं और अंत में शाश्वत निरंजन निराकार का रूप धारण कर नग्न दिगम्बर होना होता हैं। बाइस परिषह और बत्तीस अंतराय का पालन करना पड़ता हैं। जैन धर्म में ही नहीं विश्व के सभी धर्मों में त्यागी या व्रती का स्थान हमेशा श्रावक या ग्रहस्थ से ऊँचा होता है और हम सहज कह सकते हैं कि कानजीस्वामी दिगम्बर जैन समाज के ही नहीं बल्कि समस्त जैन समाज के वयोवृद्ध विद्वान त्यागी महापुरुष हैं।

उपदेश की विशेषता

श्री कानजी महाराज के गहरे अध्ययन, पठन-पाठन, विषय-प्रतिपादन, भाषा की सरलता, वाक्पटूता, सुस्मरण शक्ति और गहरे अनुभव की झलक उनके उपदेशों में मिलती है। यही कारण है कि आप समाज में महान बने और आपके दर्शन से जनसाधारण को आलौकिक शांति की प्रेरणा मिलती है। आत्म स्वभाव में अवस्थित परमात्म शक्ति को प्रकट करने की कुंजी आपके उपदेश से प्राप्त हो सकती है। आत्म-साधना और उसका सत्य उपदेश यही आपके जीवन का मुख्य कार्य है। इनके इस आत्म सन्देश को राष्ट्रपिता गांधी, कस्तूरबा और महादेवभाई देसाई ने भी सुना था। श्री ढेवर और मुरारजीभाई देसाई भी आपके उपदेश का श्रवण कर चुके हैं और श्री

लालबहादुर शास्त्री भी बम्बई में इनके उपदेशों से प्रभावित हुए थे।

आपके उपदेश का यही सार है कि आत्मा का वास्तविक स्वरूप समझो, जड़ चेतन की अत्यंत भिन्नता को समझकार तत्त्व सम्बंधी होनेवाली भूलों को दूर करो और साक्षात् सत्समागम से अत्यधिक प्रयत्न से, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को प्राप्त करो। मोक्षमार्ग का द्वार सम्यग्दर्शन से ही खुलता है।

सोनगढ़

आज सोनगढ़ (सौराष्ट्र) जैनियों का हरिद्वार अथवा ऋषिकेश बन गया है। आपने तीर्थभक्ति की उपासना के हेतु सारे देश का भ्रमण किया। जिस, ''गुजरात और सौराष्ट्र में दिगम्बर जैन मंदिर'' नहीं के बराबर थे, आपके प्रभावन से गाँवों और शहरों में नये दिगम्बर जैन मन्दिर बन रहे हैं। आज सारे सौराष्ट्र में ही नहीं बल्कि सारे भारत में आपकी इस धार्मिक लहर ने नया रूप लिया है। अन्य धर्मावलम्बी भी आपसे बहुत प्रभावित हुए हैं। यही कारण है कि भक्त भगवान् को बम्बई में भी पाँचवी बार सन् 1956, 1964, 1969, 1972, 1974, में खींच लाये और यहाँ भी आपके प्रभाव से चार नये मंदिर बने। आपके मानने वाले एक संगठन में—सूत्र में बँधकर स्थान-स्थान पर हाउसिंग कालोनी, व्यापार व्यवसाय के साधनों का सदुपयोग करके बन्धुत्व, मातृत्व भावना, मेल-जोल, विद्योन्नति आदि का कार्य कर रहे हैं। आपके उपदेशों का साहित्य गुजराती, हिन्दी और अन्य भाषाओं में मिलता है। इनकी पहुँच अपने देश में ही नहीं बल्कि अफ्रीका तक है।

संसार के सभी धर्मों में उतार-चढ़ाव आये हैं और सम्प्रदाय बने हैं, जैसे कैथोलिक, प्राटेस्ट और प्युरिटन, शिया और सुन्नी, महायन् और हिनयान, द्वैतवाद अद्वैतवाद और तांत्रिकवाद आदि जैनधर्म में

भी सर्वप्रथम दिगम्बर, बाद में श्वेताम्बर और स्थानकवासी आदि सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ और आज इस देश में सबको विधि के अनुसार बिना भेदभाव के अपने इच्छानुसार पूजा, और अर्चना करने का पूरा अधिकार है।

उद्धार की पुकार

आज आर्थिक विषमता के कारण, श्रद्धा और विश्वास के स्तम्भ टूट गये हैं। सर्वत्र लौकिक और भौतिक शिक्षा के कारण परमात्मा के डर का लोप हो रहा है। मंदिरों, मस्जिदों में भी चोरियाँ शुरू हो गयी है। मूर्तियों की अविनय, शिरोच्छेद आदि दुर्भाग्यपूर्ण घटनाएँ आये दिन घट रहीं हैं। प्राचीन जैन संस्कृति की रक्षा नहीं हो पा रही है। जयपुर के मंदिरों, पपौरा (बुन्देलखण्ड), उदयगिरि और खण्डगिरि (उड़ीसा) आजननेरी (महाराष्ट्र) श्रवणबेलगोला मुड़बद्री (मैसूर कर्नाटक) की जैन कला और संस्कृति मैसूर, कर्नाटक, आँध्र बस्ती और तमिलनाडू व केरल की कला और संस्कृति श्री कानजीस्वामी के समान सभी साधुओं और श्रेष्ठ वर्ग की ओर पुकार-पुकार कर कह रही है कि 'हे स्वामिन नई मूर्तियाँ न विराजमान करें, हम अपूजनीय अवस्था में है, हमारा उद्धार करें, नये मंदिरों में हमें विराजमान करें।

आशा ही नहीं विश्वास है कि श्री कानजीस्वामी इस जैन संस्कृति की कला और परम्पराओं की रक्षा का भार अपने ऊपर लेंगे। ●

महान् तत्ववेता

धन्नालाल जैन, ग्वलियर

उठ जाग मुसाफिर भोर हुआ सींमधर सूर्य उदय आया।
जिस ज्योति ने श्री कुन्दकुन्द श्री अमृतचन्द्र को प्रगटाया ॥1 ॥
जिस किरणावलि ने अध्यातम श्री कहान गुरू को समझाया।
जिनकी अमृत वाणी ने भव्य जीवों को स्वानुभव प्रगटाया ॥2 ॥
तीर्थंकर का है विरह पड़ा हमें दिव्य संदेश न मिल पाया।
वह विरह भुलाकर तीर्थंकर के तुल्य है अमृत पिला दिया ॥ 3 ॥
श्री समयसार श्री प्रवचनसार है नियमसार परमागम हैं।
पंचास्तिकाय श्री अष्टपाहुड़ का मर्म हृदय में सजा दिया ॥4 ॥
चेतन जड़ सभी भिन्न-भिन्न हैं अपने ही चतुष्टय।
ध्रुव स्थाई अविनाशी हैं क्रमबद्ध पर्याय बदलते हैं ॥5 ॥
निज शक्ति वही है उपादान जो कर्मरूप में परणति हों।
हे सभी निमित्तों उदासीन पर योग रूप में बने रहें ॥6 ॥
कोई न किसी को करै धरै स्वयमेव परिणमन होता है।
वस्तु स्वतंत्र सत् मर्म धन्य ज्ञानी धर्मी न समझाया ॥7 ॥
निज आत्म तत्वतौ अलिंगन ग्राह्य अनुपम ज्ञान तत्व ध्रुवशाश्वत।
रागादि जुद्धा पर ज्ञेय तत्वधन कहान गुरु ने समझाया ॥8 ॥

इतने वर्ष जिओ जितने हैं अम्बर में तारे!

शर्मनलाल 'सरस'

जाने क्या रहस्य है सचमुच, सद्गुरु की वाणी में।
स्वयं आत्मा खिंच आती है, जिनकी अगवानी में,
श्रीमद् रायचन्द्र, बापू की यह धरती कहती है—
चमत्कार होता आया है गुजराती पानी में॥

जहाँ जहाँ गये, आपने ऐसा जादू डाला।
जड़ तक को जिसने चेतन के, चिर रंग में रंग डाला,
देख सोनगढ़ महावीर मंदिर को दर्शक कहता—
मंदिर की दीवारों को भी, समयसार कर डाला॥
युग युग पाते रहें पार पाने को, वचन तुम्हारे।
यत्र तत्र सर्वत्र सभी मन से कर रहे इशारे—
'सरस' 87 वर्ष आपके, सचमुच में थोड़े हैं।
इतने वर्ष जिओ जितने हैं, अम्बर में तारे॥

अध्यात्म उपदेष्टा
पूज्य श्री कानजीस्वामी

शान्तिकुमार जैन, मौ (भिण्ड)

भारत वर्ष में आध्यात्म की धारा अविच्छिन्न रूप से सदा से प्रवाहित होती रही है। इस अध्यात्म धारा को प्रवाहित बनाये रखने के लिए समय-समय पर महामनीषियों का सद्भाव भी रहा है। विक्रम की पहली शताब्दी में श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने सीमंधरस्वामी से अध्यात्म का अमर संदेश प्राप्त कर अध्यात्म ग्रंथों की रचना कर और अमृताचन्द्राचार्य ने टीकायें बनाकर आत्म विस्मृत प्राणियों पर महान् उपकार किया है। इन्हीं अध्यात्म ग्रंथों से प्रेरित बहुत सा अध्यात्म साहित्य प्राकृत संस्कृत और हिन्दी आदि भाषाओं एवं उपभाषाओं में आज तक उपलब्ध है। पिछली कुछ शताब्दियों में ये बनारसीदासजी, दीपचन्दजी शाह, जयचन्द्रजी, दौलतरामजी, पण्डितप्रवर टोडरमलजी श्रीमद् रायचन्दजी आदि के द्वारा अध्यात्मिक ग्रंथों के आधार पर तत्कालीन-सरल, सुगम्य, भाषा में साहित्य-सृजित होकर अध्यात्म धारा आज तक प्रवाहित रही है।

गुजरात प्रान्त में सोनगढ़ के सुप्रद्धि अध्यात्म योगी श्री कानजीस्वामी के अध्यात्म जगत में महत उपकारों को भुलाया नहीं जा सकता। जिन्होंने अपनी अद्वितीय प्रतिभा से इस भौतकीय युग की अंधकारमय जगती पर विलुप्त प्राय: अध्यात्म धारा को पुन: प्रवाहित बनाये रखने का अदम्य कार्य किया है।

पूज्य श्री कानजीस्वामी ने सत्यार्थ वस्तु स्वरूप बताकर जीवों को सन्मार्ग प्रदर्शित किया है। वर्तमान युग के न्याय, व्याकरण, सिद्धान्तादि विषयों के किंचित ज्ञान से मदोन्मत-विद्वान् भी स्वामी जी द्वारा वस्तु स्वरूप का यथार्थ निरूपण-सुनकर दाँतों तले उंगुली दबा कर अपने सात मद चूर-चूर होता पाते हैं। वास्तव में बिना-भेद विज्ञान के ग्यारह अंगों और नौ पूर्वों तक का ज्ञान भी कल्याणकारी नहीं है। जिस प्रकार सर्वज्ञ भगवन्तों की वाणी का भावलिंगी सन्तों ने अभाव खटकने दिया, उसी प्रकार पूज्य श्री कानजीस्वामी ने अपने परम अमृतमयी अध्यात्म प्रवचनों से कुन्दकुन्दादि आचार्यों के वियोग को अखरने दिया है। आपने आबाल-वृद्ध के हृदय पटल पर अध्यात्म बीज बदल कर अध्यात्मरस सिंचित किया है। आपके द्वारा दिगम्बर धर्म के मूल तत्त्वों का उसी प्रकार सम्यक् प्ररखण हो रहा है जैसा कि सर्वज्ञ परमात्मा के ज्ञान में झलका है।

पूज्य श्री कानजीस्वामी आत्मानुभावी मेघावी जन हैं। आपने जैन शासन की जो प्रभावना की है, वह भूतकालीन 1000 वर्षों में भी नहीं हुई है। आत्म-विज्ञान रस के पिपासुजनों की प्यास ज्ञानरूपी अमृत से आपके द्वारा सहज ही में शान्त हो रही है। आपके प्रवचनों को सुनकर मुमुक्षु भी आत्मरस में विभोर होकर मोक्षपुरी की सैर करने का अनुभव करने लगते हैं। आगम का वास्तविक अभिप्राय क्या है? इसे पूज्य श्री ने ही समझा व समझाया है। आगम के अन्तररहस्य को समय के व्रती-महाव्रती तथा अन्य विद्वान स्पष्ट नहीं

कर पाये हैं, उसका रहस्य भी कानजीस्वामी ने चारों अनुयोगों के शास्त्रों का निचोड़ एकमात्र वीतरागता प्राप्त करना बताया है, और वीतरागता दो द्रव्यों के भेदज्ञान अथवा आत्मद्रव्य को जाने बिना प्राप्त नहीं हो सकती पूज्य गुरुदेव मुक्तिपथ में स्वयं प्रमाण कर रहे हैं और जगत के अन्य भव्य जीवों को भी आत्मशुद्धि रूप मंगलमय परम मुक्ति मार्ग प्रदर्शित कर रहे हैं।

जगत के सर्व द्रव्य उनके अनन्त गुण, उनकी पर्यायें प्रति समय की परिणति स्वतंत्र या निस्पेक्ष है। उनके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भी पूर्ण निरपेक्ष है। इससे वस्तु के यथार्थ स्वरूप का दिग्दर्शन जगत के जीवों को कराकर वस्तु स्वातन्त्र्य की उद्घोषणा कर रहे हैं। परद्रव्य और परभाव में एकत्व बुद्धि संसार परिभ्रमण कर कारण और स्वद्रव्य, स्वभाव का आश्रय मुक्ति कारण बताकर आप सदा निज शुद्ध चैतन्य में रमण करते हैं। आपके अध्यात्म उपदेश द्वारा भगवान महावीर के परम-जीवों को आत्म हितकारी मार्ग प्रशस्त हो रहा है।

वर्तमान काल में साक्षात् तीर्थंकर या केवली श्रुतकेवली भगवन्तों, निर्विवाद भावलिंगी संतों का सद्भाव नहीं है तथा धर्मात्मा जीवों का ही समागम अत्यन्त दुलर्भ है क्योंकि सम्यक्त्वधारी जीव इस क्षेत्र में पैदा नहीं होते हैं बल्कि आत्म विधारक या मिथ्यादृष्टि ही इस क्षेत्र में उत्पन्न होते हैं और मिथ्यात्व की बाहुल्यता से मिथ्यात्व के उपदेष्टाओं को सहज संयोग होने से मिथ्यात्व की ही पुष्टि हो रही है। अत: मिथ्या मान्यता के परित्यागी, सन्मार्गी बहुत अल्प दिखाई देते हैं। बल्कि सन्मार्ग के निषेधकों की ही बाहुलयता है। अनादि से मिथ्यात्व दशा को छोड़ने और सम्यक्त्व प्राप्ति का पुरुषार्थ अति दुर्लभ हो रहा हैं। ऐसे कठिन काल में पूज्य श्री कानजीस्वामी ने यथार्थ मोक्षमार्ग का दृढ़ता के साथ आगम युक्ति, अनुमान एवं अनुभव से स्पष्ट सख्त सुगम्य भाषा में निरूपण कर मुमुक्षुओं पर अति उपकार किया है।

आपका एक शब्द आत्मानुभव के रस में भीगा हुआ झरता हुआ सा प्रतीत होता है। देव, शास्त्र, गुरु की यथार्थस्वरूप की श्रद्धा और उनके प्रति अपार अनन्य भक्ति आपकी आत्म पवित्रता द्योतक है। अरहन्त स्वरूप में निज आत्मा की महिमा बतलाते समय ऐसा प्रतीत होता है कि मानों उनकी आत्मा अरहन्त बनने में संलग्न है। आपकी वाणी के वाक्य ''तू श्रद्धा में अरहन्त बन'' अरहन्त जो कर सकते हैं, वह तू भी कर सकता है अर्थात् अरहन्त भी ज्ञाता दृष्टा ही है और तू भी ज्ञाता दृष्टा ही रहकर अरहन्त बनने का पुरुषार्थ कर।

पूज्य श्री गुरुदेव ने अपने चारों ओर विपरीत वातावरण की कभी परवाह नहीं की और सत्य खोज कर अपने जीवन में उतारा तथा अन्यों को भी जीवन में उतारने की प्रेरणा दी। श्री स्वामीजी ने जैन सिद्धान्त तथा आगम का गहन अध्ययन किया है और जीवन का सबसे बड़ा भाग अध्ययन, मनन, चिन्तन में ही व्यतीत किया है। ऐसे महान् आध्यात्मिक क्रान्तिकारी की प्रेरणा से जैन समाज की प्रचलित विचार धाराओं में आमूल परिवर्तन हुआ है। यह परिवर्तन बहुत से कुलागत जैनों को वास्तविक जैन बनाए रखने में सफल हुआ है तथा जैनेत्तरों को भी जैन सैद्धान्तिक परम्पराओं से परिचित कराने में महान् योग रहा है।

जैन दर्शन के स्वतन्त्र उद्घोषक पूज्य श्री कानजीस्वामी बार-बार कहते हैं कि धर्म धारण के पूर्व सच्ची श्रद्धा होनी चाहिये। यह सम्यक्दर्शन का सम्यक् उपाय है और सम्यक्दर्शन से ही सर्वज्ञ की सच्ची पहचान हो सकती है। इस तरह सर्वज्ञ की श्रद्धा और सम्यक्दर्शन एक-दूसरे के सहभागी हैं। इसीलिए ''दंसण मूलो धम्मो'' या धर्म का मूल सर्वज्ञ एक ही बात है। इस प्रकार पूज्य गुरुदेव बार-बार प्रवचनसार की 80-82 वीं गाथा दुहराते हुए कहते हैं कि जिसने द्रव्य-गुण-पर्याय से अरहंत को पहिचाना है, उसने अपनी आत्मा को

भी अवश्य पहिचाना है और उसका मोह (दर्शनमोह) या मिथ्यात्व क्षय लेकर सम्यक् की उपलब्धि हुई है। इसके पश्चात् आत्मोन्मुखी वृत्ति से शुद्धोपयोग की वृद्धि से राग-द्वेष का क्षय होकर या चारित्रमोह का क्षय होकर अरहंत दशा प्रकट करने का पुरुषार्थ चालू होने से अपने में सर्वज्ञता प्राप्त कर ली है।

जगत के सर्व पदार्थों को व उनकी त्रिकाली पयार्यों सहित सर्वज्ञ एक साथ जानते हैं और वैसा ही पदार्थों में परिणमन होने का स्वरूप हैं। इसमें कुछ फेरफार या परिवर्तन कर अपने अनुकूल करने की जिसको वृद्धि है उसके सर्वज्ञ की सर्वज्ञता और वस्तुस्वरूप के निर्णय का पुरुषार्थ ही नहीं। सर्वज्ञ की श्रद्धा और वस्तुस्वरूप के निर्णय में आपकी आत्मा का पुरुषार्थ है। ऐसे पुरुषार्थ के बिना सर्वज्ञ का या क्रमबद्ध पर्याय का सच्चा निर्णय कभी नहीं हो सकता। अत: सर्वज्ञ की श्रद्धा में ही क्रमबद्ध पर्याय का निर्णय है और इसे ही मोक्षमार्ग का सच्चा उपाय कहते है। इस विषय पर पूज्य गुरुदेव ने नवीन खोज करके पर्याय की क्रमबद्धता बताकर सर्वज्ञ की सर्वज्ञता की सिद्धि की है। आप कहते हैं कि इकाई तूने सर्वज्ञ का निर्णय किया है। क्या इस जगत में सर्वज्ञ है—जिसको भव नहीं, राग-द्वेष नहीं, ऐसे सर्वज्ञ के निर्णय करने में रागादि से भिन्न त्रिकाली शुद्ध परमात्म तत्त्व या ज्ञान स्वभाव के निर्णय का पुरुषार्थ होता है। इसलिए सर्वज्ञ का निर्णय कर जिसमें क्रमबद्ध पर्याय का निर्णय होते होते तुझे अपने पुरुषार्थ का सहज भान हो जायेगा।

वस्तु का परिणमन उसकी योग्यता को सामर्थ्य से होते समय साक्षी पूर्वक निमित्त की उपस्थिति निश्चित रूप से होते हुए भी उसके परिणमन में निमित्त का अकिंचित्पना है। उपादान और निमित्त दोनों का परिणमन अपने-अपने में पूर्ण रूप से स्वतंत्र है। उसे पूज्य श्री ने

अनेक दृष्टान्त युक्ति और शास्त्रीय प्रमाणों से अच्छी प्रकार से समझाया है। जब यह जीव निमित्ताधीन, पराश्रित बुद्धि का परिणाम छोड़कर अपने स्वाधीन स्वाभाव के सम्मुख परिणमन करता है, तब ही उसे मुक्ति का मार्ग प्राप्त होता है। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है पर कर्ता कर्म सम्बन्धकारी है। निमित्त कर्ता और नैमित्तिक उसका कार्य यह कदापि सिद्ध नहीं होता, क्योंकि एक द्रव्य दो क्रियायें नहीं करता और दो द्रव्य मिलकर एक क्रिया नहीं करते यदि ये हो जायें तो प्रत्येक द्रव्य की स्वतंत्रता नष्ट होकर द्रव्य का भी नाश हो जायेगा। यद्यपि जब नैमित्तक दशा होती है तो उसी समय निमित्त भी मौजूद है। किन्तु वह उस रूप न तो परिणमित हुआ और न परिणमित कराने में सहयोगी ही हुआ है। दोनों का समकाल होने से पराक्षित बुद्धि जीव ऐसा मान लेता है कि इसके कारण ऐसा हुआ जगत के सभी पदार्थों में प्रति समय नैमित्तिक पर्यायें हो रही हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि निमित्त के बिना ही सबका परिणमन हो रहा है। ऐसा एक भी समय नहीं जब कि जगत के पदार्थों में नैमित्तिक दशा या पर्यायें न होती हैं। नैमित्तिक दशा के समय निमित्त न हो ऐसा नहीं होता। अत: नैमित्तिक कार्य होता है तो निमित्त की योग्यतावाले पदार्थ होते ही हैं। नैमित्तिक से ही निमित्त की सिद्धि होती है। बिना नैमित्तिक के निमित्त का ज्ञान नहीं होता। जब निमित्त है तब उीस समय नैमित्तिक कार्य का भी अस्तित्व है। यदि नैमित्तिक है तो पर वस्तु को उसका निमित्त भी कहा जाता है। नैमित्तिक कार्य के बिना परवस्तु को निमित्त भी नहीं कहा जाता है। क्योंकि नैमित्तिक के बिना निमित्त किसका? इससे सिद्ध है कि निमित्त तब ही कहलाता है, जब नैमित्तिक कार्य होता है। निमित्त को प्रकट करनेवाला नैमित्तिक कार्य भी विद्यमानता है। जहाँ ऐसा कहा जाता है कि निमित्त के बिना कार्य नहीं होता वहाँ ऐसा कथन ऐसे असानी (निश्चयाभाषी) को

उचित निमित्त का ज्ञान कराने के लिए है जो छह द्रव्यों को नहीं मानकर आत्मा के सिवा परवस्तु का आस्तित्व ही स्वीकार नहीं करता है, उसे ऐसा कहकर निमित्त का अस्तित्व भी बदलाया जाता है। किन्तु जगत के छह द्रव्यों को स्वीकार करनेवाले निमित्त-नैमित्तिक दोनों की स्वतंत्रता स्वीकार करते हैं, उन्हें वस्तु स्वतंत्रता का उपदेश दिया गया है।

निश्चिय-व्यवहार के बारे में भी आपकी विवेचन शैली अनूठी है। निश्चय-व्यवहार का स्वरूप आप जिस ढंग से समझाते हैं, उसे समझकर सारे जैन सिद्धांत का रहस्य स्वमेव ही समझ में आ जाता है। व्यवहार करते-करते उसके अवलम्बन से निश्चय हो जायेगा ऐसी मान्यता को जैन सिद्धांत में व्यवहार गूढ़ कहा है। आप कहते हैं कि निश्चय स्वभाव के आश्रय से ही मुक्तिमार्ग है। व्यवहार के शुभराग के आश्रय से कदापि मुक्ति नहीं हो सकती है और ऐसा भी नहीं है कि मुक्ति में पहिले व्यवहार और पीछे निश्चय अपितु बिना निश्चय के सच्चा व्यवहार हो ही नहीं सकता। निश्चय-व्यवहार के इस महत्त्वपूर्ण सिद्धांतों को जितनी स्पष्टता से आपने समझाया है, उतना आज तक कोई नहीं समझा पाया है। आप बार-बार कहते हैं कि निश्चय-व्यवहार को समझना जैन धर्म की मुख्य चीज है। इसमें जिसकी भूल रही वही वह जैन धर्म के मर्म को कभी नहीं समझ सकता है। निश्चय के आश्रय के बिना कभी धर्म की शुरुआत ही नहीं हो सकती है।

विज्ञान के इस युग में जहाँ कि प्रत्येक बात की सिद्धि तर्क और अनुभव के आधार पर की जाने लगी है ऐसे समय में पूज्य श्री कानजीस्वामी ने जो चमत्कार दिखाया है, वह महान् चमत्कार है क्योंकि किसी भौतिक पदार्थ का नहीं अपितु अपनी आत्मानुभूति का है। स्वानुभुति के इस पवित्र आदर्श से प्रेरित होकर अनेक आत्मायें

सम्यक् पथ प्रदर्शन से अपने जीवन को धन्य मान रही हैं। आपकी लोकोपकार करणी अपूर्व वृत्ति से स्वाभाविक (सहज) दर्शन ज्ञान परिलक्षित होता है।

सर्वज्ञ भगवन्तों, भावलिंगी सन्तों की वाणी के रसास्वादन से भौतिक पदार्थों की रुचि का स्वयं ही अभाव आपके जीवन में दिखाई देता है। भव्योपकारी रचनात्मक कार्यों में आपके समय का सदुपयोग होता है जिसके प्रतिकूल (परिणाम) है कि लाखों पुस्तकों एवं ग्रंथों का सरल सुगम्य भाषाओं में प्रकाशन होकर नाममात्र मूल्य में उपलब्धि, परमावश्यक स्थानों पर जहाँ-जहाँ अधिक उपयोगिता और जैन दर्शन के प्रचार की महत्ता प्रतीत हुई है, वहाँ-वहाँ पंचकल्याणक, वेदी प्रतिष्ठायें, शिक्षण-प्रशिक्षण वर्गों का आयोजन (आज के युग की अपूर्व देन) आश्रय एवं सिद्धांत के प्रतिपादनानुसार सम्पन्न हो रहे हैं। अनेक जिनभवनों (जिसमें सोनगढ़ का श्री परमागममंदिर भी विश्व की अद्वितीय कृति है) का निर्माण हुआ है। हजारों नवीन जैनेतर बन्धुओं ने समीचीन (दिगम्बर) धर्म की दीक्षा ग्रहण की है। अनेकों भाई-बहिनों ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर आत्महित का मार्ग प्रशस्त किया है। प्रशंसा या निन्दा से सदैव दूर रहकर आप आत्मा धर्म या वीतराग धर्म के प्रचार एवं प्रसार में अपनी शारीरिक अवस्था का भी ध्यान रखकर सतत रह सकते हैं।

आप वस्तु स्वरूप के सम्यक् ज्ञाता चैतन्यानुभवी, निज शुद्धात्म के उपासक आध्यात्मिक परम्परा को प्रवाहित रखनेवाले इस युग के महान आध्यात्मिक संत पूज्य कानजीस्वामीजी की शास्त्र अविरुद्ध अनेकान्त स्याद्वाद अतुरचित वाणी और पवित्र व्यक्तित्व से अध्यात्म प्रेमी अधिकाधिक सम्बन्धित होकर जीवन सफल करें यही मेरी कामना है। ●

महान् उपकारी सन्त

– रविचन्द्र जैन, दिल्ली

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी इस युग की महान् विभूति हैं। वे एक ऐसे महापुरुष हैं जिनके रोम-रोम में अध्यात्म भरा है।

मुझे कई बार दिल्ली में व सोनगढ़ में स्वामीजी को सुनने का योग हुआ है। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि गुरुदेव प्रति समाज वे जो भ्रंतिया फैलाई हुई हैं वे निर्मूल हैं, मिथ्या हैं। स्वामीजी के खान-पान के विषय में भी कई गलत धारणायें हैं। लेकिन वे सब निराधार हैं। स्वामीजी का आहार अत्यन्त शुद्ध व सूक्ष्म होता है। स्वयं मेरे घर पर स्वामजी ने एक बार आहार किया है।

स्वामीजी ने दिगम्बर जैन धर्म का बहुत उपकार किया है। आपने दिगम्बर धर्म अंगीकार किया व लाखों बन्धु स्वधर्मी बने, यह इस युग की सबसे क्रान्तिकारी घटना है।

मैं स्वामीजी प्रति लक्ष-लक्ष विनयांजलि अर्पित करता हूँ। ●

चैतन्य की मस्ती में झूमते हुए कई बार गुरुदेव के श्रीमुख से निकलता है—

ज्याँ चेतन त्याँ आत्मा, केवली बोले ऐम
प्रगट अनुभव आत्मा, निर्मल को सप्रेम
चैतन्य प्रभु! प्रभुता तुम्हारी चैतन्य धाम माँ
जिनवर प्रभु! पधारया समोसरण धाम माँ

समयासार के विमोचन

-परमात्म प्रकाश भारिल्ल,
जयपुर (राजस्थान)

महान् आचार्य कुन्दकुन्द, जिन्हें दिगम्बर जैन परम्परा में भगवान महावीर और उनके गणधर गौतम के बाद तीसरा स्थान प्राप्त है ने तो समयसार जैसे परम अध्यात्म ग्रंथ रचना करके भव्य जीवों का परम उपकार किया ही है परंतु वर्तमान समय में जबकि इस महान् ग्रंथराज को केवल साधुओं के अध्ययन की ही वस्तु मान लिया गया था जन साधारण के लिये समयसार का विमोचन करनेवाले आध्यात्मिक संत पूज्य कानजीस्वामी का भी भव्य जीवों पर उपकार नहीं है।

पूज्य स्वामीजी ने समयसार के ऊपर ही अपना जीवन समर्पित कर दिया। वे समयसार में ऐसे रम गये कि उन्होंने अपना त्रिकाल नाम समयसार (शुद्धात्मा) पा लिया। आज समयसार का नाम लेते ही सब लोगों के नेत्र पटल पर उस महान संत का एक रेखाचित्र अंकित हो जाता है।

पूज्य स्वामीजी ने अपनी स्वसम्पत्ति को भूलकर भटकनेवाले प्राणियों को आत्म वैभव का ज्ञान कराकर उन्हें वैभवशाली बना दिया है।

आज के समय में जब लोगों की समयसारिणी (Times-table) में सयसार के लिए कोई स्थान नहीं है, वहीं इस महापुरुष की समय-सारणी (Times-table) समयसार (शुद्धात्मा) के ऊपर ही समर्पित है।

उन्होंने मनुष्य भव का सार समय पाकर समयसार का चिंतवन करके अपना **समय-सार** शब्द (सार्थक) कर लिया है।

महान् समयसार का अवलम्बन लेनेवाले इस जीवंत समयसार को मेरा कोटिशः प्रणाम।

सौराष्ट्र का सन्त

अखिल बंसल

भरा पूरा बदन, गौर वर्ण, उच्च ललाट तथा ओजस्वी मुखमुद्रावाले पूज्य श्री कहानजीस्वामी को सर्वप्रथम देखने का सौभाग्य मुझे जयपुर में वीतराग विज्ञान प्रशिक्षण शिविर के अवसर पर हुआ। उनके प्रवचनों को सुनकर मैं काफी प्रभावित हुआ। मैं आज दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि पूज्य गुरुदेव के आध्यात्मिक प्रवचनों ने मुझे नई दिशा दी है।

जैन धर्म के महान् प्रभावक आध्यात्मिक संत पूज्य श्री कहानजीस्वामी का जन्म सौराष्ट्र प्रान्त के उमराला नामक ग्राम में सम्वत् 1946 वैशाख शुक्ला दूज के दिन हुआ था। बचपन से ही स्वामीजी की रुचि अध्यात्म की ओर थी। 24 वर्ष के कुमार काल में आपने स्थानकवासी सम्प्रदाय में जिन दीक्षा ले ली। कुशाग्र बुद्धि होने के कारण आपने शीघ्र ही श्वेताम्बर धर्म ग्रंथों का गूढ़ अध्ययन कर समाज में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया। आपकी वक्ताशैली काफी प्रभावशील रही है, आपके प्रवचनों को जो सुन लेता है, वही मंत्रमुग्ध हो जाता है।

सम्वत् 1978 की बात है आपको दिगम्बर जैन आचार्य पूज्य श्री कुन्दकुन्दाचार्यजी का समयसार नामक अपूर्व ग्रंथ पढ़ने को मिला। इस समयसार ने कहानजीस्वामी के अन्त:स्थल को झकझोर दिया, जिसकी उन्हें खोज थी वह स्वयमेव ही उन्हें प्राप्त हो गया। आपने समयसार का गहरा अध्ययन और मनन किया, आपके विचारों ने पलटा खाया और सोनगढ़ जाकर सं. 1991 में चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन स्थानकवासी सम्प्रदाय का त्यागकर दिगम्बर जैन धर्म की मान्यता स्वीकार कर ली। तब से आप निरन्तर आत्मा साधना के

अनुसंधान में लगे हुए हैं। सानेगढ़ की तो कहें क्या वहाँ तो स्वर्णपुरी जैसा आनन्द आता है। पूज्य स्वामीजी के कारण आज सोनगढ़ तीर्थधाम बना हुआ है।

धर्म प्रभावना :- पूज्य गुरुदेव के इस परिवर्तन से सौराष्ट्र प्रान्त में क्रन्दनसा मच गया। अपने चारों ओर विरोधपूर्ण वातावरण की परवाह न करते हुए वे अपने विचारों पर सुमेरु के समान अडिग रहे। ठीक ही है ''जिसका जितना अधिक विरोध होता है, उसका उतना ही अधिक प्रचार होता है।''

आज सौराष्ट्र में ही क्या सम्पूर्ण भारत में दिगम्बर जैन धर्म की प्रभावना पूज्य गुरुदेव के द्वारा हो रही है। जिस सौराष्ट्र प्रांत में दिगम्बर सम्प्रदाय के इक्के-दुक्के ही मिलते थे, आज वहाँ हजारों की संख्या में दिगम्बर जैन हैं। यह सब पूज्य गुरुदेव की कृपा एवं उनकी प्रभावना का फल ही मानना होगा। सोनगढ़ द्वारा प्रकाशित साहित्य के पठन-पाठन से जैन-जैनेतर सभी लाभ ले रहे हैं। पूज्य स्वामीजी ने तत्त्व के मर्म को बारीकी से समझकर उसे अपने जीवन में उतारा है, आध्यात्म प्रेमी लोग तो आपके सत्संग को पाकर अपने को धन्य समझता है और आध्यात्म चर्चा का रसिक बन जाता है। कानजीस्वामी जो कुछ कहते हैं, उसमें एक निष्पक्ष एवं पवित्र भावना होती है जो श्रोता को प्रभावित किए बिना नहीं रहती। उनके प्रवचनों का लाभ लेने हजारों की संख्या में प्रतिवर्ष लोग सोनगढ़ जाते हैं और वहाँ अतीव आनन्द को प्राप्त कर, तथा आत्मा का सच्चा स्वरूप समझकर अपना जीवन सफल बनाते हैं। धन्य हैं वह सौराष्ट्र के संत जो प्रकाश स्तम्भ बनकर सम्पूर्ण जैन जगत का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं।

कोटा प्रशिक्षण शिविर 1975 में दिए गए प्रवचन का एक अंश—

''पाप-पुण्य की वृत्ति भी दु:ख रूप ही है। दया, दान, पूजा, भक्ति के भाव शुद्ध आध्यात्मिक दृष्टि से दु:ख के कारण हैं। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का भंडार है। आत्मा और पुण्य-पाप के भाव एक साथ रहते हैं जो दोनों के बीच एक संधि हैं। प्रज्ञा (ज्ञान) रूपी छिजा के द्वारा इस संधि को तोड़ा जा सकता है, इस संधि के टूटने पर ज्ञान रूप आत्मा व पुण्य-पाप भाव स्पष्टत: भिन्न-भिन्न प्रतिभासित होने लगते हैं, इसे ही सम्यग्दर्शन, आत्मानुभूति भेद विज्ञान कहा जाता है। धर्मी को दया, दान, पूजा एवं भक्ति के पुण्य भाव आते हैं, वे जानने लायक हैं। आश्रय करने लायक एकमात्र ज्ञानरूपी आत्मा है। अभिप्राय में राग के छूटे बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। सम्यग्दर्शन होने पर कर्म बन्ध रूक जाता है। ज्ञान से पुण्य-पाप की निवृत्ति होती है, प्रवृत्ति नहीं। जिसका ज्ञान राग में प्रवृतै वह ज्ञानी नहीं है, ज्ञानी को राग आता है, पर वह उसका स्वामी नहीं होता; मात्र उसका जाननेवाला होता है।''

हे भाई, तू आत्मा है, तेरा लक्षण ज्ञातापन है। तू सदा अरूपी (अमूर्त) है। और यह शरीर जड़ है, रूपी (मूर्त) है। तेरे से भिन्न ही है। आत्मा अपनी अवस्था में कार्य कर सकता है पर शरीरादि पर पदार्थों की अवस्था में कुछ भी कार्य नहीं कर सकता। ऐसा समझ कर यदि जीव अपने स्वभाव में रहे तो विकारी कार्य टल सके और सुख-शांति रूप शुभ हो सके।

विशिष्ट लेख

मुक्ति पथ

ब्र. कुमारी 'कौशल' जी

छोटे-छोटे बच्चों को साँप और सीढ़ी का खेल खेलते देखा होगा, या आपने भी साँप सीढ़ी खेली होगी। हर स्थान पर साँप भी है और सीढ़ी भी है। प्रथम स्थान पर ही लम्बी सीढ़ी है, उससे मुक्ति को पहुँचा जा सकता है अर्थात् वहीं मुक्ति है। और लम्बी यात्रा करके कठिन परिश्रम के पश्चात मुक्ति के निकट पहुँचकर भी साँप का भय है, वहाँ से ठीक नीचे आ सकता है, जहाँ से चला था। जीवन भी ऐसे ही साँप सीढ़ी का खेल है। जहाँ खड़े हो, वहीं से जानो—सम्मोहन को तोड़ो, हृदय की आँखों से देखो तो पाओगे मुक्ति के कहीं रास्ते नहीं—मुक्ति अभी है और यहीं है। अथवा बहुत चलकर भी थककर भी अज्ञानी साधक पा सकता है कि वह अभी वहीं खड़ा है, जहाँ से चला था। नींद में पानी पीने से प्यास बुझ नहीं सकती अपितु स्वप्न के कारण निद्रा काल दीर्घ हो सकता है। सोने में थोड़ी सुविधा हो सकती है।

मुझे स्मरण आता है महात्मा बुद्ध के जीवन का एक वृत्त। रवीन्द्रनाथ ने यशोधरा से एक गहरा मजाक कराया है। महात्मा बुद्ध जब बोधि प्राप्ति के पश्चात अपने गाँव को लौटे तो यशोधरा से मिले। तब यशोधरा ने व्यंग्य पूर्वक एक प्रश्न पूछा—''आपने घर छोड़कर जो पाया क्या वह घर में नहीं था।'' बुद्ध निरुत्तर हो गए। उत्तर क्या

दें बड़ी मुश्किल में पड़ गये। अगर कहें कि घर में था, तो फिर घर छोड़ना मूर्खता थी। अगर कहें कि वह घर में नहीं था तो वह असत्य होगा। क्योंकि वह घर में भी मौजूद हैं। उसको जाना भर। जैसे न्यूटन ने पृथ्वी की आकर्षण शक्ति को जाना मात्र, जो कि पहले से मौजूद थी। सत्य सदा सत्य होता है। जो आता है और जाता है, वह असत्य है। सत्य को इसीलिए बनाया नहीं जाता मात्र जाना जाता है। जिसको बनाया जा सकता है, उसको मिटाया भी जा सकता है। अत: वह असत्य होगा। असत्य परिवर्तनशील है और सत्य अपरिवर्तनीय, वासनाओं, क्रोध, राग, द्वेष, शुभ-अशुभ चेतनारूपी आकाश पर आते हैं, गरजते हैं और बरसते हैं और विदा हो जाते हैं, किन्तु आकाश अरिवर्तित रहा है। अत: जिस पर परिवर्तन के नियम लागू होते हैं, वह मात्र संसार है। जिस पर ये परिवर्तन आकर नृत्य करते हैं, वह सत्य है व परिवर्तन से मुक्त है।

उक्त सत्य को कहा कैसे जाये ? क्योंकि चेतना का सत्य भावात्मक है। उसको अनुभव किया जा सकता है, शब्दों में व्यक्त नहीं जैसे मैं कहूँ ''आज सांझ बड़ी प्यारी है, ठण्डी हवा है, आकाश में इन्द्रधनुष है आदि'' तो इन शब्दों से आपको ठण्डी हवाओं का आनन्द न मिलेगा और चित्रों के आकाश असीम भी नहीं हो सकते किन्तु मेरे हाव-भाव से अगर प्रभावित होकर आप सांझ में प्रवेश पाएँ तो आनन्द विभोर हो जायेंगे। अत: जैन दर्शन में एक विशेष शब्द है 'श्रुत'। उसका बड़ा महत्त्व है। श्रुत का अर्थ है सुना हुआ। अर्थात् जो गुरु के चरणों में बैठकर सुना गया हो जो कहा नहीं जा सकता उसको, अकथ को। शब्दों में कुछ और कहा जाता है तथा सुना कुछ और जाता है। जैसे आप कभी बच्चे को बाजार जाने के समय जब उसको साथ ले जाना नहीं चाहते तब कहते हो ठहरो, बेटा, मैं अभी

आया, तुम्हारे लिए चीज लेने जा रहा हूँ। तब बच्चा आपके चेहरे को देखता है और कहता है कि आप झूठ बहका रहे हो।'' एक नन्हा बालक भी शब्द नहीं सुनता वह भी उसे सुनता है जो कहा नहीं गया। आपका अभिप्राय नित्य ही ऐसी घटनायें जीवन में घट रही हैं। अकथ को सुनो।

स्वामीजी कहते हैं अगर कोई श्रोता तन्मयता से सुनता है तो उसमें वह उसे सुनता है, जो अकथ है, सत्य है, अमृत है, परिवर्तनीय है। परिवर्तन के साथ एकत्व के सम्मोहन की निद्रा उसकी टूट जायेगी और पायेगा कि वह परिवर्तन से बाहर है। जन्म-मृत्यु से अतीत सत्य तत्त्व है। ●

आत्मा में मन किस प्रकार प्रवेश करे ?

एक भाई ने पूछा—आत्मा की बात सुनते समय तो अच्छी लगती है परन्तु उसके विचार में मन रुकता नहीं, उसका क्या कारण ?

उत्तर में गुरुदेव ने कहा—कि जो वास्तव में रुचि हो तो मन क्यों नहीं लगे संसार के विचार में मन क्यों जाता है ? सुनते समय भी जो वास्तव में आत्मस्वरूप को लक्ष्य रखकर उसका उत्साह आता है तो उपयोग उसमें लगे बिना रहता नहीं। आत्मा को जानने की वास्तव में रुचि जागे, उसका उसमें बारम्बार उपयोग लगता है। इसके विचार में मन सही लगता तो अपने परिणामों में कमजोरी है। उपयोग को जबरन बलपूर्वक पर से हटा कर स्वसत्ता में, चिन्तन में लगाने का बारम्बार उद्यम (पुरुषार्थ) करना चाहिये। बार-बार अन्तर के उग्र अभ्यास द्वारा चैतन्य में उपयोग जरूर लगेगा। ●

वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, जयपुर

भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त जितने गूढ, गम्भीर व ग्राह्य हैं; उनका वर्तमान जीवन (भव) उतना ही सादा, सरल एवं सपाट है; उसमें विविधताओं को कोई स्थान प्राप्त नहीं है। उनका वर्तमान जीवन घटना बहुल नहीं है। घटनाओं में उनके व्यक्तित्व को खोजना भी व्यर्थ है।

घटना समग्र जीवन के एक खण्ड पर प्रकाश डालती है। घटनाओं में जीवन को देखना उसे खण्डों में बाँटना है। भगवान महावीर का व्यक्तित्व अखण्ड है, अविभाज्य है, उसका विभाजन संभव नहीं है। उनके व्यक्तित्व को घटनाओं में बाँटना, उनके व्यक्तित्व को खंडित करना है। अखंडित दर्पण में बिम्ब अखण्ड और विशाल प्रतिबिम्बित होते हैं, किन्तु काँच के टूट जाने पर प्रतिबिम्ब भी अनेक और क्षुद्र हो जाते हैं। उनकी एकता और विशालता खण्डित हो जाती है। वे अपना वास्तविक अर्थ खो देते हैं।

भगवान महावीर के आकाशवत् विशाल सागर से गम्भीर व्यक्तित्व को बालक वर्द्धमान की बाल-सुलभ क्रीड़ाओं से जोड़ने पर उनकी गरिमा बढ़ती नहीं, वरन खण्डित होती है, सन्मति शब्द का कितना भी महान् अर्थ क्यों न हो, वह केवल ज्ञान की विराटता को अपने में नहीं समेट सकता। केवल ज्ञानी के लिये सन्मति नाम छोटा ही पड़ेगा, ओछा ही रहेगा। वह केवल ज्ञानी की महानता व्यक्त करने में समर्थ नहीं हो सकता। जिनकी वाणी एवं दर्शन ने अनेकों की शंकाएँ समाप्त की हो, अनेकों को सन्मार्ग दिखाया हो, सत्पथ में लगाया हो, उनकी महानता को किसी एक की शंका को समाप्त करनेवाली घटना कुछ विशेष व्यक्त नहीं कर सकती।

बढ़ते तो अपूर्ण हैं, जो पूर्णता को प्राप्त हो चुका हो; उसे वर्द्धमान कहना कहाँ तक सार्थक हो सकता है। इसी प्रकार महावीर की वीरता को साँप और हाथीवाली घटनाओं से नापना कहाँ तक संगत है, यह एक विचारने की बात है।

यद्यपि महावीर के जीवन संबंधी उक्त घटनाएँ शास्त्रों में वर्णित हैं तथापि वे बालक वर्द्धमान को वृद्धिगत बनाती हैं, भगवान महावीर को नहीं। साँप से न डरना बालक वर्द्धमान के लिए गौरव की बात हो सकती है, हाथी को वश-करना राजकुमार वर्द्धमान के लिए प्रशंसनीय कार्य हो सकता है, भगवान महावीर के लिए नहीं। आचार्यों ने उन्हें यथास्थान ही इंगित किया है। वन विहारी पूर्ण अभय को प्राप्त महावीर एवं वीतरागी, सर्वस्वातंत्र के उद्घघोषक तीर्थंकर भगवान महावीर के लिए साँप से न डरना, हाथी को काबू में रखना क्या महत्त्व रखते हैं।

जिस प्रकार बालक के जन्म के साथ इष्ट मित्र सम्बन्धी-जन वस्त्रादि लाते हैं और कभी-कभी तो सैकड़ों जोड़ी वस्त्र बालक को इकट्ठे हो जाते हैं। लाते तो सभी बालक के अनुरूप ही हैं, पर वे सब कपड़े तो बालक को पहिनाए नहीं जा सकते। बालक दिन-प्रतिदिन बढ़ता जाता है, वस्त्र तो बढ़ते नहीं। जब बालक 20-25 वर्ष का हो जावे, तब कोई माँ उन्हें वही वस्त्र पहिनाने की सोचे, जो जन्म के समय आये थे और जिनका प्रयोग नहीं कर पाया है, तो क्या वे वस्त्र 20-25 वर्षीय युवक को आ पायेंगे ? नहीं आने पर वस्त्र लानेवालों को भला-बुरा कहें तो यह उसकी ही मूर्खता मानी जायेगी, वस्त्र लानेवालों की नहीं। इसी प्रकार महावीर के वर्द्धमान वीर, अतिवीर आदि नाम उन्हें उस समय दिये गये थे, जब वे नित्य बढ़ रहे थे, सन्मति (मति-ज्ञानी) थे, राजकुमार थे। उन्हीं घटनाओं और नामों को लेकर हम तीर्थंकर भगवान महावीर को समझाना चाहें, समझना

चाहें, तो यह हमारी बुद्धि की ही कमी होगी न कि लिखनेवाले आचार्यों की। वे नाम, वे वीरता की चर्चाएँ यथा-समय सार्थक थीं।

तीर्थंकर महावीर के विराट व्यक्तित्व को समझने के लिए हमें उन्हें विरागी दृष्टिकोण से देखना होगा। वे धर्मक्षेत्र के वीर, अतिवीर और महावीर थे, युद्धक्षेत्र और धर्मक्षेत्र में बहुत बड़ा अन्तर है। युद्धक्षेत्र में शत्रु का नाश किया जाता है और धर्मक्षेत्र में शत्रुता का, युद्धक्षेत्र में पर को जीता जाता है और धर्मक्षेत्र में स्वयं को। युद्धक्षेत्र में पर को मारा जाता है और धर्मक्षेत्र में अपने विकारों को।

महावीर की वीरता में दौड़-धूप नहीं, उछलकूद नहीं, मारकाट नहीं, हाहाकार नहीं, अनन्त शान्ति है। उनके व्यक्तित्व में वैभव की नहीं, वीतराग-विज्ञान की विराटता है।

एक बात यह भी तो है कि दुर्घटनाएँ या तो पाप के उदय से घटती हैं या पाप भाव के कारण। जिसके जीवन में न पाप का उदय हो और और न पाप भाव ही, तो फिर दुर्घटनाएँ कैसे घटेगीं, क्यों घटेगी? अनिष्ट संयोग पाप के उदय के बिना संभव नहीं है तथा वैभव और लोगों में उलझाव पाप भाव के बिना असंभव है। भोग के भावरूप पाप-भाव सद्भाव में घटनेवाली घटनाओं में शादी एक ऐसी दुर्घटना है, जिसके घट जाने पर दुर्घटनाओं का एक कभी न समाप्त होनेवाला सिलसिला आरम्भ हो जाता हैं। सौभाग्य से महावीर के जीवन में यह दुर्घटना न घट सकी। एक कारण यह भी है कि उनका जीवन घटना प्रधान नहीं है।

लोग कहते हैं कि बचपन में किसके साथ क्या नहीं घटता, किसके घुटने नहीं टूटते, किसके दाँत नहीं टूटते? महावीर के साथ भी निश्चितरूप से यह सब कुछ घटा ही होगा? भले ही आचार्यों ने न लिखा हो पर भाईसाहब दुर्घटनाएँ बचपन से नहीं, बचपनें से घटती

हैं। महावीर के बचपन तो आया था, पर बचपना उनमें नहीं था। अत: घुटने फूटने और दाँत टूटने का सवाल ही नहीं उठता। वे तो बचपन से ही सरल, शांत एवं चिन्तनशील व्यक्तित्व के धनी थे। उपद्रव करना उनके स्वभाव में ही न था और बिना उपद्रव के दाँत टूटना, घुटने फूटना संभव नहीं।

कुछ का कहना यह भी है कि न सही बचपन में पर जवानी तो घटनाओं का ही काल है। जवानी में तो कुछ न कुछ घटा ही होगा। पर बन्धुवर! जवानी में दुर्घटनायें उनके साथ घटती हैं, जिन पर जवानी चढ़ती है, महावीर तो जवानी पर चढ़े थे, जवानी उन पर नहीं। जवानी चढ़ने का अर्थ है—यौवन संबंधी विकृतियाँ उत्पन्न होना और जवानी पर चढ़ना का तात्पर्य शारीरिक सौष्ठव का पूर्णता को प्राप्त होना है।

राग संबधी विकृति भोगों में प्रगट होती है और द्वेष संबंधी विद्रोह में। न वे रागी थे, न द्वेषी। अत: न वे भोगी थे और न ही द्रोही।

महावीर ने विद्रोह नहीं, अद्रोह किया था। विद्रोह, द्रोह का ही एक भेद है। द्रोह स्वयं एक विकार है। उन्होंने न स्वयं से द्रोह किया, न दूसरों से। उन्होंने द्रोह का अभाव किया था, अत: उन्हें अद्रोही ही कहा जा सकता है, विद्रोही नहीं। द्रोह, द्रोह को उत्पन्न करता है, द्रोह से अद्रोह का जन्म नहीं हो सकता। उन्होंने किसी के प्रति विद्रोह करके घर नहीं छोड़ा था। उनका त्याग विद्रोह मूलक न था। उनके त्याग और संयम के कारणों को दूसरों में खोजना महावीर के साथ अन्याय है। वे 'न काहू से दोस्ती न काहू से वैर' के रास्ते पर चले थे।

वीतरागी-पथ पर चलनेवाले विरागी महावीर को समझने के लिए उनके अन्तर में झाँकना होगा। उनका वैराग्य देश-काल की परिस्थितियों से उत्पन्न नहीं हुआ था। उनके कारण उनके अन्तरंग में

विद्यमान थे। उनका विराग परोपजीवी नहीं था। जो वैराग्य किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होता है, वह क्षण-जीवी होता है। परिस्थितियों के बदलते ही उसका समाप्त हो जाना संभव है।

यदि देश-काल की परिस्थितियाँ महावीर के अनुकूल होती तो क्या वे वैराग्य धारण न करते, गृहस्थी बसाते, राज्य करते? नहीं कदापि नहीं। और परिस्थितियाँ उनके प्रतिकूल थीं हीं कब? तीर्थंकर महान् पुण्यशाली महापुरुष होते हैं, अतः परिस्थितियों का प्रतिकूल होना संभव नहीं था।

वैराग्य या विराग राग के अभाव का नाम है, विद्रोह का नाम नहीं। वे वैरागी राग के अभाव के कारण बने थे, न कि विद्रोह के कारण। महावीर वैरागी राजकुमार थे, न कि विद्रोही। महावीर जैसे अद्रोही महामानव में विद्रोह खोज लेना अभूतपूर्व खोज बुद्धि का परिणाम है। बालू में तेल निकाल लेने जैसा यत्न है। बन्ध्या के पुत्र के विवाह वर्णनवत् कल्पना की उड़ाने हैं, जिनका न ओर है न छोर।

घर में जो कुछ घटता है, अपनी ओर से घटता है, पर वन में तो बाहर से बहुत कुछ घट जाने के प्रसंग रहते हैं क्योंकि घर में बाहर के आक्रमण से सुरक्षा का प्रबन्ध प्रायः रहता है। यदि कोई उत्पात हो, तो अन्तर के विकारों के कारण ही होता देखा जाता है, पर वन में बाहर से सुरक्षा-प्रबन्ध का अभाव होने से घटनाएँ घटने की संभावना अधिक रहती हैं। माना कि महावीर का अन्तर विशुद्ध था। अतः घर में कुछ घटा, पर वन में तो घटा ही होगा?

हाँ! हाँ! अवश्य घटा था पर लोक जैसे घटने को घटना माना है, वैसा कुछ नहीं घटा था। राग-द्वेष घट गये थे, तब तो वे वन को गये ही थे। क्या राग-द्वेष का घटना कोई घटना नहीं है? पर बहिर्मुखी दृष्टिवालों को राग-द्वेष में कुछ घटना सा नहीं लगता। यदि तिजोड़ी

में से लाख-दो लाख रुपया घट जायें, शरीर में से कुछ खून घट जाये, आँख, नाक, कान घट जाये, कट जाये तो इसे बहुत बड़ी घटना लगती है, पर राग-द्वेष घट जाये तो इसे घटना ही नहीं लगता, वन में ही तो महावीर रागी से वीतरागी बने थे; अल्पज्ञानी से पूर्ण ज्ञानी बने थे। सर्वज्ञता और तीर्थंकरत्व वन में ही तो पाया था। क्या यह घटनायें छोटी हैं? क्या कम है? इससे बड़ी भी कोई घटना हो सकती है? मानव से भगवान बन जाना कोई छोटी घटना है? पर जगत को इसमें कोई घटना सी ही नहीं लगती। तोड़-फोड़ की रुचिवाले जगत को तोड़-फोड़ में ही घटना नजर आती है, अन्तर में शांति से चाहे जो कुछ घट जाये, उसे वह घटना सी नहीं लगता है। अन्तर में जो कुछ प्रतिपल घट रहा है, वह तो उसे दिखाई नहीं देता। बाहर में कुछ हलचल हो तभी कुछ घटा सा लगता है।

जब तक देवांगनाएँ लुभाने को न आवें और उनके लुभाने पर भी कोई महापुरुष न डिगे तब तक हमें उसकी विरागता में शंका बनी रहती है, तब तक कोई पत्थर न बरसाएँ, उपद्रव न करे और उपद्रव में कोई महात्मा शांत न बना रहे, तब तक हमें उसकी वीत-द्वेषता समझ में नहीं आती। यदि प्रबल पुण्योदय से किसी महात्मा के इस प्रकार के प्रतिकूल संयोग न मिलें तो क्या वह वीतरागी और वीतद्वैषी नहीं बन सकता, क्या वीतरागी और द्वेषी बनने के लिए देवांगनाओं को डिगाना राक्षसों का उपद्रव आवश्यक है? क्या वीतरागता इन काल्पनिक घटनाओं के बिना प्राप्त और संप्रेषित नहीं की जा सकती है? क्या मुझे क्षमाशील होने के लिए सामनेवालों को गाली देना, मुझे सताना जरूरी है, क्या उसके सताए बिना मैं शान्त नहीं हो सकता? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जो बाह्य घटनाओं की कमी के कारण महावीर के चरित्र में स्थापन माननेवालों और चिन्तित होनेवालों को विचारणीय हैं।

वन में जाने से पूर्व ही महावीर बहुत कुछ वीतरागी हो गये थे। रहा-सहा राग भी तोड़, पूर्ण वीतरागी बनने, नग्न दिगम्बर हो वन को चल पड़े थे। उनके लिए वन और नगर में कोई भेद नहीं रहा था। सब कुछ छूट गया था, वे सबसे टूट गये थे। उन्होंने सब कुछ छोड़ा था, कुछ ओढ़ा न था। वे साधु बने नहीं, हो गये थे। साधु बनने में वेष पलटना पड़ता है। साधु होने में स्वयं ही पलट जाता है। स्वयं के बदल जाने पर वेष भी सहज बदल जाता है। वेष बदल क्या जाता है, सहज वेष हो जाता है, यथाजात वेष हो जाता है, जैसा पैदा हुआ था, वही रह जाता है, बाकी सब छूट जाता है।

वस्तुत: साधु की कोई ड्रेस ही नहीं है, सब ड्रेसों का त्याग ही साधु का वेष है। ड्रेस बदलने से साधुता नहीं आती, साधुता आने पर ड्रेस छूट जाती है। यथाजातरूप (नग्न) ही सहज वेष है और सब वेष तो श्रमसाध्य हैं, धारण करने रूप हैं। वे साधु के वेष नहीं हो सकते क्योंकि उनमें गाँठ बाँधना अनिवार्य है, साधुता बंधन नहीं है। उसमें सर्वबंधनों की अस्वीकृति है। साधु कोई वेष नहीं होता, नग्नता कोई वेष नहीं। वेष-साज-शृंगार है, साधु को सजने-संवरने की फुर्सत ही कहाँ है? उसका सजने का भाव ही चला गया है। सजने में "दूसरों को कैसा लगता हूँ?" का भाव प्रमुख रहता है। साधु को दूसरों से प्रयोजन ही नहीं है, वह जैसा है वैसा ही है। वह अपने में ऐसा मग्न है कि दूसरों के बारे में सोचने का काम ही नहीं। दूसरे उसके बारे में क्या सोचते हैं, इसकी उसे परवाह ही नहीं। सर्ववेष शृंगार के सूचक हैं। साधु को शृंगार की आवश्यकता ही नहीं। अत: उसका कोई वेष नहीं होता।

दिगम्बर कोई वेष नहीं है, सम्प्रदाय नहीं है, वस्तु का स्वरूप है। पर हम वेषों को देखने के इतने आदि हो गये हैं कि वेष के बिना

सोच नहीं सकते। हमारी भाषा वेषों की भाषा हो गयी है। अत: हमारे लिए दिगम्बर भी वेष हो गया है। हो क्या गया कहा जाने लगा है। सब वेषों में कुछ उतारना पड़ता है और कुछ पहिनना होता है, पर इसमें छोड़ना ही छोड़ना है, जोड़ना कुछ भी नहीं है। छोड़ना भी क्या उधड़ना है, छूटना है। अन्दर से सब कुछ छूट गया है, देह भी छूट गयी है, पर बाहर से अभी वस्त्र भी छूटे हैं, देह छूटने में अभी कुछ समय लग सकता है, पर वह भी छूटना है, क्योंकि उसके प्रति भी जो राग था, वह टूट चुका है। देह रह गयी है तो रह गयी है, जब छूटेगी तब छूट जायेगी, पर उसकी भी परवाह छूट गयी है।

महावीर मुनिराज वर्द्धमान नगर छोड़ वन में चले गये। पर वे वन में भी गये कहाँ? वे तो अपने में चले गये हैं, उनका वन में भी अपनत्व कहाँ है? उन्हें वनवासी कहना भी उपचार है, क्योंकि वे वन में भी कहाँ रहे? वे तो आत्मवासी हैं। न उन्हें नगर से लगाव है, न वन से, वे तो दोनों से अलग हो गये हैं, उनका तो पर से अलगाव ही अलगाव है।

रागी वन में जायेगा तो कुटिया बनायेगा, वहाँ भी घर बसायेगा। ग्राम और नगर बसायेगा, भले ही उसका नाम कुछ भी हो, है तो वह घर ही। रागी वन में भी मंदिर के नाम महल बसायेगा, महलों में भी उपवन बसायेगा। वह वन में रहकर भी महलों को छोड़ेगा नहीं, महल में रहकर भी वन को छोड़गा नहीं।

उनका चित्त जगत् के प्रति सजग न होकर आत्मनिष्ठ था। देश-काल की परिस्थितियों के कारण उन्होंने अपनी वासनाओं का दमन नहीं किया था। उन्हें दमन की आवश्यकता भी न थी क्योंकि वासनायें स्वयमेव अस्त हो चुकी थीं।

उन्होंने सर्वदा मौन धारण कर लिया था, उनको बोलने का भाव

भी न रहा था। वाणी पर से जोड़ती है, उन्हें पर जुड़ना ही न था। वाणी विचारों की वाहक है, वह विचारों का आदान-प्रदान करने में निमित्त है, वह समझने-समझाने के काम आती है, उन्हें किसी से कुछ समझना ही न था जो समझने योग्य था, उसे वे अच्छी तरह समझ चुके थे, अब तो उसमें मग्न थे। उन्हें किसी को समझने का राग भी न रहा था, अत: वाणी का क्या प्रयोजन? वाणी उन्हें प्राप्त थी, पर वाणी की उन्हें आवश्यकता ही न थी। जो उन्हें चाहिये ही नहीं, वह रहे तो रहे, उससे उन्हें क्या? रहे तो ठीक, न रहे तो ठीक। वे निरन्तर आत्म-चिन्तन में ही लगे रहते थे।

नहाना-धोना सब कुछ छूट गया था। वे स्नान और दंत-धवन के विकल्प से भी परे थे। शत्रु और मित्र में समभाव रखनेवाले मुनिराज वर्द्धमान गिरिकन्दराओं में वास करते थे। वस्तुत: न उनका कोई शत्रु ही रहा था और न कोई मित्र। मित्र और शत्रु राग-द्वेष की उपज हैं। जब उनके राग-द्वेष ही समाप्त प्राय: थे, तब शत्रु मित्रों के रखने का कोई प्रश्न ही नहीं रह गया था। मित्र रागियों के होते हैं, और शत्रु द्वेषियों के, वीतरागियों का मित्र और कौन शत्रु? कोई उनसे शुत्रता करो तो करो, मित्रता करो तो करो, उन पर उनकी कोई प्रतिक्रिया नहीं होती है। शत्रु-मित्र के प्रति समभाव का अर्थ ही शत्रु-मित्र का अभाव है। उनके लिए उनका न कोई शत्रु था और न कोई मित्र। अन्य लोग उन्हें अपना शत्रु मानों तो मानों, अपना मित्र मानो तो मानो, अब वे किसी के कुछ भी न रह गये थे। किसी का कुछ रहने में कुछ लगाव होता है, उन्हें जगत् से कोई लगाव ही न रहा था।

एक अघट घटना महावीर के जीवन में अवश्य घटी थी। आज से 2501 वर्ष पहले दीपावली के दिन जब के घट (देह) से अलग हो गये, अघट हो गये थे। घट-घट के वासी होकर भी घटवासी भी न रहे थे, गृहवासी और वनवासी तो बहुत दूर की बात है। अन्तिम

घट (देह) को भी त्याग मुक्त हो गये थे। इससे अभूतपूर्व घटना किसी के जीवन में कोई अन्य नहीं हो सकती पर यह जगत् इसको घटना माने तब है न।

इस प्रकार जगत् से सर्वथा अलिप्त, सम्पूर्णत: आत्मनिष्ठ महावीर के जीवन को समझने के लिए उनके अन्तर में झाँकना होगा कि उनके अन्तर में क्या कुछ घटा। उन्हें बाहरी घटनाओं से नापना, बाहरी घटनाओं में बाँधना संभव नहीं है। यदि हमने उनके ऊपर अघट-घटनाओं को थोपने की कोशिश की तो वास्तविक महावीर तिरोहित हो जावेंगे, वे हमारी पकड़ से बाहर हो जावेंगे और जो महावीर हमारे हाथ लगेंगे, वे वास्तविक महावीर न होगें, तेरी मेरी कल्पना के महावीर होगें। यदि हमें वास्तविक महावीर चाहिये हो तो उन्हें कल्पनाओं के घेरों में न घेरिये। उन्हें समझने का यत्न कीजिए, अपनी विकृत कल्पनाओं को उन पर थोपने की अनाधिकर चेष्टा मत दीजिए। ●

चैतन्य के एकत्व में परम सुख

अनुभव की मस्ती उसके चित्त को अन्य किसी भी स्थान पर नहीं लगने देती। स्वानुभव के शांतरस से तृप्त-तृप्त है। चैतन्य के आनन्द के रस में ऐसा मस्त है कि अब अन्य कुछ भी करने का रहा नहीं। भेदज्ञान के द्वारा अभेद अंत: तत्त्व को मुख्य करके—

मैं ही ज्ञान-दर्शन-चारित्र हूँ, मैं ही मोक्ष हूँ, मैं ही सुख हूँ, मेरा स्वभाव वृद्धि को प्राप्त करता हूँ पर भाव का मेरे में प्रवेश नहीं। मैं अपने चैतन्य विलास-स्वरूप हूँ। चैतन्य में अन्य किसी की चिन्ता नहीं है— इस प्रकार धर्मी जीव 'पर' से भिन्न अपने एकत्व स्वरूप का चिंतन करता है। चैतन्य के एकत्व चिन्तन में परम सुख है।

आत्म मूल्यांकन करना सीखें

- श्रीमती रूपवती 'किरण'

जैन दर्शन का केन्द्र बिन्दु एकमात्र आत्मा है। द्वादशांग वाणी का सार भी आत्मा की उपलब्धि ही है। पूर्वाचार्यों ने आधि-व्याधि-उपाधियों से संतप्तजनों को स्वानुभव के आधार पर सबकी अपेक्षा त्याग स्वतंत्रता से पुरुषार्थ करने की प्रेरणा दी है। सब-संसारी प्राणी स्वयं की भूल से स्वभाव च्युत हो विकारों में तन्मय हो रहे हैं एवं दोष कर्मोदय को देकर स्वयं प्रमादी बन निश्चिंत हो जाते हैं। अर्थात्-कल्याण का मार्ग सबने स्वत: अवरुद्ध कर लिया है। शास्त्र स्वाध्याय करके भी हम उसका मर्म नहीं समझ सके हैं। द्रव्य से द्रव्यान्तर क्रिया में धर्म मान उसी में दत्तचित्त हो संतुष्ट होते रहे हैं। अत: सुख-शांति से साक्षात्कार नहीं हो सका।

आत्म स्वीकृति होना अनिवार्य

शताब्दियों पश्चात् जैन दर्शन के मर्मज्ञ महापुरुषों की वर्तमान शृंखला में श्री कानजीस्वामी का भी प्रादुर्भाव हुआ है। उन्होंने अपने उपदेशामृत से शास्त्रों को समझने की कला सिखलाई। वह कला और कुछ नहीं केवल यही है कि आत्मस्वातंत्र्य को स्वीकार करो। धर्म या कर्म स्वतंत्रतया आत्मा ही करता है, अन्य चेतन अचेतन पदार्थ नहीं। अतएव पर दोषारोपण वृत्ति को त्याग स्वत: की छानबीन अभीष्ट है। अपने विकारों को अपने ही अज्ञानकृत समझकर ज्ञान से उन्हें निर्मूल करने का उपक्रम करना योग्य है। अज्ञान की खाद में कषाय-विष से विषैले वृक्ष लगते हैं। जैसे भाव वैसे फल। भावों का फल ही आत्मा को प्राप्त होता है। अतएव भावों की सावधानी वांछनीय है।

धर्म की लीक एक—कानजीस्वामी ने कोई नवीन बात नहीं कही। कहते भी कैसे? प्राचीन आचार्यों की कथनी पर आपकी

दृढ़तम श्रद्धा है। जो आपने अनुभव के आश्रय से प्रकट की है। लोक की लीक विभिन्न होती हैं; परन्तु धर्म की लीक एक है और एक रहेगी। अनादिकाल से जो आत्मायें सिद्ध हो रही हैं, वे सब एक ही पथ की पथिक रही हैं। सबका समान लक्ष्य पाथेय सदृश रहा है। वह लक्ष्य है मुक्ति का एवं पाथेय है परम पावन सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र स्वरूप रत्नत्रय। जिसको लेकर मुक्ति पथ का पथिक वीतरागता के मार्ग पर समता भाव से गतिशील हो जाता है।

ममता को इकाई बनाकर श्रमण संस्कृति नहीं चलती। श्रमण के पर्यायवाची शब्द 'समण' और 'शमण' भी हैं। 'श्रमण' शब्द स्वावलंबी बन श्रमपूर्वक आत्मपुरुषार्थ करने का सूचक है तो 'समण' राग-द्वेष जन्म इष्टानिष्ट का समन कर समताभाव को बतलाता हैं। एवं 'शमण' विषय कषायों को शमन करने को प्रेरित करता है। इस संस्कृति का ध्येय एकमात्र परिपूर्ण वीतरागता की प्राप्ति है। गृहस्थ श्रावक भी साधु भांति इसी के अंग है। लक्ष्य समान होने से गृहस्थ जीवन में ही शुद्ध श्रद्धा, विवेक, क्रिया अनिवार्य है।

चरित्र की आधार आत्मा

यह निर्विरोध सत्य है कि ज्ञान के अभाव में सम्यग्दर्शन नहीं होता। ज्ञान पूर्वक सम्यग्दर्शन होता है, पर ज्ञान सम्यग्दर्शन के साथ सम्यक्ज्ञान व चरित्र सम्यक् चरित्र की संज्ञा धारण करता है। वह चारित्र साक्षात् धर्म है, जो सम्यग्ज्ञान पूर्वक ही होता है। 'स्व' की विस्मृति में दिशा परिष्करण के पूर्व जो चरित्र होता है; वह अन्य पदार्थों में ग्रहण या त्याग के आश्रय से होता है। इसीलिये वह सुगतियों का लाभ कराते हुये भी उद्देश्य पूर्ति में असमर्थ होने कारण श्रेयस्कर नहीं है। मोक्षमार्ग में उसका कोई मूल्य नहीं। वह निरर्थक व बंध का कारण है। गिरी सहित बादाम ही बहुमूल्य है, छिलका तो केवल भार है।

शाश्वत सुख का मार्ग

आत्मा का लक्ष्य बंधन मुक्त हो सुख प्राप्त करना है। जिस सुख में व्यग्रता हो, जो क्षणश्वर हो, अनेक पदार्थों से प्रतिबंधित हो; ऐसा सुख किसी भी प्राणी का अभिधेय नहीं हो सकता। सुख वह जिसका कभी वियोग न हो, सदैव सर्वत्र जिसका उपयोग किया जा सके। वह परम सुख इन्द्रिय विषयों की उपेक्षा कर पापपुण्यमय राग द्वेषादि वृत्ति को अतिक्रांत कर आत्मस्वाभाव के आश्रय से स्वद्रव्य में स्थित होने पर ही उपलब्ध होता है। समस्त द्रव्यों से दृष्टि को मुक्त करके प्राणी मुक्ति पथ का पथिक बनकर मुक्त होता है। अन्य मार्ग नहीं है।

कतिपय सदाचरण अपनाकर नियम संयम ग्रहण कर जगतजन धर्मात्मा हो जाने की कल्पनाकर अभिमान करता है अथवा धर्म कर रहा हूँ ऐसा मानकर संतुष्ट हो जाता है। जितने अधिक कठोर नियम उतना ही श्रेष्ठ धर्मात्मा धर्म क्रियाकांड के कठिन नियंत्रण में बंदी हो गया। आत्मधर्म का माप शारीरिक क्रियायें बन बैठीं। कायक्लेश को भी धर्म का अंग मान बैठे। विषय भोग के त्याग से अहंकार का प्रादुर्भाव हुआ। अहंकार की भूख यश, सम्मान, प्रतिष्ठा की आहुति पाकर अधिकाधिक ज्वलनशील होती गई। कदाचित् यशादि की उपलब्धि न हुई तो जागीं क्रोधादित् कषायें, जो उपार्जित पुण्य को भी भस्म कर गई। यथार्थत: द्रव्य की द्रव्यातंर क्रिया मानकर महत् भूल हो रही है। देह की क्रिया से आत्मा की क्रिया कैसे हो सकती है? आत्मानुभूति की इकाई के साथ शून्यवत् व्रतादि क्रियायें कई गुनी मूल्यवान कहलाने लगती हैं। शून्य मिटाने की नहीं, अपितु इकाई लगाने की आवश्यकता है।

धर्म के मर्म से अनभिज्ञ प्राणी अज्ञान के कारण पाप छिपकर करते हैं और पुण्य उजागर। स्पष्ट है कि वह पाप को हेय एवं पुण्य को

उपादेय मानते हैं। जबकि दोनों एक ही जाति के आत्मस्वरूप से विरुद्ध हैं। पाप-पुण्यरूप भाव आत्मा में होते हैं तथा क्रिया पुद्गल में। यह नियम नहीं है कि भावानुसार क्रिया हो ही। हो भी न हो। अतएव मोक्षाभिलाषी जीव आत्मा की अनंत सामर्थ्य का अटल श्रद्धान कर भेदज्ञान के द्वारा प्रत्येक द्रव्य की भिन्नता ज्ञातकर अन्य द्रव्य के कर्तव्य से दृष्टि हटाकर पुरातन मान्यताओं से निर्मूल कर देता है पौद्गलिक क्रिया का स्वामित्व छोड़ देने के साथ ही धर्म का प्रादुर्भाव होता है।

अग्नि व जल एक साथ नहीं रह सकते। अग्नि दाहक है, जल शामक। राग दाहक है वीतरागता शामक। वीतराग की ओर दृष्टि होते ही राग की रुचि टूट जाती है। फिर राग को सहेजने का नहीं वरन उससे हटने का प्रयत्न प्रारम्भ हो जाता है। यद्यपि प्रारम्भिक अवस्था में राग और विराग दोनों एक साथ पाये जाते हैं; तथापि दोनों की रुचि एक साथ नहीं रहती। जैसे किसी कक्ष में बहुत दिनों से कूड़ा-कचरा भरा हुआ हो। कोई व्यक्ति उसको अपना निवास स्थान बनाना चाहे तो वह उसे स्वच्छ करने का संकल्प बिना विकल्प कर लेगा; पर संकल्प करते ही स्वच्छता नहीं आयेगी। वह शनैः शनैः स्वच्छ संकल्प के अनुसार स्वच्छता की क्रिया करेगा। जितने हिस्से से कचड़ा बुहर जायेगा वह स्वच्छ, शेष अस्वच्छ रहेगा। इसी प्रकार राग की रुचि न होते हुए भी राग व विराग एक साथ पाये जाते हैं।

'स्व' की ओर आयें

अनादि काल से जीवन की सम्पूर्ण ऊर्जा 'पर' की ओर प्रवाहित हो रही है। जैन दर्शन का अध्ययन का सत् देव-शास्त्र-गुरु की शरण पाकर व्रत-संयम धारण करके भी यदि संसरण की प्रक्रिया चलती रही तो फिर कल्याण का अन्य कोई मार्ग नहीं है। पाप-पुण्यरूप

शुभ-अशुभ उपयोग से प्राणी की स्थिति समुद्र में डूबे हुये मनुष्य जैसी होती है। वह कभी पाप में डूबता है तो कभी पुण्य की सतह पर भी आ जाता है; किन्तु किनारे नहीं लगता। ऊर्जा को अपनी ओर मोड़े बिना का संकल्प पूर्ण नहीं होता।

आचार्यों ने बतलाया है कि विकार धर्म कोटि में नहीं आता; भले ही वह कितना ही शुभ क्यों न हो धर्म तो आत्मा का स्वभाव है। आत्मस्वभाव की आधारशिला पर ही धर्म का भवन निर्मित होता है। आत्मा ही धर्म का आदि व अन्त है। धर्म आत्मा से प्रारम्भ होकर आत्मा में समाधिस्थ होता है। वे अपना अभिमत व्यक्त करते हैं कि प्रत्येक द्रव्य की क्रिया स्वयं उसी में होती है। अन्य द्रव्य में नहीं। द्रव्य स्वयं कारण स्वयं कार्य है।

जीवादि षट् द्रव्यों का निरूपण वस्तु की अत्यन्त स्वतंत्रता की सिद्धि के अर्थ ही है आचार्य श्री नियमसार में कहते हैं—

इहगमननिमित्त यात्स्यिते:कारणं वा।
यदपरमखिलानां स्थान दान प्रवीणम्॥
तदखित्ल मवलोक्य द्रव्य रूपेण सम्यक्
प्रविशतु निज तत्त्वं सर्वदा भव्य लोक: ॥46॥

यहाँ ऐसा अभिप्राय है कि जो धर्म द्रव्य का निमित्त है, अधर्मद्रव्य स्थिति का कारण है एवं आकाश द्रव्य सर्व को स्थान देने में प्रवीण है, उन सबको सम्यक् द्रव्य रूप से अवलोकन कर भव्यजन सर्वदा निजतत्त्व में प्रवेश करो।

ध्येय में तन्मयता इष्ट है

प्राणी को सर्वप्रथम निज ज्ञानमय अस्तित्व की स्वीकृति होनी चाहिये। संसारी जन समस्त को स्वीकार करते हैं, पर स्वयं को नहीं।

यह अज्ञानता छाया को स्वीकार कर छायावान को नकार ने जैसी है। समस्त ज्ञेयों को जाननेवाले ज्ञान को ही हम अस्वीकार कर बैठे हैं। अध्यात्मशास्त्र केवल आत्मस्वभाव की ही चर्चा करता है। वह दो टूक निर्णय दे चुका है कि आत्मा का ध्येय स्वयं को पाना है, अन्य कुछ नहीं। यद्यपि आत्मा में वर्तमान में रागादि विभाव क्रोधादि कषायें है, तथापि मोक्षाभिलाषी ज्ञानी इन सब विकारों की उपेक्षा कर नि:शंक मुक्ति पथ पे अग्रसर होता है, क्योंकि ये सब उसके पथ की बाधा है। अत: इनकी ओर दृष्टिपात नहीं करता। यह नीति भी है कि प्रयोजक प्रतिपक्षी का विरोध न कर अपने विवक्षित प्रयोजन की सिद्धि में संलग्न रहता है।

रहस्य : अनुयोगों में

चारों अनुयोगों का रहस्य भी यही है कि आत्मा स्वस्थित हो। प्रथमानुयोग कथाओं के माध्यम से पापपुण्य का फल संसार भ्रमण का दिग्दर्शन कराते हुये आत्मा को अतुर्मुखी बनने का उपदेश देता है। तभी वह निर्बंध हो सकता है। चरणानुयोग राग के साधनों के त्याग का कथन करता है। क्योंकि तिल तुष मात्र परिग्रह भी परम-पद की प्राप्ति में बाधक है। अतएव त्याग मात्र से ध्येय की प्राप्ति नहीं होगी। त्याग का राग भी त्यागना अनिवार्य है, जो आत्म स्वभाव से परिचित हुये बिना असंभव है।

चरणानुयोग

अभी तक हम 'पर' में चरण करते रहे हैं। अत: यात्रा का श्रम करके भी लक्ष्य से दूर रहे। विषयभोग सम्बन्धी पदार्थों से राग किया अथवा द्वेष किया, जो अभीष्ट नहीं है। अतएव त्यागपूर्वक विषयों से हटकर आत्माभिरुचि की वृद्धि करते हुए वीतराग होने का सतत् अभ्यास अनिवार्य है। 'चारित्तं खल्लु धम्मो, चारित्र ही निश्चय से धर्म

है। चारित्र का अर्थ सम्यक् चारित्र से ही है। सम्यक् चारित्र वही है कि जब आत्मा स्वयं में ही चरण करे अथवा निज स्वरूप के अनुरूप आत्मा की सहज वृत्ति बन जाये। चारित्र भारस्वरूप कष्टदायक नहीं है। आचार्यों ने स्वाभाविक परिणति में सहज रमण को ही सम्यक् चारित्र स्वीकार किया है अथवा ज्ञान का ज्ञान रूप हो जाना चारित्र है।

करणानुयोग

करणानुयोग कर्म की प्रधानता से कथन कर सद्भावात्मक या आभावात्मक आत्मपरिणामों को सूचित करता है। कर्मोदय में अज्ञानी आत्मा के परिणाम तद्रूप होते हैं। यदि कर्मोदय के समय शुभाशुभ भाव न कर आत्मा निज स्वभाव में लीन रहे, तो कर्म बलात् उसे कर्मरूप परिणाम करने को बाध्य नहीं करते। यह जीव पर निर्भर है कि वह अपना उपयोग जहाँ लगाना चाहे वहाँ लगा सकता है। यह भी देखने में आता है कि जीव सुख के उदय में दु:खी एवं दुख के उदय में सुखी होता हे। उदाहरणत: स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों ने सर्व सुविधा संपन्न होते हुये भी देश की परतंत्रता से दुखी हो गृहत्याग कर राष्ट्रहित में जेल का बंदी जीवन अपना हर्षपूर्वक नृशंस यंत्रणायें सहन कीं। फाँसी के तख्ते पर हँसते-हँसते झूल गये। जब लौकिक जीवों की यह अवस्था है, तब अध्यात्मयोगियों में तो अलौकिकता होगी ही। उनके अनेक दृष्टांत पुराणों में चर्चित हैं। कुमार सुकुमार आदि को जिस क्षण आत्मबोध हुआ कि फूलों की शैय्या शूलों सी चुभन देने लगी है और स्यालिनी के भक्षण के भयंकर कष्ट में कष्ट का अनुभव न कर स्वरमण का आनन्द लेते रहे। कोई-कोई आत्मपुरुषार्थी तो ऐसे उपसर्गों में अपने शुद्धोपयोग के अवलंबन से तत्काल केवल ज्ञानी हो मुक्त हो जाते हैं।

कर्म अति सूक्ष्म हैं। उनसे भी अत्यंत सूक्ष्म आत्मा के विकार

मोह-रोग-द्वेषादि कषायें हैं। कर्म भावों से अधिक स्थूल हैं। फिर भी हमें नहीं दिखते जबकि भाव सूक्ष्मातिसूक्ष्म होते हुये भी हमारे अनुभव में आते हैं। भावों से उस समय में आनेवाले कर्मों का अनुमान हो जाता है। आत्मा की राग-द्वेषमय परिणति कर्मोदय का अस्तित्व सिद्ध करती है। जैसे जैसे धूम देखकर अग्नि का ज्ञान हो जाता है। उसी प्रकार राग भावमय धूम कर्मोदयरूप अग्नि के सूचक हैं।

करणानुयोग का अभिप्राय यही है कि कषायमिश्रित भाव आत्मज्ञान से नहीं अज्ञान से उत्पन्न होते हैं। कर्मों का संबंध-अज्ञान से है। वे इसके माध्यम से ही आत्मा से संयोग करते हैं। अज्ञान के अभाव के अभाव में संबंध टूट जाता है। देह भोग सम्बन्धी ज्ञान चाहे वह कितना भी विशद क्यों न हो समस्त अज्ञान ही है। शास्त्रज्ञान भी जब तक आत्मज्ञान में परिणित नहीं हो जाता; तब तक वह भी अज्ञान है। अत: आत्मप्रेमी कर्मों की बलवत्ता को अस्वीकृत कर उससे भिन्न अनंत बलशाली आत्मसामर्थ्य की प्रतीतिकर उसमें तन्मय होने का प्रयत्न करता है।

द्रव्यानुयोग

द्रव्यानुयोग वस्तु के स्वभाव की चर्चाकर उसमें होनेवाले वैभाविक भावों को स्पर्श नहीं करता। वस्तु का शुद्ध स्वभाव ही उसका विवेच्य विषय है। षट्द्रव्यों के मध्य रहनेवाले सार द्रव्य आत्मा की विशेष रूप से कथनी कर आत्मस्वभाव में प्रविष्ट होने की प्रेरणा देता है। इस संदर्भ में अन्य द्रव्यों की भी चर्चा आती है; परन्तु उससे भी विवक्षित द्रव्य की स्वतंत्रता का ही प्रतिपादन होता है। तात्पर्य यह कि चारों अनुयोग आत्मा को केन्द्रीभूत कर आत्मलीन होने का ही उपदेश देते हैं।

आत्मसाधना एक अद्वितीय कला है। इसमें सच्चे देव, शास्त्र,

गुरु आदि प्रत्ययों का आश्रय लेकर उनके सानिध्य में जीव अपनी मलिन आत्मा को दर्शन-ज्ञान-चारित्र से माँज-माँजकर चमका उनकी स्वच्छता से अपनी तुलना करता है और जब तक पूर्णत: निर्मलता नहीं आती तब तक अनवरत अभ्यास, श्रम चला करता है। यदि जीव सानिध्य प्राप्त कर उपर्युक्त क्रिया नहीं करता, उनके लिये द्रव्यानुयोग डंके की चोट उद्घोषणा करता है कि शुभ पराश्रयों से भी मोक्ष का हेतु सिद्ध नहीं होगा, अपितु इनके सानिध्य में स्वाश्रित होने का अभ्यास कर स्वात्मस्थित होने का प्रयत्न अनिवार्य है। अंततोगत्वा समस्त आश्रयों का परित्याग कर संपूर्णत: स्वावलम्बी बनकर ही भवसागर पार किया जा सकता है।

अपने से एकाकार होने का प्रयत्न ही ग्राह्य है। शेष भटकन है। आत्मा की चरमोत्कृष्टा वीतराग हो जाने में है। परन्तु जब तक प्राणी अपने अभीष्ट को उपलब्ध नहीं होता; तब तक पुण्य फल में अभिरुचि न कर उसे पुण्य क्रिया औषधि की भाँति उपादेय होती है मोक्ष का हेतु न होने से ज्ञानी फल की अभिलाषा नहीं करता। अन्य द्रव्य के आधार से 'स्व' में निखार कैसे आ सकेगा? भावों का विकार शुद्ध भावों से ही नष्ट होता है।

तत्वाभ्यास आवश्यक अंग

अनादि मिथ्या दृष्टि को सम्यक्त्व प्रकट करने के लिये ज्ञानपूर्वक वस्तु स्वातंत्र्य की महिमा को आत्मसात् करना पड़ेगा। भेदज्ञान जागृत होते ही आत्मदर्शन से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। सम्यक्त्व के सोपान पर चढ़कर स्वाभावत: पुरुषार्थ में सक्रियता आ जाती है। सम्यग्दृष्टि आत्मायें कालांतर में निश्चित ही सम्यक्चारित्र को अपना समस्त कर्मों की निर्जरा कर पूर्ण बंधनों से मुक्त होंगी। दृष्टिमुक्त ही जीवन्मुक्त हो देहमुक्त होता है। अन्य नहीं। व्रतरूप शारीरिक क्रिया

बाह्य में होती है, किन्तु व्रतरूप भाव आत्मा में ही होते हैं, जो आत्मा को नि:श्रेयस पद पर पहुँचाते हैं। भेदज्ञान के उदयाचल पर सम्यक्य का सूर्य उदित होता है। अस्तु तत्त्व अभ्यास कर बार बार मनन चिंतन करना अनिवार्य है; ताकि सम्यक्त्व के उपयुक्त निर्मलता आ सके।

सम्यग्दर्शन की ऐसी अपूर्व महिमा है कि उसके साथ ही रत्नत्रय की आंशिक उपलब्धि हो जाती है। जिसने आत्मा में प्रविष्ट हो उसका आनन्द लिया है, निज स्वभाव का आस्वादन किया है; अपने में झाँककर आत्मा के अलौकिक वैभव को देख लिया है, वही चरित्रनिष्ठ हो सम्यक्चारित्र की संज्ञा को सार्थक करता है। अतएव हम संसारियों को इच्छाओं पर नियंत्रण कर स्वभाव प्राप्ति की सतत चेष्टा करणीय है। भौतिकता से ऊपर उठकर हम आत्ममूल्यांकन करना सीखें, जिससे नि:श्रेयसपद सुलभ हो सके।

●

हे जीव!
जो तेरे को शरीर रहित बनना हो,
कर्म का ध्वंस करना हो,
और विकारभावों का अभाव करना हो
तो–
शरीर रहित ऐसा अशरीरी
कर्म से रहित ऐसा अबंध
और विकार रहित ज्ञान स्वभावी

ऐसे तेरे आत्मा को शुद्धनय की दृष्टि से तू देख। इस स्वभाव को अनुभव में लाने से तेरे भाव कर्म दूर हो जायेंगे, द्रव्य कर्म पृथक् हो जायेंगे और कर्म रहित ऐसे सिद्ध पद की तुझे प्राप्ति होगी।

श्री कानजीस्वामी चित्रों में :

आध्यात्मिक भजनों का आत्मिक आनन्द लेते हुये पूज्य गुरुदेव

प्रवचन करते हुये आत्म-विभोर।

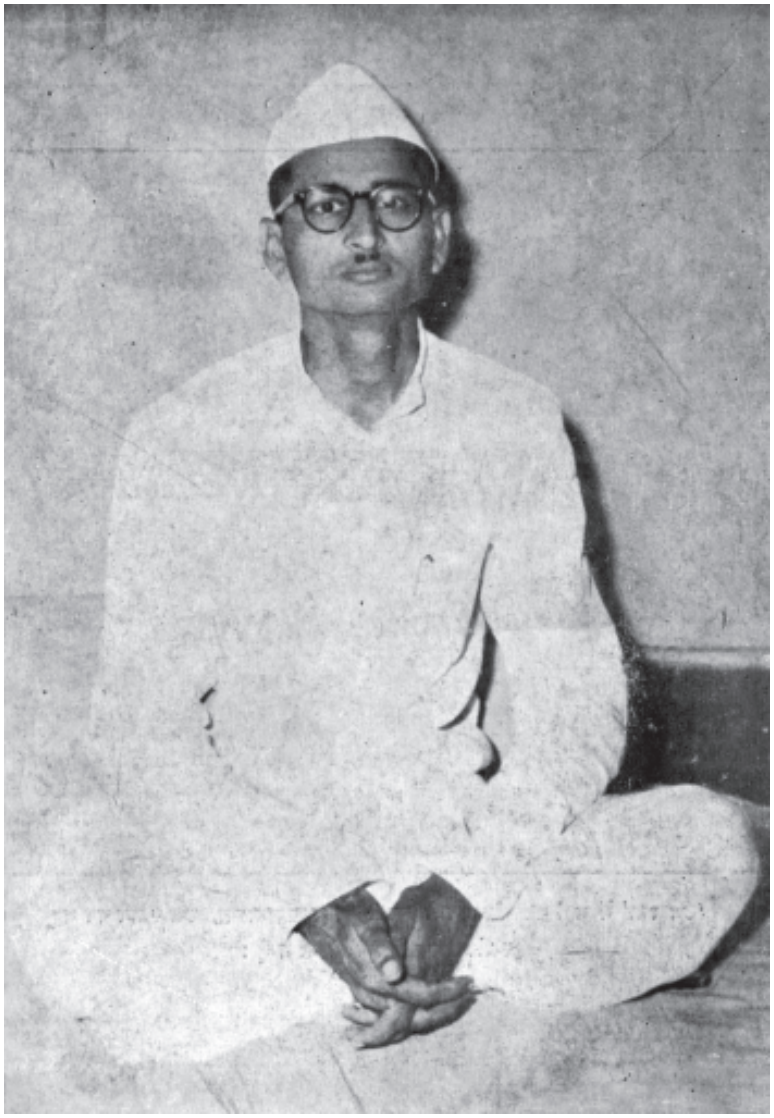

वीतराग वाणी के प्रमुख प्रवक्ता—पण्डित बाबूभाई महेता, फतेपुर मोटा (गुजरात)

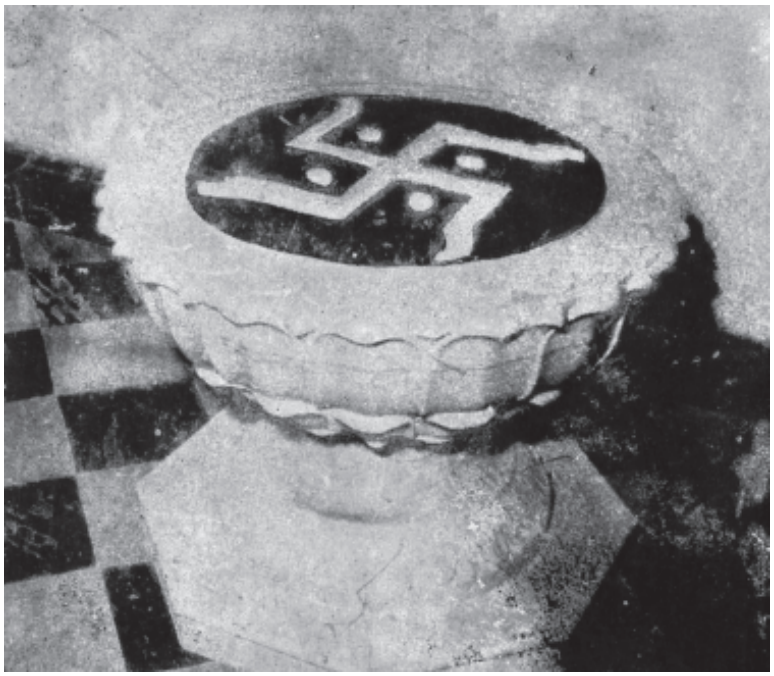

'उमराला' में जहाँ पर श्री कानजीस्वामी का जन्म हुआ था,
उस स्थान पर यह स्वस्तिक स्थापित किया गया है।

सुप्रसिद्ध उद्योगपति साहू श्री श्रेयांसप्रसादजी गुरुदेव
से विचार-विमर्श करते हुये।

श्री कानजीस्वामीजी की हीरक जयन्ती (मई १९६४, बम्बई) का चित्र।
मंच पर हैं—श्री लालबहादुर शास्त्री, श्री यू०एन० ढेबर,
श्री मिश्रीलालजी गंगवाल आदि।

बम्बई में हीरक जयंती महोत्सव पर गुरुदेव को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करते
हुए श्री लालबहादुर शास्त्री।

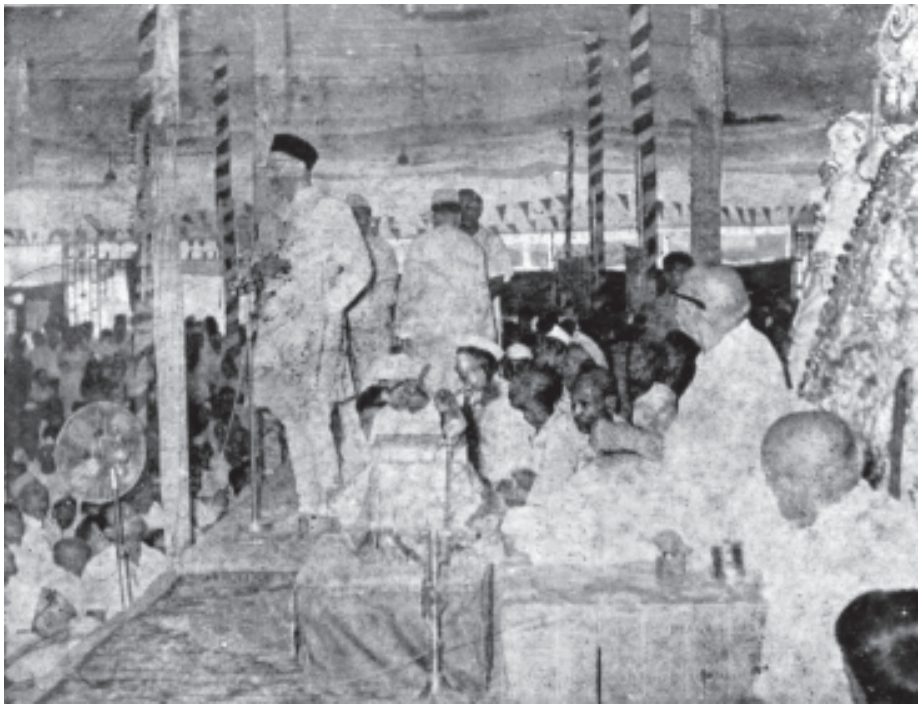

सर सेठ श्री राजकुमार सिंह कासलीवाल हीरक जयन्ती में श्री कानजीस्वामी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये।

उपाध्याय श्री मुनि विद्यानन्दजी के साथ कानजीस्वामी

पूज्य गुरुदेव की धर्मसभा दिगम्बर जैन महासभा के प्रमुख स्तम्भ
सर सेठ भागचन्द सोनी अपने विचार प्रगट करते हुए।

अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ (शिरपुर) के पंच कल्याणक महोत्सव पर स्वामीजी मुनि श्री नेमिसागरजी महाराज के साथ

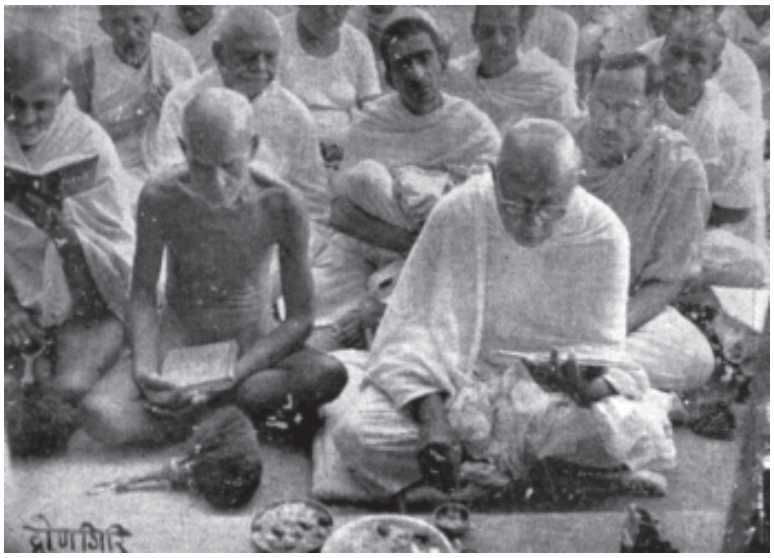

श्री कानजीस्वामी मुनिश्री आदि सागर तथा क्षु० श्री पूर्णसागरजी के साथ
द्रोणगिरि तीर्थक्षेत्र के पहाड़ पर।

बम्बई में 85वीं जन्म-जयन्ती के अवसर पर सेठ कस्तूरचन्द
स्वामीजी के प्रति अपने उद्‌गार प्रगट करते हुए।

शुद्धात्म स्वभाव में लीन..... कानजीस्वामी

सन् 1973 में दादर (मुम्बई) में पंचकल्याणक प्रतिष्ठोत्सव के समय पं० फूलचन्द्रजी प्रवचन करते हुए। साथ में पं० बंशीधरजी इन्दौर, पं० कैलाशचन्द्रजी, पं० नाथूलालजी आदि बैठे हैं।

पं० खेमचन्दभाई सेठ, ब्र० हरिलालजी स्वामीजी से तत्त्वचर्चा करते हुए।
(प्रसंग—बम्बई—हीरक जयंती महोत्सव)

वीतराग पथ के राहियों को सम्बोधित करते हुए श्री कानजीस्वामी।

बम्बई में गुरुदेव के साथ सेठ श्री नवनीतभाई सी० जवेरी,
सेठ पूरणचन्द्रजी गोदिका, पं० खेमचन्दभाई सेठ आदि।

तीर्थंकर महावीर की 25वीं निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष में आल इण्डिया
दिगम्बर भगवान महावीर 2500वाँ निर्वाण महोत्सव सोसायटी
गुजरात की ओर से धर्म-चक्र-प्रवर्तन।

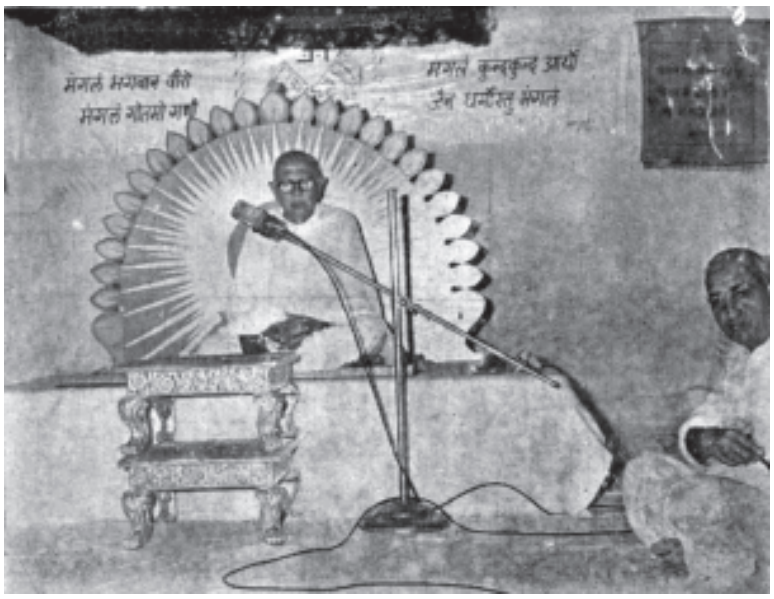

श्री जैन दर्शन शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर के अवसर पर कोटा में 1 जून, 1975 को पूज्य श्री कानजीस्वामी के विशाल जुलूस का दृश्य। स्वामीजी के साथ हैं—पं० हुकमचन्दजी, श्री नेमीचन्दजी पाटनी, श्री जम्बूकुमारजी वज।

पूज्य गुरुदेव प्रवचन मण्डप में आते हुए। साथ में हैं — लाला भगतरामजी जैन, श्री रविचन्दजी, मन्त्री मुमुक्षु मण्डल दिल्ली, श्रीपालजी जैन एवं अन्य।
(दिल्ली, 1973)

श्री जैन-दर्शन-प्रशिक्षण शिविर समारोह के समापन पर स्वागत मन्त्री श्री 'युगल' जी गद्‌गद् होकर समापन भाषण कर रहे हैं।

श्री पं० टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर के उद्‌घाटन के मंगल अवसर पर हुई विशाल रथ यात्रा में स्वामीजी सर सेठ भागचन्द सोनी अजमेर वालों के रथ में।

दिल्ली जैन समाज द्वारा कानजी स्वामी के भव्य स्वागत का एक विहंगम दृश्य। (दिल्ली, 1873)

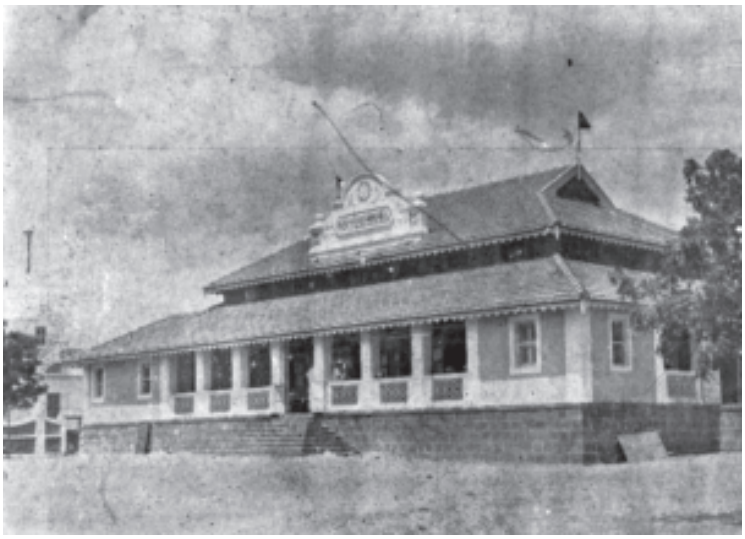

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर, जहाँ कानजीस्वामी विराजते हैं। (सोनगढ़)

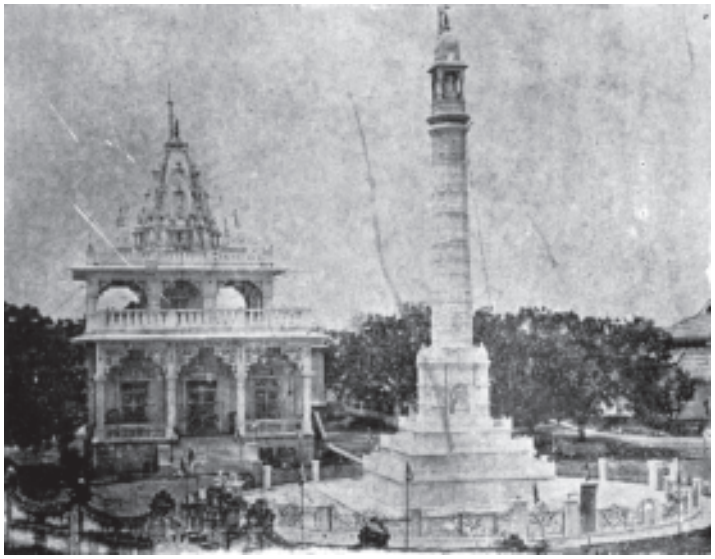

परिपेक्ष्य में—श्री सीमंधरस्वामी दिगम्बर जैन मन्दिर, सोनगढ़
एवं पूरा संगमरमर से निर्मित मानस्तम्भ (ऊंचाई 63 फीट)

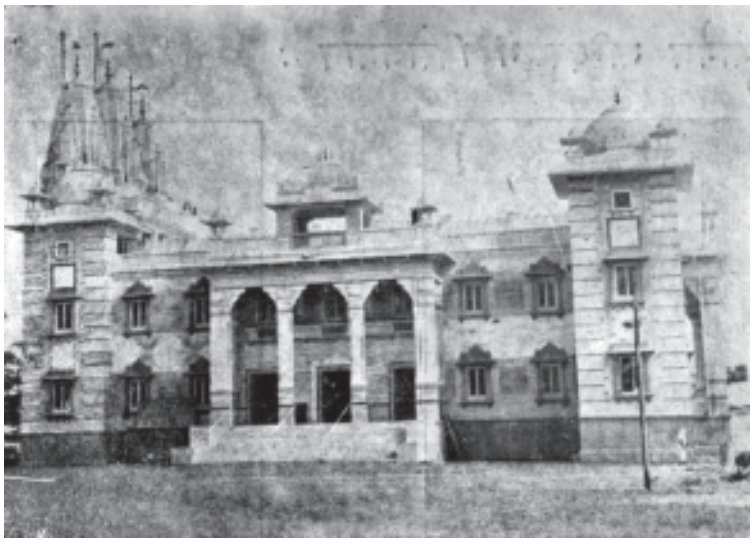

सोनगढ़ का श्री महावीर कुन्दकुन्द दिगम्बर जैन परमागम मन्दिर।

उपरोक्त मन्दिर में विराजित भगवान् महावीर की भव्य प्रतिमा।

परमागम मन्दिर में विराजमान :

भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव

आचार्यवर श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव

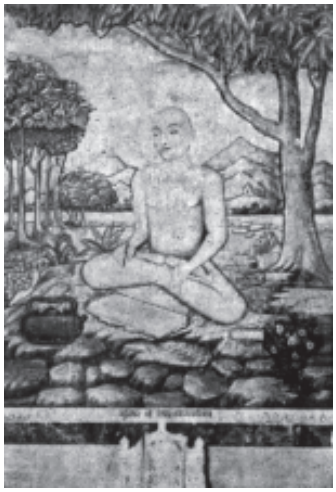

मुनिवर पद्मप्रभमलधारिदेव

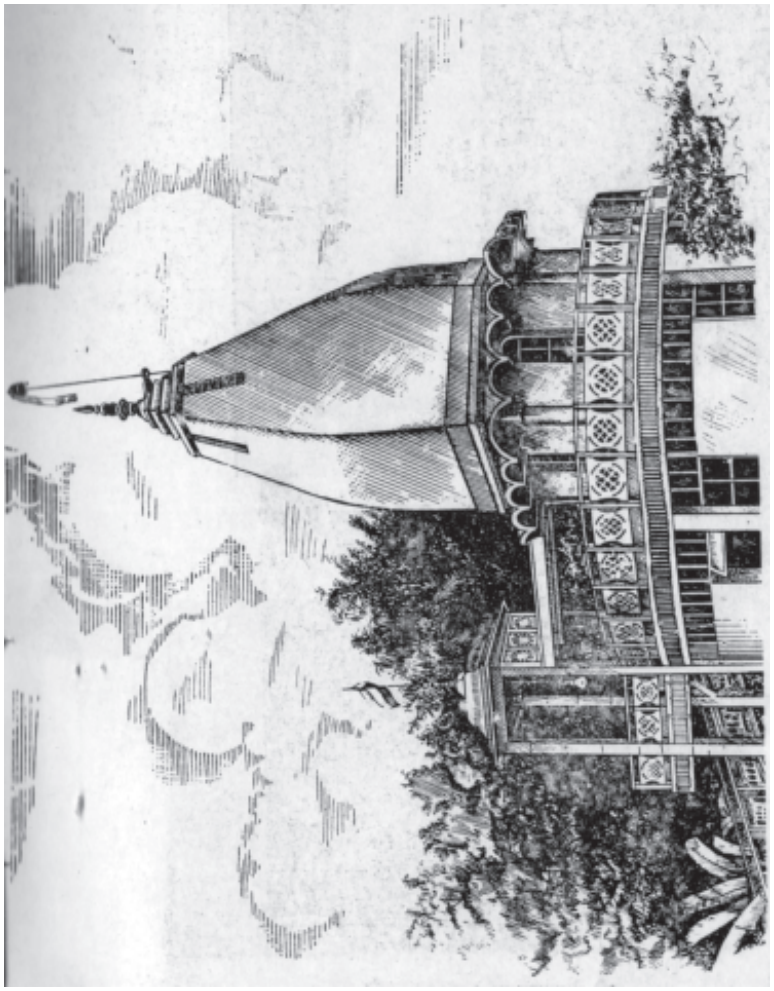

दिल्ली का प्रसिद्ध दिगम्बर जैन मन्दिर (भारत नगर) इस मन्दिर का शिलान्यास पूज्य गुरुदेव के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ था।

श्री सीमंधरस्वामी दिगम्बर जैन मन्दिर सोनगढ़ में विराजमान
सीमंधर स्वामी की भव्य प्रतिमा।

श्री टोडरमल स्मारक ट्रस्ट भवन, जयपुर